श्रेणिक चरित्र

प्रथम अध्याय

शुद्ध ध्यान की ज्वलित अग्नि से, कर्म-वर्ग हरनेवाले। नमस्कार श्री वर्धमान को, गुणानन्द देनेवाले।।
जम्बूद्वीप-मेरु पर्वत अरु, भरत-खण्ड का गुण गायन। इन्द्राणी रानी का वर्णन करों, भक्त जन पारायण।।

शुल्क ध्यानरूपी प्रचण्ड ज्वाला से संसार के समस्त सन्ताप हरने वाले, जो गुणों के भण्डांर एवं आनन्द के देने वाले हैं, ऐसे श्री वर्धमान स्वामी के चरणों की मैं सविनय वन्दना करता हूँ। हे भगवन्! आपने बाल्यकाल में मुनियों के संशय दूर कर अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा 'सन्मति' नाम प्रख्यात किया। मायावी नाग का मथन करने से आप 'महावीर' नाम से प्रसिद्ध हुए तथा कुमारकाल में ही अत्यन्त शक्तिशाली होने के कारण आप वीरों के वीर-शिरोमणि हुए। आप ने सांसारिक सुख की प्रदाता विशाल साम्राज्य विभूतियों को क्षणभंगुर जान कर त्याग दिया। लोकोपकारी निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर आप समस्त लोक के वन्द्य हुए। हे भगवान्! आप ने केवलज्ञान एवं केवलदर्शन के प्रकाश से धर्मरूपी अक्षय निधि को प्राप्ति किया। अतएव हे त्रिभुवन में सुख एवं कल्याण के देनेवाले त्राणदाता श्री महावीर भगवान! मैं अपने हृदय में आप की पावन मूर्ति की स्थापना करता हूँ।

तदनन्तर ग्रन्थ के आरम्भ में ही मैं अपनी इष्ट-सिद्धि के लिए ज्ञानगुण विभूषित धर्म-प्रवर्तक श्रीऋषभदेव (आदि तीर्थङ्कर) से पार्श्वनाथ पर्यन्त सभी तीर्थङ्करों के पावन चरणों में वन्दना करता हूँ। अन्य केवलज्ञान गुणधारियों को भी मेरा नमस्कार है। अपनी हित कामना के लिए मैं ध्यानरूपी दिव्य प्रभा को धारण करनेवाले आदि गणधर श्री वृषभसेन गुरु तथा मिथ्यावादियों के घोर प्रतिवादी, अखिल ब्रह्माण्ड में सर्वश्रेष्ठ, धीरवान— मुनि-आर्यिका-श्रावक एवं श्राविकाओं द्वारा सेवित अन्तिम गणधर श्री गौतम स्वामी को नमस्कार करता हूँ।

जिस सरस्वती माता के प्रसाद से समस्त संसार हिताहित का ज्ञान रखता है, जो भगवान केवली के मुख से निकली है, ऐसी उस जिनवाणी माता को मेरा नमस्कार है।

हितकारी गुरु, हितमित प्रियभाषी-ज्ञान-गुण-धारक, विशाल हृदय, गम्भीर एवं तेजस्वी, कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाले, पुण्यरूपी मेरु शिखर पर विराजनेवाले, परम-हितैषी, पुण्यात्मा गुरुओं (मुनियों) को नमस्कार करता हूँ।

भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में आगे उत्पन्न होने वाले सभी तीर्थङ्करों में श्री पदमनाभ तीर्थङ्कर ही सर्वोत्तम एवं तेजस्वी होंगे। अतएव ऐसे विध्न्हर, शान्ति-संस्थापक, हितैषी महात्मा को मेरा नमस्कार हो। हे भगवान पदमनाभ! उत्सर्पिणी काल से कुछ समय बीत जाने पर इसी भरत क्षेत्र में आप का जन्म होगा। आप पाँच प्रकार के अतिशयों से युक्त होंगे। अनेकों देवेन्द्र एवं देवों से आप वन्दनीय होंगे। चिरकाल से संचित पाप-रूपी वृक्ष के विनाश के लिए आप व्रज-तुल्य सिद्ध होंगे।

चतुर्थकाल के प्रारम्भ में धर्म पथ का नाश हो जाने पर—जब अहङ्कार का चारों ओर दौर-दौरा होगा, संसार के समस्तजीव अन्धकार में भटकते फिरेंगे, उनमें मोक्ष पथ के प्रकाशन द्वारा आप धार्मिक भावना जागृत करेंगे। हे भगवान पदमनाभ! आप ने प्रथम ही अपने श्रेणिक अवतार में श्री महावीर स्वामी के निकट शुद्ध निर्दोष सम्यग्दर्शन से युक्त होकर क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण किया। आप ने महावीर स्वामी के समक्ष 'तीर्थङ्कर' प्रकृति का बंध किया, अखिल ब्रह्माण्ड के समस्त लोगों को आश्चर्य में डाल कर आस्तिक्य-गुण की प्राप्ति की।

आप ने अपने श्रेणिक जन्म धारण के समय श्रीमहावीर स्वामी से जो प्रश्न किये थे, उनके उत्तर में उन्होंने पापनाशक 'श्रेणिक चरित्र' के प्रकाश करनेवाले वचन कहे, जिसके फलस्वरूप आज भी अभिमानियों को मुंहतोड़ उत्तर देनेवाले अनेक जैन ग्रन्थ मौजूद हैं। भविष्य में आप अवतार धारण कर समस्त तीर्थङ्करों में प्रथम एवं प्रधान तीर्थङ्कर होंगे। ऐसे प्रतिभाशाली बहुश्रुत विद्वान, वाग्मी एवं धर्म के सच्चे पारखी (श्रेणिक महाराज के जीव) श्री पदमनाभ तीर्थङ्कर के चरणों में मैं नतमस्तक होकर उनके संसार-सम्बन्धी चरित्र का चित्रण करता हूँ। (ग्रन्थकार शुभचन्द्राचार्य अपनी लघुता प्रगट करते हैं।) हे भगवन् तीर्थङ्कर! आप के अनन्त विस्तार युक्त गम्भीर चरित्र का यत्किंचित वर्णन कर मैं ने एक लंगड़े पुरुष के समान सतखण्ड महल के ऊपर चढ़ने का प्रयत्न किया है, किंतु क्या करूँ मेरी बुद्धि अत्यन्त अल्प तथा मलिन है।

इसमें क्या सन्देह है कि बसन्त ऋतु में मधुर शब्द बोलनेवाली कोयल के समान यदि कोई विद्वान सर्वदा रट लगानेवाले सुग्गे के समान मुझे बकवादी कहें, तो उसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं! भय के लिये कोई स्थान नहीं। जिस प्रकार पुष्पदन्त नक्षत्र के अस्तगत हो जाने पर छोटे-छोटे प्रभाववाले तारों की प्रधानता हो जाती है, उसी तरह मैं ने इस चरित्र के चित्रण करने में अपनी उद्धतता दिखलाई है। कारण शब्द शास्त्र के ज्ञाता-वाग्मी होने पर शुभ वचन ही बोलते हैं, अतः मेरी

वाणी शिथिल होने पर भी पूर्वाचार्यों के समान शुभ हो। जैसे बड़े-बड़े जलपोतों के पीछे छोटे-छोटे जलपोत चल कर अपनी यात्रा निर्विध्न समाप्त कर लेते हैं, वैसे ही पूर्वाचार्यों के पद का अनुसरण कर मैं अपनी कार्यसिद्धि में सफल हो जाऊँगा। जिस प्रकार निर्धन पुरुष का विषाद श्री-सम्पन्न धनवानों के वैभव को देख कर बिना मतलब का होता है, उसी प्रकार पूर्वाचार्यों की रचनाएँ देख कर मुझे अपनी शक्तिहीनता के कारण दु:खी होने का कोई भी कारण नहीं है। जैसे सिंह के समान मेढक कभी नहीं बोल सकता, वैसे ही पूर्वाचार्यों के सामने, ग्रन्थ-रचना में मैं भी असमर्थ हूँ। जैसे सूक्ष्म-देह धारी कुन्थु एवं पहाड़ के समान गजराज भी जीवधारी कहलाते हैं; वैसे पुराण, काव्य व न्याय-शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् एवं मेरे समान अल्पज्ञ दोनों ही कवि कहे जायेंगे। जैसे गुँगे बोल नहीं सकते; किन्तु बोलने का प्रबल इच्छा रखते हैं, वैसे ही मैं भी शास्त्र-ज्ञान से रहित होने पर भी इस चरित्र की रचना में प्रयत्नशील हूँ। ठीक उसी तरह जैसे चरित्र सुनने में पुण्य होता है, वैसे ही चरित्र रचना में भी पुण्य का भाग रहता है। जिस चरित्र के श्रवणमात्र से संसार के भव्य जीव तीर्थङ्कर, इन्द्र तथा चक्रवर्ती के पदों से विभूषित होते हैं, उसे अच्छी तरह समझ-बूझ कर उपरोक्त पद-गुणों के ऊपर अपनी सदृढ़ श्रद्धा होने के कारण लोभी होकर मैं (शुभचन्द्राचार्य) इस पवित्र, उत्तम एवं सारभूत श्रेणिक-चरित्र का वर्णन करता हूँ। जैसे कच्चे अन्न की अपेक्षा पके अन्न की प्रधानता रहती है, वैसे ही किसी वृहद-चरित्र की अपेक्षा संक्षिप्त (छोटा) उत्तम चरित्र मनुष्य के चित को वशीभूत करनेवाला होता है, अतः इसकी मैं रचना कर रहा हूँ।

जम्बू-द्वीप

यह जम्बू-द्वीप क्या है? समस्त प्राणियों का मन हरण करनेवाला, एक लाख योजन चौड़ा, गोल, अत्यन्त रमणीक एवं विस्तृत विशाल भू-खण्ड है। यह जम्बूद्वीप कमल के समान है, भरतादि खण्डरूपी इसमें कमल पत्र हैं। जैसे कमल में पराग, कली, श्वेत तन्तु तथा लोभी भ्रमरों की भरमार रहती है; उसी तरह इसमें नक्षत्ररूपी पराग है। मेरु पर्वत ही इसमें एक कली है। शेषनाग के रूप में श्वेत तन्तु है तथा भौंरे के समान यहाँ मनुष्यों का जमघट है। इस द्वीप में दुग्ध के समान स्वच्छ जल के सरोवर है, जिनसे जीवधारियों के जीवन की रक्षा होती है। यह द्वीप तुलना में राजा के समान है, फलस्वरूप इसमें पर्वतों की ऐसी ही प्रधानता है, जैसी प्रधानता बड़े-बड़े राजाओं द्वारा सेवित सम्राट् की होती है। जिस प्रकार पदवीधारी राजा का वंश कुलीन एवं उत्तम होता है, उसी तरह यह द्वीप कुलीन अर्थात् (कु) पृथ्वी में लीन है। जैसे संसार के समस्त नृपतिगण वैभव से रहते हैं, अनेकों सुन्दर स्त्रियों के स्वामी होते हैं एवं होते हैं अनेक वृहद भू-खण्डों के अधिपति; वैसे ही इस जम्बूद्वीप में कितने ही सुन्दर रमणीक वन-उपवन हैं, जिनमें विशाल बड़े-बड़े जड़ पदार्थों की प्रचुरता है तथा यह समुद्रों के जल से

भी सुशोभित है। इस द्वीप में जहाँ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ पायी जाती हैं; वहाँ पतिव्रता देवियों द्वारा इसकी महत्ता द्विगुणित हो जाती है। इस द्वीप में वर्णसङ्कर राजाओं के साथ-साथ उत्तम द्विजों का निवास भी है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य उत्तम जातिवाले भी हैं। इस कारण यह द्वीप कितना महत्वपूर्ण तथा महान् है, जहाँ उत्तम पुरुषों का निवास है। इसमें मनोहर पर्वतों की छटा अवर्णनीय है। नदी-नद, तालाब, वन-उपवन इत्यादि से भरे हुए इस द्वीप की गोलाई कितनी उत्कृष्ट है, जिसे देख कर चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता है तथा दु:खित होकर आकाश में रात्रि-दिन घूमता रहता है। जिस प्रकार लोक-अलोक के 'मध्य भाग' है, उसी तरह यह जम्बूद्वीप त्रिभुवन के समस्त द्वीपों के बीच में होने के कारण मध्यवर्ती सर्वाङ्ग सुन्दर है। यह कितना महान् है तथा है कितना आश्चर्यजनक मानो रत्नों की खान हो—जिसका वर्णन इस रूप में यतीश्वर तक करते हैं।

मेरु पर्वत

मेरु पर्वत! तुम तपाये हुए स्वर्ण के समान चमकते हो। जम्बूद्वीप के मध्य में तेरा निवास है। विष्णु के समान तुम भी चतुर्भुजधारी हो। उनके समान नित्य हो। जिस प्रकार विष्णु, श्री अर्थात् लक्ष्मी संयुक्त हैं, उसी प्रकार तुम भी अनेक शोभाओं से भरे हुए हो। तुम्हारी उपमा स्वर्ग के नन्दन वन के समान दी जा सकती है, जिसमें कितने सुगन्धित पुष्पों से भरे हुए सौमनस्य वन हैं। हे मेरू पर्वत! तुम श्वेत न होते हुए भी कितने पवित्र हो, जिसमें पाण्डुकशिला को धारण करनेवाले विविध देवों से युक्त सोलह अकृत्रिम चैत्यालय अपनी ख्याति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। विविध रत्नों से युक्त, सुवर्ण के वर्ण के समान तुम बड़े ऊँचे-ऊँचे परकोटे को धारण करते हो, जो आधार रहित स्वर्ग के संतुलन के लिए एक विशाल खम्भे के समान मालूम होता है। तुम स्वयं ही सुशोभित हो, अनेक अकृत्रिम पर्वतों के अधिपति हो। तुम्हारी छटा द्विगुणित हो जाती है, जब हम तुम्हें जम्बूद्वीप के बीचों-बीच में पाते हैं। तुम मोक्षगामी पुरुषों के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करते हो। तुम जिनेन्द्र भगवान के चरणोदक से पवित्र होनेवाले एक महान पवित्र तीर्थस्थान हो एवं हो चारण ऋद्धि के धारण करनेवाले मुनियों के सर्वदा ठहरने योग्य पर्वतराज। हे पर्वतराज! सचमुच तुम कितने महान हो, तभी तो देवराज इन्द्र भी अपने कल्प वृक्षों के पुष्पों से युक्त इन्द्रलोक को छोड़ कर अपनी इन्द्राणियों के साथ मनोरंजन के लिए तुम्हारे ऊपर आते हैं। क्या किसी को पता है कि किसने तुम्हारी रचना की है? तुम सचमुच अकृत्रिम हो। तुम कितने ऊँचे हो। पृथ्वी को धारण कर के धराधीश की मर्यादा तुमने पाई है। हे पर्वतराज! तुम्हारा वर्णन असम्भव है। जिसके लिए कितने ही ग्रन्थ लिखे गये हैं। अतः हे मेरु पर्वत! तुम्हारे ऊपर बने हुए चैत्यालयों के दर्शन तथा योगियों के स्मरंण मात्र से मनुष्य के समस्त पाप कट जाते हैं— अतः तेरी बड़ी महिमा है।

भरतक्षेत्र

इसी मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में भरत-खण्ड बसा हुआ है। इसका आकार धनुष के समान है। इसमें गंगा तथा सिन्धु नाम की दो प्रसिद्ध नदियाँ बहती हैं, जिनकी उपमा धनुष के बाण से दी जा सकती है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है। उत्तम-उत्तम अन्नों की उपज से यह समस्त प्रदेश मनोहर लगता है। इसके मध्य-भाग में रूपाचल नाम का एक बहुत विशालकाय पर्वत है, जिसके चारों ओर सिन्धु नदी बहती है; जिसकी दोनों श्रेणियों में सदा विद्याधरों का निवास रहता है। अतः इस भरत-खण्ड में गङ्गा-सिन्धु के समान पवित्र नदियों के विजयार्द्ध पर्वत से छह भागों में बँटने से इसकी शोभा विशेष बढ़ गई है। भरत-खण्ड के दक्षिण भाग में आर्य खण्ड नामक एक प्रदेश है। जिसमें सुख-दुःख युक्त पाप-पुण्य को धारण करनेवाला छह कालों का समूह सदा विद्यमान रहता है। यहाँ सुखमा-सुखमादि नामक काल का वर्णन लिखा जाता है। 'सुखमा-सुखमा' नामक प्रथम काल देव कुरु भोग भूमि के समान है। जिसमें शरीर तथा आहारादि की समानता रहेगी। 'सुखमा' नामक दूसरे काल में मनुष्य दो कोस ऊँचा होता है। इस काल की महिमा शुभप्रद है, यदि स्थिति या आहार के विचार से देखा जाए, तो यह काल हरिवर्ष क्षेत्र के पर्वतवाले काल के समान है। 'सुखमा-दुःखमा' नामक तीसरे काल में, मनुष्य एक कोस ऊँचा होता है। इसकी रचना भोग-भूमि के समान जघन्य होती है। 'दुखमा-सुखमा' नामक चौथे काल की उत्पत्ति विदेह-क्षेत्र के समान होती है; जिसमें तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण सदृश महान पुरुषों की उत्पत्ति होती है। 'दुःखमा' नामक पाँचवें काल में पुण्य तथा पाप के कारण शुभाशुभ परिणति होती है, जिसमें अच्छे-बुरे कर्मों के कारण मनुष्य की आयु कम हो जाती है—धर्म का विनाश होने लगता है। 'दुःखमा-दुःखमा' नामक छठे काल में धर्म से रहित, पापा-स्वरूप अल्पायु दुष्ट प्रकृतिवाले मनुष्यों की अधिकता रहेगी। अतः इस आर्य भूमि में मोक्ष की प्राप्ति के लिए दीपक के समान उक्त छहों काल सर्वदा विद्यमान रहते हैं। इस आर्यावर्त्त की पुण्य भूमि में अनेकों बड़े-बड़े देश, ग्राम एवं नगर हैं, जहाँ सदा पुण्योदय होता रहता है। बहुत-से स्थान मुनियों से पूर्ण हैं, जिनकी शोभा का वर्णन असम्भव-सा है। इस आर्य खण्ड के मध्य भाग में मगध नामक एक देश है। जहाँ मनुष्यों की तथा विशेषतया भव्य जनों की प्रधानता है। इस देश में एक गाँव दूसरे गाँव से बहुत निकट है। जहाँ के लोग धन-धान्य से सम्पन्न हैं, यहाँ पर फलों की प्रचुरता है। यहाँ के तालाबों में निर्मल जल भरा हुआ है, जिसमें काले-काले गजराज मेघों से सेवित होकर उसमें जल क्रीड़ा कर रहे हैं। साथ ही यहाँ के तालाबों की उपमा श्रीकृष्ण के साथ दी जा सकती है। कारण श्रीकृष्ण कमलाकर अर्थात् लक्ष्मी के हाथ सहित हैं— वैसे ही तालाब भी कमलों से भरा हुआ है। उनमें अनेकों तरह के पुष्प पाये जाते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण देवों से सेवित हैं, उसी प्रकार तालाब

अपने पुष्पों से कृष्णवर्ण हस्तियों के मद को चूर करनेवाले हैं। यहाँ के प्रत्येक वनप्रान्त में पहाड़ की चोटियों पर, प्रत्येक ग्राम तथा नदियों के किनारे मुनिगण दिव्य उपदेश देते हुए धर्म में लीन रहते हैं। अनेकों गणधर अपनी शिष्य-मण्डली के साथ यहाँ आते रहते हैं। यहाँ की शोभा अद्भुत है। यह भूमि कितनी मनोरम तथा पुण्य से परिपूर्ण है। जहाँ पर देवगण अपने-अपने विमानों पर बैठ कर अपनी देवांगनाओं के साथ केवली भगवान के दर्शन-पूजनार्थ आते हैं तथा यहाँ के मनोरम उद्यानों की आपूर्व छटा के आगे अपने स्वर्गलोक का सुख भूल कर यहाँ आनन्दोत्सव मनाया करते हैं। इस मगध देश में जब गोपियाँ अपनी मधुर सुरीली तान में गीत गाने लगती हैं, तब हरिणों का झुण्ड उनके गीतों पर मन्त्रमुग्ध हो कर निडर बन जाता है, भगाने पर भी नहीं भागता। तालाबों में गजराज जल पीने आते हैं—किन्तु हथिनियों को देख कर विरह-वेदना से पीड़ित होकर—अपने प्राण तक त्याग देते हैं। यहाँ की भूमि अनेकों तीर्थस्थानों के लिए प्रसिद्ध एवं अनेकों देव-विद्याधरों से सेवित है। अनेक मुनिगणों के आगमनों से यह पुण्यभूमि सर्वदा सुशोभित रहती है।

राजगृह वर्णन

इसी पवित्र मगध देश में शोभामण्डित जन-धन से पूर्ण व्याप्त राजगृह नाम का एक अति रमणीक नगर है। यह अन्न-धन तथा जन का मानो आगार है। यहाँ कोई मनुष्य मूर्ख नहीं होता। सभी धनवान कुबेर की समता करते हैं। स्त्रियों का तो कहना ही क्या? सभी शीलवती नारियाँ रूप में देवांगनाओं को मात करती हैं। यहाँ के वृक्ष, कल्पवृक्ष के समान हैं। स्वर्ग के विमानों की तरह सुवर्ण से घरों का निर्माण हुआ है। यहाँ पर अन्न के बहुत ऊँचे-ऊँचे पौधे हैं, जो समृद्धि की खान हैं। यहाँ के राजा देवेन्द्र के समान प्रतापी-बुद्धिमान हैं, जिन्होंने अपने प्रताप से भूतल पर विजय पाई है तथा जो स्वर्गलोक में भी अपना अधिकार जमाने के लिए मानो समर्थ हैं। मगध के अधिवासी जन धर्मपरायण एवं व्रताचारी भव्य जीव हैं। वे कर्म शत्रुओं को नष्ट कर के केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षधाम को जाते हैं। भोग-विलास के प्रेमी भी उत्तम-उत्तम व्रत कर पुण्य प्रताप से स्वर्गगामी होते हैं। यहाँ पर कितने ही ऐसे सुखार्थी भव्य जीव हैं, जो उत्तम-मध्यम तथा जघन्य पात्रों को दान दे कर, आजीवन भोग-भूमि में रह कर, सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करते हैं। राजगृह नगर के अधिवासी जन ज्ञानी होने के कारण अन्य बातों में आपसी बैर-विरोध नहीं रख केवल दान-पूजा में ही प्रतिद्वन्द्विता रखते हैं। यहाँ के जिनालयों तथा राजभवनों में सर्वदा उत्तम भक्त पुरुषों द्वारा जयध्वनि होती रहती है। दान के लिए सदा राजप्रासादों का द्वार खुला रहता है। इसी राजगृह नगर में उप-श्रेणिक नाम से विख्यात—यशस्वी एवं प्रतापी, ज्ञानी, धर्मात्मा एवं ऐश्वर्यशाली राजा उस समय राज्य

करते थे। इनकी दानशीलता, तेजस्विता, प्रताप, वैभव तथा गम्भीरता के लिए कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, कुबेर एवं सिन्धु की उपमा दी जाती थी। ये धर्म की साक्षात् मूर्ति तथा गुणों के आगार थे। दान, त्याग, सुख, भोग एवं निर्भयता में ये अपनी सानी नहीं रखते थे। इनकी शूरता बढ़ी-चढ़ी थी अर्थात् इनका जीवन सर्वतोभावेन पवित्रमय जीवन था, जिनमें ज्ञान की मात्रा यथेष्ट थी। इसलिये ये अजातशत्रु हो रहे थे। अनेक राजा इनके सेवक थे। इनका प्रतिद्वन्द्वी शायद ही कोई हो। जिससे सेना-बल प्रयोग की कभी आवश्यकता नहीं रहती थी। महाराज उप-श्रेणिक की साक्षात् इन्द्राणी सदृश गुण-सम्पन्ना पटरानी का नाम भी इन्द्राणी था। वह केवल नाम से ही नहीं, वरन् देवेन्द्र की इन्द्राणी के समान ही समस्त गुणों से युक्त थी। वह महारूपवती थी, पति को सदा प्रसन्न रखती थी। उसके उरोज सुधा-घट के समान कामदेव को जीनदान देनेवाले थे, उत्तम हार रूपी सर्प से शोभित युगत कलश के तुल्य थे। उरोज क्या थे? मदन ज्वर को दूर करने में औषध रूपी लेप का काम करते थे अर्थात् वह सर्व गुणों से सम्पन्न हो कर महाराज उप-श्रेणिक के साथ सुखपूर्वक भोग-विलास करती हुई आनन्दमय जीवन बिता रही थी। राजा-रानी में अटूट प्रेम-बन्धन था। वे सुखरूपी सरोवर में प्रेमपूर्ण स्नान करते थे। दोनों का दाम्पत्य जीवन प्रेममय तथा पवित्र था, जहाँ दु:ख का नाम तक नहीं था मानो पुण्य के प्रत्यक्ष अवतार थे। उनकी कीर्ति की पताका चारों ओर फहरा रही थी, अनेक राजा उनकी सेवा किया करते थे। तब भला उनके समान इस संसार में कौन बड़भागी, सुखी अथवा आनन्दित होगा? जिसका संसार में कोई भी शत्रु न हो, भला उसे अजातशत्रु नहीं कहेंगे? जब कोई शत्रु ही नहीं, तब उपद्रव कैसे होंगे? उनके प्रभाव से सर्वत्र उपद्रव होने बंद हो गये। इस प्रकार उप-श्रेणिक ने बहुत दिनों तक सुख-शान्ति के साथ राज्य किया। कहा गया है—'बडे भाग्य से श्री स्त्री तथा कीर्ति मिलती है।' जहाँ इन्द्राणी समान पटराणी हो, वहाँ 'राज्यश्री' की क्या कमी हो सकती है? समृद्धि तो घर-घर में व्याप्त रहती थी। अतः समस्त वैभव की जड़ (मूल) एक धर्म ही है।

धर्म से लक्ष्मी, सम्पदा, स्त्री, मान-मर्यादा, स्वर्ग-लोक, पुत्र-कलत्र तथा लोक-परलोक मे उच्च स्थानों की प्राप्ति होती है। अतः समस्त भव्य जीवों के लिए धर्म का मार्ग ही सच्चा मार्ग है, जिसकी सच्ची आराधना से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है। अतः जिनेन्द्र भगवान के उपदेशित सारभूत सिद्धान्त जिसे 'धर्म' कहते हैं, उसकी सर्वदा आराधना करनी चाहिए।

द्वितीय अध्याय

शोभा कमल धारनेवाले जो जिनेश कहलाते हैं। जो ईश्वर इस अखिल जगत में तीर्थ-प्रवृत्ति कराते हैं।।
पदमनामश्री-चरणों में मैं नत-मस्तक हो जाता हूँ।। उपश्रेणिक के नगर-गमन की रूचिकर कथा सुनाता हूँ।।

श्रेणिक का जन्म वर्णन

कुछ समय के बाद उनके भाग्य का सितारा चमका। उनके श्रेणिक नामक एक प्रतिभाशाली पुत्र हुआ। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति यहाँ सोलहों आने चरितार्थ होती है। बालक श्रेणिक कितना गुणवान था—इसका वर्णन क्या किया जाए? फिर भी पाठकों के सामने कुछ वर्णन किया जा रहा है। श्रेणिक के रूप पर कामिनी स्त्रियाँ लट्टू हो जाती थीं। उसके काले-काले घुँघराले केश अति मनोहर दिखलायी देते थे। उसके मुखरूपी कमल की सुगन्धि से सब मोहित हो गये थे। उसके भव्य ललाट पर तिलक ऐसे शोभित होता था, मानो विधाता ने उसके ललाट पर त्रिभुवन के राज्य-शासन का टीका ही लगा दिया हो। नेत्र नीलकमल के सामन थे, जिसके मध्य भाग में गन्ध लेने के लिए सुशोभित नासिका उनकी सीमा बाँध रही थी। उसके मुख के साथ चन्द्रमा की उपमा कैसे दी जाए? चन्द्रमा में तो कुछ कलंक अवश्य पाए जाते हैं, परन्तु उसका मुख निष्कलङ्क, निर्दोष तथा प्रकाशवान था। उसकी छाती बहुत चौड़ी थी, जिस पर हार बड़े सुन्दर लगते थे—तब यही प्रतीत होता था कि जिसकी ऐसी छाती है, वह अवश्य ही किसी विशाल साम्राज्य पद का अधिपति होनेवाला है।

उसके दोनों लम्बे बाहु कल्प वृक्ष की शाखाओं की समता करते थे, क्योंकि वे तो दान देने में विख्यात थे तथा कामिनी स्त्रियाँ तो उसके भुजारूपी जाल में ही फँस जायेंगी। उसकी कटि वृक्ष के समान थी जैसे कामदेव स्वयं करधनीरूपी महासर्प बन निवास कर रहा हो। उसके घुँधरुओं के शब्द विमोहक थे—उसके चरणों की उपमा किससे दी जाए, वे उत्तम लक्षणों से युक्त, शुभ आकारवाले कान्तिवर्द्धक तथा शोभावाले थे। राजकुमार श्रेणिक कितना भाग्यशाली था कि उसके साथ विवेक, श्री एवं ज्ञान मानो छाया की तरह व्याप्त थे। बालपन में ही उसकी बुद्धि की प्रशंसा होने लगी, कारण वह वृद्ध न होने पर भी ज्ञान-वुद्ध प्रतीत होता था। उसके प्रत्येक कार्य से उसकी अलौकिक प्रतिभा प्रकट हो रही थी। सभी उससे प्रसन्न थे। गुणों के कारण ही लोग पूजे जाते हैं। उन्होंने सहज में ही शास्त्रों का अध्ययन कर लिया एवं शस्त्रों में निपुणता प्राप्त कर ली। उसकी दानशीलता तो प्रसिद्ध थी ही, साथ ही ज्ञानवान, बुद्धिमान एवं भाग्यवान होने के कारण अपने माता-पिता का वह विशेष स्नेहभाजन हुआ। इस प्रकार राजकुमार श्रेणिक ने यौवन अवस्था मे पदार्पण किया। महाराज उप-श्रेणिक के अन्य पाँच

शतक (सौ) पुत्र थे, जो सभी अनेकों गुणों से भी संयुक्त थे।

युद्ध में विजय—कष्ट के वन में

उसी समय में सोमशर्मा नामक एक अभिमानी राजा चन्द्रपुर में राज्य करता था। वह किसी को भी अपने सामने कुछ नही समझता था। जब महाराज उप-श्रेणिक ने सोमशर्मा के अहंकार की बात सुनी, तब उन्होंने उसके ऊपर अपनी सेना लेकर चढ़ाई कर दी। दोनों ओर की सेना में घोर युद्ध हुआ, परन्तु विजय श्री महाराज उप-श्रेणिक के हाथ लगी। सोमशर्मा युद्ध में हार जाने के कारण बड़ा दु:खी हुआ। यद्यपि उसके हाथ से उसका राज्य नहीं गया, किन्तु महाराज उप-श्रेणिक से हार जाने की कसक उसके हृदय से नहीं मिटी। वह प्रतिशोध लेने की ताक में बैठा रहा। एक दिन उसने महाराज उप-श्रेणिक के पास सुवर्ण, धन-धान्य एवं रत्न-आभूषणों के साथ-साथ एक दुष्ट-दगाबाज अश्व भेंट-स्वरूप भेजा।

जिस समय महाराज उप-श्रेणिक के सामने सोमशर्मा की भेजी हुई उपहार सामग्री लायी गई, तब उन्हें देख कर महाराज ने सोमशर्मा की बड़ी प्रशंसा की तथा अपने सौभाग्य की सराहना की। महाराज क्या जानते थे कि उसने उत्तम-उत्तम वस्तुओं के साथ एक दृष्ट अश्व भी भेजा है। महाराज तो उसकी सरलता, उसकी राजभक्ति तथा उत्तम भेंट पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दुष्ट अश्व के पास गये। उसका अवलोकन कर भूरि-भूरि प्रशंसा की। महाराज ने कहा—'यह अश्व बड़ा सुन्दर तथा असाधारण है। इसके समान मेरी अश्वशाला में एक भी अश्व नहीं है। अतः यह मेरे समस्त अश्वों में चूड़ामणि स्वरूप है।' महाराज के हृदय में उस अश्व के प्रति इतनी ममता बढ़ गयी कि वे उस पर आरूढ़ होकर उसकी परीक्षा हेतु नगर के बाह्य-स्थित एक वन-प्रांतर की ओर अग्रसर हुए। किन्तु उन्हें क्या ज्ञात था कि वे कालरूपी अश्व पर आरूढ़ हुए हैं; बस, वे ज्योंही वन के मध्य भाग में पहुँचे, तब उन्होंने अश्व की पीठ पर चाबुक मारा। चाबुक के लगते ही अश्व उछल पड़ा तथा हवा से बातें करने लगा। बात-की-बात में वह एक ऐसे भयङ्कर वन में सरपट भागने लगा, जहाँ भयङ्कर सर्पों की फुँफकार सुनाई दे रही थी। रीछ, गजराज एवं वानर अपनी-अपनी विचित्र बोलियों से भयभीत कर देने वाले शब्द कर रहे थे तरह-तरह के पक्षियों के शब्द बड़े भयंकर से सुनाई दे रहे थे। इस प्रकार महाराज उस बेकाबू दुष्ट अश्व की पीठ पर बैठे निरूपाय हो कर उस वन में से जा रहे थे। वह अश्व बेतहाशा भाग रहा था। महाराज के सामने जीवन एवं मरण का प्रश्न था। किन्तु वे विवश थे, उन्हें क्षणमात्र सोचने तक का अवसर नहीं था। तब तक वह उन्हें अन्धकारपूर्ण गड्ढे में गिरा कर न जाने कहाँ उस वन में विलुप्त हो गया। महाराज उस गड्ढे में मूर्च्छित अवस्था में पड़ें रहे। देखिये, विधि का विचित्र संयोग

है कि बैर के कारण आज उप-श्रेणिक महाराज की ऐसी दुर्दशा हो गयी। मानो वे कष्टों के सागर में गिर कर डूबने-उतराने से लगे हो। इतने बड़े राज्य के अधिपति की ऐसी दशा! हाय, कौन जानता था कि राजमहल में अनेकों प्रकार का सुख भोगनेवाला उप-श्रेणिक एक दिन बैर बाँधने के कारण इस घोर वन-प्रांतर में असहाय दशा में एक अन्धकारपूर्ण गड्ढे में अपनी दु:खमय घड़ियाँ गिनेगा। अतः अपने-से कमजोर व्यक्ति के साथ भी यथासम्भव शत्रुता नहीं करनी चाहिये। जिस प्रकार एक छोटी-सी चिनगारी बड़े-बड़े महलों को भस्मीभूत कर देने की प्रचण्ड क्षमाता रखती है, उसी प्रकार एक छोटा-सा व्यक्ति भी एक पजकर उसके अभिमान को शीशे की तरह चकनाचूर कर दिया। यद्यपि रण में हार कर उसने मेरी अधीनता स्वीकार कर ली थी, किन्तु उसने अपने मन में मुझ से प्रतिशोध लेने की ठान ली। अतः वह बाह्य-रूप में अपने हृदय की कुटिलता छिपा कर प्रतिशोध लेने का अवसर ढूँढ़ने लगा। मैं ने उसका राज्य फिर उसी के हाथों में सौंप कर उस कुटिल दुष्ट अभिमानी पर जैसी अनुकम्पा की थी, उसी कृतज्ञता का उस दुष्ट ने यह बदला दिया है। घटना यूँ हुई कि सोमशर्मा ने मेरे पास तरह-तरह की उपहार वस्तुएँ भेजी, जिसमे एक सुन्दर अश्व भी था। वह अश्व देखने में बड़ा सुन्दर था। मैं ने सोमशर्मा की राजभक्ति, सरलता तथा उसके प्रेम-भाव पर विश्वास कर तथा उसके भेजे हुए अश्व के रूप-रङ्ग पर प्रसन्न हो, उसके ऊपर सवारी कर उसके गुणों की परीक्षा लेनी चाही। किन्तु वह अश्व इतना दुष्ट था कि पीठ पर चाबुक लगते ही उछल पड़ा तथा हवा से बातें करने लगा। अवसर पाकर उस दुष्ट अश्व ने इस घोर वन-प्रान्तर के इस गड्ढे में मुझे गिरा दिया, जिससे मेरी दुर्दशा हुई है।'

यमदण्ड का आतिथ्य—ग्रहण

महाराज उप-श्रेणिक ने यमदण्ड के समबन्ध में जिज्ञासा व्यक्त की कि तुम कौन हो, कहाँ रहते हो, किस वर्ण के हो? यमदण्ड ने महाराज के प्रेमपूर्ण वचन सुन कर कहा—'हे नाथ! मैं क्षत्रिय जाति का एक राज्य च्युत सरदार हूँ तथा वर्तमान में इस ग्राम के भीलों का स्वामी हूँ। आप कृपा कर मेरी कुटिया को अपनी चरणरज से पवित्र करें। मैं कितना भाग्यवान हूँ कि आप के समान पुण्यात्मा, प्रतापी एवं दानवीर से मेरी भेंट हुई।' महाराज उप-श्रेणिक यमदण्ड की विनययुक्त वाणी से अत्यन्त प्रसन्न हुए। साथ ही, इस कुसमय की वेला में यमदण्ड के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना सहायक न देखते हुए उसके संग चलने के लिए प्रस्तुत हो गये।

महाराज उप-श्रेणिक ने यमदण्ड के घर में उसके आचार-विचार देख कर आश्चर्य प्रकट किया एवं कहा—'हे यमदण्ड!

तुम जानते ही हो कि मैं एक शुद्ध आचरणवाला सदुगृहस्थ हूँ। अतः एक शुद्ध पवित्र गृहस्थ के यहाँ रह कर मैं उसका पकाया हुआ भोजन कर सकता हूँ। मुझे यह भी विदित है कि तुम उत्तम कुलवाले एक क्षत्रिय राजा हो। किन्तु दीर्घकाल से अपने पूर्व-पुरुषों के निवास-स्थान तक संसार्गादि से विलग रहने के कारण तुम्हारा आचार-विचार वैसा पवित्र नहीं रहा, जैसा कि होना चाहिये था। अतः मैं तुम्हारे परिवार में रह कर तुम लोगों के हाथ का बनाया भोजन ग्रहण नहीं कर सकूँगा।' राजा की इस प्रकार की बात सुन कर यमदण्ड ने करबद्ध विनती की—'हे दयानिधान! आप का कहना सत्य है। यदि आप मेरे परिवार में रह कर भोजन करना उचित नहीं समझते, तो इसके लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है। हे देव! शुद्ध गृहस्थाचार में प्रवीन मेरी तिलकवती नाम की एक कन्या है। वह आप के लिए शुद्ध भोजन बनायेगी। आप कृपा कर उसकी सेवा स्वीकार कीजिये।' राजा ने यमदण्ड की प्रार्थना स्वीकार कर ली। तिलकवती महाराज उप-श्रेणिक की सेवा में दिन-रात रहने लगी। वह प्रतिदिन विविध प्रकार के षटरस बना कर महाराज का चित्त प्रसन्न करती थी। तिलकवती पाक-शास्त्र में इतनी निपुण थी कि उसके हाथ का भोजन कर के महाराज दिन-प्रतिदिन आरोग्य लाभ करने लगे। उसने महाराज के आरोग्य की दृष्टि से औषधि-युक्त भोजन बना कर खिलाना प्रारम्भ किया, फलतः अल्पावधि में राजा पुनः पूर्ववत् निरोग हो गये।

महाराज स्नेह के बन्धन में

अपनी आहत अवस्था में महाराज उप-श्रेणिक के हृदय में मात्र यह अभिलाषा थी कि किसी प्रकार वे शीघ्र स्वस्थ हो जायें। इसके अतिरिक्त उनका ध्यान किसी अन्य वस्तु पर नहीं गया। किन्तु निरोग होने के साथ ही उनके हृदय में प्रेम का अंकुरण होने लगा। उनका मन तिलकवती की ओर आकर्षित होने लगा। उस आकर्षण में स्नेह था, प्रेम था एवं थी उसकी प्राप्ति के लिए रह-रह कर हृदय में उठती हुई बलवती आशा! दिन-प्रतिदिन उसके समागम के लिए महाराज के हृदय में उत्कंठा बढ़ती ही जाती थी। महाराज अपने हृदय में विचार करने लगे—'यह कितनी रूपवती कन्या है? इसकी मधुर वाणी तथा गजगामिनी-सी चाल मेरे हृदय में विस्मय उत्पन्न कर देती है। कितनी कुशाग्र इसकी बुद्धि है? इसके नेत्र चकित हरिणी के समान चंचल एवं विशाल हैं, इसका भव्य ललाट अर्द्ध-चन्द्राकार सदृश है। मुखकमल पूर्णचन्द्र के तुल्य है। कोयल के समान सुरीली इसकी बोली है। इसके रूप, गुण तथा शील की अब कितनी प्रशंसा करें? इसके दोनों उरोज किन्हीं देवोपम घट के समान उन्नत हैं, जिनमें कामदेव मानो सर्प समान युक्त हैं। वे कितने उत्तुङ्ग तथा आकर्षक हैं तथा उनके मध्य में काम-रूपी ज्वर को दूर करनेवाली अति मनोहर उपत्यकां है। इसकी अलौकिक रूप-राशि से प्रतिस्पर्द्धा करना संसार में

किसी भी अन्य सुन्दरी नारी के लिए 'न भूतो न भविष्यति' कभी सम्भव हो सकेगा।' इस प्रकार की चिन्ताधारा में महाराज उप-श्रेणिक डूबते-उतराते थे। तब तक मुिया यमदण्ड उनके पास आ गया। महाराज ने यमदण्ड से विनम्र शब्दों में कहा– 'हे यमदण्ड! मैं आप की गुणवती कन्या के ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। उसने अपने मनमोहक गुणों के कारण मेरे हृदय में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। अतः इस कन्या को मुझे प्रदान कर यश के भागी बनिये, क्योंकि मुझे ऐसा विश्वास होता है कि आप की कन्या के संयोग से मेरा भविष्य सुखमय बन जायेगा।' महाराज उप-श्रेणिक के इस प्रकार वचन सुन कर यमदण्ड ने करबद्ध होकर कहा– 'हे महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं? भला आप जैसे प्रतापी, तेजस्वी मगधाधिराज के योग्य क्या मेरी यह सामान्य कन्या है? कदापि नहीं! जहाँ आप के महल में सुर-सुन्दरियों के समान रूपवान अनेकों रानियाँ विद्यमान हैं, जहाँ कुमार श्रेणिक के समान अनेक प्रतिभाशाली एवं बलवान राजकुमार हैं, वहाँ इस दास की सामान्य कन्या की क्या गणना? यदि मैं आप के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा, तो क्या आप की अन्य रानियाँ इसके साथ उपहास से हेय-बोधक व्यवहार नहीं करेंगी? मेरे समान एक साधारण स्थिति के पुरुष की कन्या हो कर क्या उसका सरल हृदय अपमानजनक संबोधन से, घृणा की बौछारों से तथा पग-पग में लांछनों से टूक-टूक नहीं होगा? मेरी कन्या को यदि दैवयोग से पुत्रा उत्पन्न हो गया, तो उसकी क्या दुर्दशा होगी? आप के राज्य के अधिकारी तो कुमार श्रेणिक होंगे, उस समय मेरी कन्या के पुत्र का जीवन कितना अन्ध्कारमय रहेगा? दास वुत्ति ही उसका कर्त्तव्य शेष रहेगा। उस समय उसके दु:ख से मेरी कन्या भी दुखित होगी, अपमान का जीवन व्यतीत करेगी। अतः हे राजन्! मैं अपने प्राणों से भी प्यारी अपनी कन्या का विवाह आप के साथ कैसे करूँ? पिता के लिए अपनी संतान के प्रति जो कठोर धर्म है, क्या मैं उसकी रक्षा कर सकूँगा? भला आप ही कहिये, इससे आप को तथा मेरी कन्या को क्या लाभ होगा? मैं व्यर्थ के झमेले मे पड़ कर अपनी कन्या का भविष्य संकट में डालना उचित नहीं समझता। हाँ, यदि आप मुझ से वचनबद्ध हो जायें कि मेरी कन्या के पुत्र को ही आप अपना उत्तराधिकारी बनायेंगे, तो मैं सुख से आप के साथ अपनी कन्या का विवाह कर सकता हूँ। यों तो आप मेरे स्वामी हैं तथा मैं आप का एक तुच्छ सेवक हूँ। आप जैसा उचित समझें, वैसा निर्णय कीजिये।' राजा के लिए यमदण्ड की कठिन शर्त स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था। अतः महाराज ने बिना हिचकिचाहट के यमदण्ड की कठिन शर्त स्वीकार कर ली। यमदण्ड ने प्रसन्नता के साथ महाराज उप-श्रेणिक के साथ अपनी कन्या तिलकवती का विवाह कर दिया। महाराज ने उसके साथ भोग-विलास कर कुछ दिनों के बाद बहुत वैभव के साथ अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान किया। मार्ग के अनेक मनोरंजक दृश्यों को देखते हुए वे वन-उपवन की शोभा से प्रसन्न होते हुए राजगृह के निकट पहुँचा गये। महाराज

के आने की सूचना सारे नगर में विद्युत की तरह फैल गयी। राजपरिवार से ले कर प्रजावर्ग तक के हर्ष का पारावार नहीं रहा। सब-के-सब अपने भाग्य की सराहना करते हुए महाराज के स्वागतार्थ बड़े उत्साह के साथ निकल पड़े। राजकुमार तथा प्रमुख नगरवासियों ने आगे बढ़ कर महाराज के चरणों में नमस्कार किया। महाराज उप-श्रेणिक के चिरवियोग से दु:खित प्रजा तथा राजकुमार उनके दर्शन से नहीं अघाते थे। सारा राज-परिवार महाराज के दर्शन के लिए उमड़ पड़ा। कुछ क्षणों के उपरान्त सब ने नगर में चलने के लिए महाराज से प्रार्थना की। महाराज ने तिलकवती के साथ राजगृह नगर में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे असंख्य प्रजा-जन आनन्दोत्सव मनाते हुए चल पड़े। इधर राजगृह नगर में महाराज के आगमन के उपलक्ष में स्वागत का भव्य आयोजन था। सब के द्वार पर आनन्द-मङ्गल प्रतीक बन्दनवार सजायी गयी थी। चारों ओर शङ्ख, पटुह, दुन्दुभि इत्यादिक वाद्य बज रहे थे। कहीं-कहीं सुन्दर वारांगनायें, जो अपने नृत्य से सुर-सुन्दरियों को भी लज्जित कर सकती थीं, वे अपने कला प्रदर्शन से स्वागत के उत्सव को अधिक आनन्दपूर्ण बना रही थी। महाराज उप-श्रेणिक ने बहुत दिनों के बाद अपने प्रिय नगर को देख कर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार बड़े घूमधाम से महाराज का नगर में प्रवेश हुआ। महाराज के साथ नयी रानी तिलकवती को देख नगर-निवासी अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए परस्पर कहते—'देखो, महाराज कितने भाग्यवान हैं। इनके पुण्य का प्रताप तो देखो। जिस प्रकार महाराज धीर, वीर तथा भाग्यवान हैं, उसी प्रकार से भाग्यवती नई रानी भी हैं। देखो, गजगामिनी-सी चाल, मृगलोचनी तथा सर्वाङ्ग सुन्दरी नई रानी कितनी सुन्दर लगती हैं। भला देखिये, महाराज के भाग्योदय का क्या वर्णन किया जाए? कहाँ तो गिर कर गड्ढे में जा गिरे, फिर भी वहाँ घोर वन-प्रान्तर में मङ्गलोच्चार हुआ। सच तो यह है कि महाराज के जितने संचित पुण्य थे, उनके योग ने तिलकवती की प्राप्ति के लिए महाराज को उस घोर वन-प्रान्तर में ले जा कर उस गड्ढे में पटक दिया। यह सच है कि भाग्यवान के लिए विपत्ति भी आनन्द रूप में तथा कष्ट भी सुख में परिवर्तित हो जाते हैं। अतः ज्ञानियों के लिए उचित है कि वे सर्वदा पुण्य-संचय के कार्य में संलग्न रहें।' बड़ी धूमधाम से महाराज ने तिलकवती के साथ राजमहल में प्रेवश किया। उनको एक सुसज्जित मनोहर महल में ठहराया गया। महाराज उप-श्रेणिक तिलकवती के साथ भोग-विलास करने लगे, जिसका कुछ वर्णन पाठकों को भी आनन्ददायक होगा। जहाँ तिलकवती का मुख मानो कमल के समान था, वहाँ महाराज भौंरे के समान रसिक बन कर उसके मुखकमल का रस पीने के लिए मँडराया करते थे। वे परस्पर चन्दन लता पर लोभी भौंरे के समान बेसुध क्रीड़ा करते थे। ऐसा ज्ञात होता था कि अपने उत्तुङ्ग उरोजों के कारण तिलकवती की देहयष्टि मानो दो पर्वतों से युक्त एक सुन्दर वन की तरह हो। उस रमणीक वन में विहार करनेवाले महाराज उप-श्रेणिक मृग के समान थे। जिस समय महाराज उसका

परिधान पृथक् कर देते, उस समय वे उर प्रदेश की रक्षा करते हुए उरोज रूपी दो घंटों पर मानों दो सर्प उपस्थित पाते। रानी तिलकवती एक सरोवर-सी थी, तो महाराज उसमें कीड़ा करनेवाले राजहंस के समान थे। इस प्रकार तिलकवती के साथ भोग-विलास करते हुए उनके 'चलाती' नामक एक रूपवान पुत्र हुआ। तिलकवती भी अपने पुण्य-प्रताप से मन हरण करनेवाली, कला-प्रवीण, अत्यन्त भाग्यवती, सुर-सुन्दरियों के समान रूपवान व प्रतिभाशालिनी एक उत्तम रत्न सदृश दैदीप्यमान थी, जिसकी प्रसन्नता के लिए स्वयं महाराज उप-श्रेणिक सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। वह भी महान रूपवती का श्रृङ्गार कर अपने रूप-लावण्य की प्रभा को विकीर्ण करती हुई अपनी अनोखी चाल तथा बाँकी चितवन से पुण्य की सजीव प्रतिमा सदृश महाराज के साथ नाना प्रकार के भोग-विलास करते हुए आनन्द मय जीवन व्यतीत कर रही थी। इस कथन में जरा भी अत्युक्ति नहीं है कि धर्म के प्रभाव से ही मनभाविनी स्त्री मिलती है तथा उत्तम कुल में जन्म होता है। धर्म से ही स्वर्ग, अर्थ, वैभव, सुख, मोक्ष एवं आनन्द की प्राप्ति होती है। अतः श्रेष्ठ जनों को उचित है कि वे चतुर्मुखी सुख (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के प्रदाता धर्म में सदा रत रह कर पुण्य के भागी बनें।

तृतीय अध्याय

कर्मवीर, प्राचीन, मनोहर, केवलज्ञान, सूर्यधारी— ऋषभदेव प्रभु श्री चरणों में, नमस्कार करता भारी।।
तीर्थङ्कर हैं प्रथम, धर्म की महिमा के उन्नायक हैं सदा धर्म-पालन में रत हो, भक्तजनों! सुखदायक हैं।।

राजकुमारों की परीक्षा का वर्णन

इस प्रकार महाराज उप-श्रेणिक आनन्दपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे। किन्तु उनके हृदय में यमदण्ड के साथ की हुई प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में रह-रह कर चिन्ता बनी रहती थी। वे सोचते थे कि मैं ने तिलकवती के पुत्र चलाती को राज-सिहासन पर बैठाने का वचन तो दे दिया है, किन्तु अपने इतने सुयोग्य पुत्रों के रहते हुए मैं किस प्रकार उसे राज्य दे सकूँगा। इसी उधेड़-बुन में पड़ कर महाराज ने एक ज्योतिषी को बुला कर कहा—'मेरे पश्चात् इन पुत्रों में कौन राजा बनेगा? आप कृपा कर कहिये।' ज्योतिषी ने गणना कर कहा—'हे महाराज! आप अपने पुत्रों की इन उपायों से परीक्षा कर लीजिये। आप का जो राजकुमार इन परीक्षाओं में सफल हो, उसे ही राज्य करने योग्य भावी नरेश समझें। प्रथम युक्ति यह है कि आप अपने समस्त राजकुमारों के शीश पर शक्कर से भरा हुआ एक-एक घट रख दीजिये एवं उसे सिंहद्वार तक पहुँचाने का आदेश दें। जो राजकुमार अपने घट को किसी सेवक द्वारा यह करवायेगा तथा स्वयं खेलता हुआ जायेगा वह राजा होने योग्य है।

दूसरी युक्ति यह है कि आप का जो राजकुमार सर्वथा नवीन घट को ओस से भर कर ले आयेगा, वह राजा होने की योग्यता रखता है। तीसरी परीक्षा यह है कि एक दिन आप अपने सभी राजकुमारों को एक साथ बैठा कर खिलायें। उनकी थालियों में भाँति-भाँति के पकवान, मिष्ठान एवं अन्य उत्तम व्यंजन परोसे जायें। जिस समय सभी राजकुमार उत्तम व्यंजनों के भोजन के स्वाद में तन्मय हो जायें, उसी समय उनके ऊपर व्याघ्र के सदृश भयङ्कर भूखे कुत्तों को छोड़ दिया जाय। हे महाराज! उस समय आप का जो राजकुमार उन भयानक कुत्तों को परे रख कर भोजन करने में साहस के साथ डटा रहेगा, वही इस मगध देश का उत्तराधिकारी बनने की क्षमता रखता है। चौथी परीक्षा यह है कि जिस समय आप के नगर में आग लगे, उस समय आप का जो राजकुमार अपने शीश पर सिंहासन, छत्र एवं चँवर ले कर नगर से बाहर निकल जाए, वहीं निःसन्देह आप के राज्य का सच्चा उत्तराधिकारी बनेगा। पाँचवीं परीक्षा यह है कि आप अपने प्रत्येक राजपुत्र के सन्मुख उत्तम-उत्तम पकवानों से भरा हुआ एक-एक पिटारा तथा शुद्ध मिष्ट जल से भरा हुआ एक-एक घट रखवा दीजिये। पिटारे तथा जल के घटों का मुँह बन्द रहने पर भी जो राजकुमार पिटारे एवं घट से (बिना उनके मुँह खोले) पकवान ता जल निकाल अपनी क्षुधा-पिपासा शान्त करने में समर्थ होगा हे राजन्! वहीं विवेकी राजकुमार आप की राजगद्दी पर बैठेगा।' ज्योतिषी महाराज विविध युक्तियाँ बतला कर चले गये। अब महाराज के मन में इस बात की चिन्ता हुई कि मैं ने चलाती को राजा बनाने के लिए वचन दिया है, किन्तु परीक्षा द्वारा न जाने कौन-सा राजकुमार राजगद्दी पर बैठने के लिए योग्य निकले। अतः मैं स्वयं उन राजकुमारों की परीक्षा लूँगा। देखता हूँ कि परीक्षा का कैसा परिणाम निकलता है? मेरी दी हुई बात रहती है या विधि का विधान का कुछ और ही है।

एक दिन महाराज उपश्रेणिक ने अपने समस्त राजकुमारों को बुला कर कहा—'हे प्रिय पुत्रों! मेरी आन्तरिक इच्छा है कि तुम लोग अपने शीश पर एक शक्कर से भरा हुआ घट रख कर सिंहद्वार की तरफ जाओ।' महाराज की आज्ञा सुन कर समस्त राजकुमार सहर्ष तत्पर हुए। सब ने अपने-अपने शीश पर शक्कर से भरा हुआ एक-एक घट रख कर सिंहद्वार की और उत्साह के साथ प्रस्थन किया। किन्तु वाह रे श्रेणिक! तुम्हारी बुद्धिमता की जितनी भी प्रशंसा की जाए सब थोड़ी है। तुमने तो उसकी पराकाष्ठा ही कर दी। राजकुमार श्रेणिक ने शक्कर से भरे हुए घट को एक सेवक के शीश पर रखा कर सिंहाद्वार की ओर खेलते कूदते प्रस्थान किया। वहाँ पर थोड़ी देर ठहर कर वह अपने महल में चला गया। जब महाराज उप-श्रेणिक ने यह समाचार सुना कि केवल राजकुमार श्रेणिक ने सेवक के शीश पर शक्कर से भरा हुआ घट रखवा कर सिंहद्वार की ओर प्रस्थान किया है जब कि अन्य सभी राजकुमार स्वयं अपने शीश पर घट रख कर गए हैं, तब वे चिन्ता से

व्यग्र हो गए कि श्रेणिक ही राजपद के योग्य है, अब मैं कैसे चलाती को राजा बनाऊँगा? बड़ी विकट समस्या सन्मुख आ गयी।

कुछ दिनों के बाद महाराज ने पुनः समस्त राजकुमारों को बुला कर कहा कि तुम लोग प्रत्येक एक-एक सर्वथा नवीन घट को ले जा कर उसे ओस-बिन्दु से भर कर मेरे पास ले आओ। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम लोगों में से कौन-कौन राजकुमार इस प्रतियोगिता में सफल होता है। समस्त राजकुमार प्रातःकाल होते ही अपना-अपना घट ले कर ओस से उसे भरने के लिए चले। वे ओस (घास) से भींगे हुए तृणों के क्षेत्र में गये। सब लोग अलग-अलग बैठ कर जल से भींगे हुए तृण से ओस निचोड़-निचोड़ कर घट में भरते जाते थे। किन्तु नवीन घट होने के कारण उनका निचोड़ा हुआ जल सूख जाता था। लाख प्रयत्न करने पर भी किसी का घट ओस-बिन्दु से न भर सका। सब-के-सब हताश हो कर मन मार कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। अन्त में लज्जित होकर चलाती सहित समस्त राजकुमार रीते घट ले कर अपने-अपने महल में चोरों की तरह लुक-छिप कर लौट आये। किन्तु श्रेणिक की अवस्था इससे सर्वथा भिन्न थी। उसने ओस जल से भींगे हुए तृण प्रदेश में एकाकी जाकर एक वस्त्र रख दिया। भींगे हुए वस्त्र से उसने जल निचोड़ कर घट भरना शुरू किया। तब बात-की-बात में उसका घट भर गया। राजकुमार श्रेणिक ने ओस-बिन्दु से भरे हुए घट को महाराज के सामने उपस्थित कर दिया। अब महाराज उप-श्रेणिक के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। उन्होंने राजकुमार श्रेणिक के सामने उसकी बुद्धिमता की बड़ी प्रशंसा की, किन्तु उनके हृदय में निराशा तथा चिंता के घनघोर बादल घिर कर गर्जन-तर्जन करने लगे। राजकुमार श्रेणिक की सफलता पर महाराज समझ गये कि परीक्षा द्वारा यही राजगद्दी का अधिकारी सिद्ध होगा। किन्तु तब उनके दिये हुए वचन का क्या मूल्य रह जायेगा?

अब महाराज ने तीसरी परीक्षा के लिए समस्त राजकुमारों को एक साथ बैठ कर भोजन के लिए बुलाया। महाराज की आज्ञा के अनुसार कुमार श्रेणिक के साथ समस्त राजकुमार एक साथ भोजन करने के लिए अपने-अपने आसन पर बैठ गये। सब के सामने सुवर्ण के थाल रखे गये। उन थालों में तरह-तरह के पकवान, मेवा, मिष्ठान (जैसे खाजे, घेवर, मोदक, खीर, गोंठा, मीठा भात) इत्यादि परोसे गये। समस्त राजकुमारों ने उन उत्तम-उत्तम व्यज्जनों की प्रशंसा करते हुए भोजन प्रारम्भ किया। इसी बीच में महाराज की आज्ञा से खूँख्वार भूखे कुत्ते वहाँ छोड़ दिये गये। भोजन की उत्तम सुगन्ध से उन्मत्त वे कुत्ते बुभुक्षित-से टूट पड़े। राजकुमारों में भगदड़ मच गयी। अब भला भोजन कौन करता? सब को अपनी-अपनी जान के लाले पड़ गये। जिसे जिधर मौका मिला नौ-दो-ग्यारह हुआ। सब के होश हिरन को गये-सब ने भाग कर अपनी जान बचाई। समस्त राजकुमारों में केवल श्रेणिक ही वहाँ डटे रहे। जब कुत्तों का झुण्ड उनके निकट आने लगा, तब उन्होनं भागे हुए अन्य

राजकुमारों के थालों से मिष्टान निकाल कर उनके आगे फेंकना शुरू किया। कुमार श्रेणिक की चुतराई से वे भयङ्कर कुत्ते स्वादिष्ट भोजन पा कर हट गये। तब शान्ति के साथ निर्विघ्न होकर कुमार श्रेणिक भोजन करने लगे। श्रेणिक की इस बार भी विलक्षण सफलता देख कर महाराज उप-श्रेणिक चिन्तारूपी सागर में डूबने-उतरने लगे।

संयोग से एक दिन राजधानी में भयङ्कर आग लग गयी। सब-के-सब घबड़ा कर भाग निकले। अन्य राजुकुमारों ने अपनी-अपनी प्रिय वस्तु ले कर वन की ओर प्रस्थान किया। किसी ने अश्व, किसी ने खंड्ग, किसी ने भला ले कर प्रस्थान किया। किन्तु राजकुमार श्रेणिक अपने शीश पर सिंहासन, छत्र एवं चँवर ले कर वन की ओर गए। इस चौथी परीक्षा में भी कुमार श्रेणिक सफल रहे।

अब महाराज को निश्चय हो गया कि श्रेणिक ही राजा होगा। उनके ह्रदय में अपने प्रिय पुत्र चिलाती के लिए चिन्ताग्नि धधकने लगी। अब केवल अन्तिम परीक्षा शेष रह गयी थी। महाराज ने हारे हुए जुवारियों के समान परीक्षा रूपी अपना अन्तिम पासा फेंका। उनका साहस छुट चुका था, धीरता धरातल में धँस चुकी थी। रह गयी थी आशा की एक क्षीण ज्योति जिसके बल पर वे चाहते थे कि जैसे भी हो चिलाती को ही राजगद्दी दी जाए अन्यथा तिलकवती के सन्मुख उनका क्या मान रहेगा? यमदण्ड से क्या कह कर अपनी मर्यादा की रक्षा होगी? वे चाहते थे कि चाहे न्याय से हो या अन्याय से चिलाती को राज्याधिकार दिलाना होगा। अतः ज्योतिषी की अन्तिम परीक्षा पर ही महाराज की आशा टिकी हुई थी। महाराज ने समस्त राजकुमारों को बुला कर मिष्ठान से भरे हुए पिटारों से मिष्ठान खाने एवं जल से भरे हुए घट से जल पीने के लिए कहा। समस्त पिटारों तथा घट के मुँह बँधे हुए थे। सभी राजकुमारों ने पिटारों का मुँह खोल कर भरपेट मिष्ठान खाया तथा घट के मुँह खोल कर जल पी कर पिपासा शान्त की। किन्तु चतुर कुमार श्रेणिक पिटारे तथा घट के मुँह बन्द कर रखने का रहस्य तुरन्त समझ गये। वे ताड़ गये कि इस प्रकार बन्द कर रखने का कोई-न-कोई उद्देश्य है। अतः राजकुमार श्रेणिक पिटारे का मुख बिना खोले उसको हिलाने लगे। पिटाने के नीचे गिरे हुए मिष्ठान के चूर्ण को उठा कर उन्होंने खाया तथा घट के आस-पास के जल से अपनी प्यास बुझाई। किन्तु पिटारे तथा घट का मुख नहीं खोला। परीक्षा की अन्तिम बाधा भी निर्विघ्नतापूर्वक पूरी हो गयी। शेष समस्त राजकुमार तो ज्योतिषी के कहे हुए वचन के अनुसार असफल रहे। केवल कुमार श्रेणिक ने ही सफलता प्राप्त की।

चिन्ता के कारण अब महाराज का रहा-सहा धैर्य भी छूट गया। महाराज अपने मन में सोचने लगे—'अधिकारी तो श्रेणिक

ही है जिसने परीक्षा द्वारा राजपद पाने की योग्यता सिद्ध कर दी है। अब मैं क्या करूँ? किस प्रकार मैं अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करूँ? एक तरफ प्रतिज्ञा-पालन है, तो दूसरी ओर विधि का विधान है। विधि ने श्रेणिक को राज्य-सिंहासन का अधिकारी माना है, किन्तु तब मेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा?'इस प्रकार महाराज चिन्ता-सागर में डूबने-उतराने लगे। अन्त में उन्होंने अपने सुमति एवं मतिसागर नामक दो बुद्धिमान मंत्रियों को बुला कर उनसे अपने मन के चिन्ताजनक भाव कहना प्रारम्भ किये—'हे मंत्रियों! मेरे मन में भविष्य के लिए बड़ी चिन्ता रहती है, जिससे मैं घुला जा रहा हूँ। अतः उसके निवारण का कोई उपाय कीजिये।' महाराज की बात सुन कर सुमति नामक मंत्री ने कहा—'हे महाराज! आप विशाल साम्राज्य के स्वामी हैं। आप के प्रताप से समस्त शत्रु सदा भय-त्रस्त रहते हैं, फिर आप के हृदय में चिंता का क्या कारण है? मैं समझ भी नहीं पाता कि आप क्यों चिन्तित हैं? जब आप की अश्वशाला में देवताओं के वाहनों से भी अधिक बलवान, धरती को अपनी टापों से प्रकम्पित कर देनेवाले उत्तम-उत्तम अश्व विद्यमान हैं, जब आप की गज सेना के दन्तरूपी खड्गों से समस्त संसार तक छिन्न-भिन्न हो सकता है तथा आप के संकेत मात्र से आप के सैनिक एवं रथी शूरवीर संग्राम में अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं, तब भला ऐसा कौन-सा शत्रु है, जिसकी ओर से आप चिन्तित हैं। आप के राज्य में कोई प्रच्छन्न द्रोही भी दृष्टिगत नहीं होता। न आप के राज्य में अपना हिस्सा बँटानेवाला कोई हिस्सेदार ही दिखलाई देता है तथा आप के समस्त राजकुमार आप की आज्ञा-पालन में सदा तत्पर रहते हैं। आप की शासन-व्यवस्था से अप्रसन्न होकर कोई भी प्रजा-जन आप का विरोधी नहीं हैं। हे महाराज! आप की चिन्ता का कोई उचित कारण मेरी समझ में नहीं आता। अतः आप स्वयं अपनी चिन्ता का कारण कहिये, जिससे उसकी निवृत्ति का उपाय किया जा सके। क्योंकि यदि आप अपनी चिन्ता का कारण नहीं बतायेंगे, तो प्रजावर्ग से ले कर राजमंत्री तक चिन्ताग्रस्त रहेंगे एवं फलतः वे क्लेश उठायेंगे। आप निश्चयपूर्वक जानिये कि जैसा राजा होता है, वैसी ही उसकी प्रजा भी होती है। यदि आप चिन्ता युक्त हैं, तो आप की प्रजा कैसे प्रसन्न रह सकती है? अतः आप अपने हृदय की चिन्ता प्रकट कीजिये। इसमें ही आप का तथा समस्त प्रजा का कल्याण है।' मंत्री सुमति की उक्ति सुन कर महाराज ने कहा—'हे मंत्रीवर! मुझे अपने राजकुमारों तथा देश-विदेश के शत्रुओं के विषय में कोई चिन्ता नहीं है। मेरी अहर्निश चिन्ता का प्रधान कारण यह है कि मैं अपने समस्त राजकुमारों में से किसे राजा बनाऊँ? इसयी चिन्ता से मैं घुला जा रहा हूँ।' महाराज की समस्या सुन कर मंत्री सुमिति ने राजकुमार श्रेणिक को उत्तराधिकारी बनाने के लिए कहा तथा उनकी योग्यता की सराहना की।

महाराज ने कहा—'हे मंत्रीवर! मैं जिस असमंजस में पड़ा हूँ, उसकी कथा कह देने से ही आप लोगों को ज्ञात होगा कि

मैं इस समय किस प्रकार घोर धर्म-सङ्कट में पड़ा हुआ हूँ।' ऐसा कह कर महाराज ने अपनी कथा कहना आरम्भ किया। उन्होंने कहा–'हे मंत्रीगण! जिस समय मैं उस दुष्ट सोमशर्मा के भेजे हुए अश्व पर आरूढ़ हो कर जङ्गल में जाकर एक भयङ्कर गड्ढे में उस अश्व पर से गिर गया तथा मृत्यु के पाश में घिरा हुआ महाकष्ट सह रहा था, उस समय उस दुर्गम अटवी में यमदण्ड नामक एक भील मुखिया ने मेरी प्राण-रक्षा की। उसने मुझ को अपने निवास पर ले जाकर मेरी बड़ी सेवा-सुश्रुषा की। उसकी कन्या तिलकवती ने अपनी सेवा के द्वारा तो मेरी मानो कायापलट ही कर दी। उसकी ही सेवा का परिणाम है कि आज मैं आप लोगों के सामने यह सब वर्णन करने उपस्थित हूँ। इसके उपरान्त मैं ने तिलकवती के रूप-गुण तथा लावण्य पर मोहित होकर यमदण्ड से उसके साथ विवाह की चर्चा की। मेरे प्रस्ताव पर उसने कहा कि यदि मैं (उप-श्रेणिक) उससे वचनबद्ध हो जाऊँ कि तिलकवती के पुत्र को ही अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाऊँगा–अन्य किसी राजकुमार को नहीं, तभी मात्र वह अपनी कन्या के साथ मेरा विवाह करेगा अन्यथा नहीं। हे मंत्रियों! मैं क्या करता? उस समय मैं उस कन्या के रूप-लावण्य पर मन्त्र-मुग्ध हो गया था। निरूपाय हो उसके पिता की कठिन प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का वचन मैं ने दे दिया। तिलकवती के साथ मेरा विवाह होना असम्भव था, ऐसा समझ कर मैं ने उसकी कठिन शर्त स्वीकार कर ली। किन्तु यहाँ आ कर कालान्तर में इस सम्बन्ध में मैं ने जब ज्योतिषियों से पूछा, तब उन लोगों ने राजकुमार श्रेणिक को ही उत्तराधिकारी बनाने के लिए परामर्श दिया। अतः ऐसे धर्म-सङ्कट की अवस्था में मेरा कर्त्तव्य क्या है? यदि मैं ज्योतिषियों के कथानुसार राज्य-भार कुमार श्रेणिक को देता हूँ, तो मेरा वचन मिथ्या सिद्ध हो जाता है। फलतः मेरा जीवन ही निष्फल बन जायेगा। सच तो यह है कि यदि मैं अपने वचन का पालन नहीं करूँगा, तो मेरा समग्र संचित पुण्यफल व्यर्थ हो जायेगा। कारण मल-मूत्र से संयुक्त यह शरीर यदि पुण्यहीन होकर रहे तो उसे व्यर्थ ही समझना चाहिये। मेरा तो सर्वदा से यह निश्चित दृष्टिकोण रहा है कि इस क्षणभंगुर जीवन में सबसे बढ़ कर पुण्य कार्य अपने दिये हुए वचन का सत्य पालन है। जिस मनुष्य ने अपने दिए हुए वचन को सत्य सिद्ध नहीं किया; उसका जीवन अथवा मरण दोनों समान हैं। कारण ऐसी दशा में उसका समस्त पुण्य नष्ट हो जाता है। इस शरीर का भी क्या ठिकाना है, कब क्या हो जाए? यह शरीर क्षणभंगुर है। तड़ित के समान चंचल है एवं निमेष-मात्र में ही नाशवान। अतः इस संसार में कोई सार पदार्थ है तो वह प्रतिज्ञा-पालन ही है। जिसने अपने वचन का पालन किया वही आर्य है, उसका जीवन सार्थक है। जिसने अपने वचन का पालन नहीं किया, उसका जीवन निरर्थक समझना चाहिये। अतएव मैं ने आप के सामने अपने वचनबद्ध होने की जो समस्या प्रस्तुत की है, उस पर भलीभाँति विचार करें, यही आप लोगों के लिए उचित है। आप मुझे न्यायोचित परामर्श दें।' महाराज उप-श्रेणिक की

चिन्तायुक्त वाणी सुन कर मतिसागर नामक मंत्री ने कहा–'हे राजन! इस सामान्य-सी द्विविधा के लिए आप इतने चिन्तित क्यों हो रहे हैं? अत्यधिक चिन्ता करने से तो स्वर्ग का साम्राज्य भी विश्रृङ्खल हो जाता है। अब आप चिन्ता त्याग कर धैर्य ग्रहण कीजिए। मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि कुमार श्रेणिक को मैं राजगृह से कहीं अन्यत्र निष्कासित करवा दूँगा, जिससे आप की चिन्ता ही मिट जाए।' महाराज मतिसागर मंत्री को अपने अनुकूल पा कर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने कहा–'हे मंत्रीवर! आप शीघ्र ही मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिये। आप इस कार्य हेतु तत्क्षण सन्नद्ध हो जायें, किसी भी प्रकार से विलम्ब न हो।'

मन्त्री का षडयन्त्र – राजकुमार का निष्कासन

महाराज की आज्ञा पा कर मतिसागर मन्त्री कुमार श्रेणिक के समीप गया। श्रेणिक ने उसकी यथायोग्य अभ्यर्थना की तथा उसके आने का कारण पूछा। मन्त्री ने राजकुमार से कहा–'हे कुमार! महाराज आप से किसी कारणवश विशेष क्रुद्ध हो गये हैं। यदि आप यहाँ रहेंगे, तो वो न जाने आप को कौन-सा दण्ड देंगे? अतः आप के हित में यही उत्तम है कि आप यहाँ से कहीं अन्यत्र चले जायें, जिससे कि महाराज की क्रोधाग्नि से तत्काल तो रक्षा हो जाए।'

मन्त्री का परामर्श सुन कर कुमार ने कहा–'हे तात! भला मेरा क्या अपराध है, जिसके लिए महाराज मेरे ऊपर क्रोधित हो रहे हैं।' मन्त्री मतिसागर ने कहा–'हे कुमार! मेरी समझ में महाराज के क्रोधित होने का तो यही कारण मालूम होता है कि उस दिन जब समस्त राजकुमारों के साथ आप भोजन कर रहे थे, तब कुत्तों के आ जाने के कारण शेष सभी राजकुमार तो अपना-अपना भोजन त्याग कर उठ गये, किन्तु आप ने कुत्तों के रहते हुए उनका स्पर्श किया हुआ भोजन किया। अतः यदि आप की इस धृष्टता पर महाराज रुष्ट हो गये हों, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।' मन्त्री की इस प्रकार की अयुक्तिकर शङ्का सुन कर कुमार ने हँस कर उत्तर दिया–'हे तात! क्या आप सोच सकते हैं कि जो व्यक्ति उन भयङ्कर कुत्तों को अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा हटा कर सुरक्षित अवस्था में अपना भोजन नहीं कर पाता, भला वह किसी विशाल साम्राज्य की रक्षा कर सकने में समर्थ हो सकता है? अतः यदि कुत्तों द्वारा स्पृश्य भोजन करने के कारण महाराज ने मुझ पर क्रोध किया है, तो आप का ऐसा कहना युक्तियुक्त अथवा न्यायसंगत नहीं–बुद्धिमता का परिचायक नहीं। यदि मैं ने कुत्तों को भगा कर भोजन किया है, तो साहस तथा योग्यता का परिचय दिया है। इसके लिए दण्ड कैसा?' मन्त्री ने कुमार के युक्तियुक्त उचित वचन सुन कर पुनः उनसे कहा–'हे कुमार! यह समय न्याय तथा अन्याय के निर्णय का नहीं है, क्योंकि महाराज का क्रोध इस

समय प्रचण्ड रूप धारण कर रहा है। उसका उपशमन करना असम्भव-सा है। अतः आप कुछ समय के लिए राजधानी त्याग कर किसी अन्य स्थान पर चले जायें, जिससे महाराज का क्रोध भी शान्त हो जाए। सच तो यह है कि राजा के क्रोध के सामने सत्य भी असत्य हो जाता है, विद्वान मूर्ख बन जाता एवं कुलीन नीच बन जाता है। अतः यदि आप राज्य का उत्तराधिकारी बने रहना चाहते हैं, तो कुछ समय के लिए अन्यत्र जाने में आप का संकोच नहीं करना चाहिये एवं न ही किसी प्रकार की दुर्भावना के लिए ही अपने हृदय में स्थान देना उचित है। राज्य के भावी उत्तराधिकारी तो आप हैं ही—किसी अन्य कुमार द्वारा इसे हस्तगत कर लेना भी सम्भव नहीं है। तब बुद्धिमान पुरूष का यही कर्तव्य है कि समयानुसार कार्य करने में पग पीछे नहीं धरे। अतएव हे राजकुमार! आप कुछ समय तक प्रवास के लिए यहाँ से अन्यत्र चले जाइये। राजा का क्रोध शान्त हो जाने पर आप यहाँ आकर सुख से अपना राज्य पाने का अधिकार अक्षुण्ण बनाये रख सकने में समर्थ हो सकेंगे।'बुद्धिमान होते हुए भी कुमार श्रेणिक मन्त्री मतिसागर के कपट-जाल में फँस गए। उस समय वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़-से हो रहे थे। वे समझे कि जब स्वयं महाराज मेरे ऊपर प्रचण्ड क्रोधित हो गये हैं, तब न जाने उसका परिणाम क्या हो? ऐसा सोच कर वे अपनी माता से भी आज्ञा लिए बिना अपने पाँच हजार सशस्त्र अङ्गरक्षकों (जो यथार्थ में गुप्तचरी द्वारा राजसेवा किया करते थे) के घेरे में से प्रचछन्न रूप से निकल कर राजगृह नगरी को छोड़ कर गुप्त प्रवास हेतु एकाकी निकल पड़े।

कुमार श्रेणिक की माता का विलाप

यद्यपि राजकुमार श्रेणिक चुपचाप किसी से कुछ कहे बिना घर-द्वार, सुख-वैभव, माता-पिता सब को त्याग कर पिता के अकारण क्रोध के उपशमन हेतु स्वेच्छा से निर्वासित हो गये, किन्तु महाराज द्वारा उनके निष्कासन की मार्मिक सूचना राजगृह नगर के कोने-कोने में विद्युत की तरह फैल गयी। तब भला राजकुमार श्रेणिक की माता क्यों नहीं अपने पुत्र के निष्कासन का शोक-संवाद सुनती? राजकुमार की माता इन्द्राणी ने जैसे ही यह समाचार सुना, वह फूट-फूट कर विलाप करने लगी। पाठकगण! रानी इन्द्राणी के रुदन में कितनी वेदना भरी हुई थी? पुत्र-वियोग का कितना दारुण दु:ख लबालब भरा हुआ था, उसका वर्णन कैसे किया जाए? आप स्वयं महारानी के विलाप को सुनिये एवं अपने हृदय पर हाथ धर कर पूछिये कि माँ के हृदय में अपने पुत्र के लिए ममता का कितना अथाह समुद्र भरा होता है। वह रोती हुई कहने लगी—'हे पुत्र! तुम कितने भाग्यवान थे, तुम्हारी आँखें कमल के समान थीं। तुम कितने पुण्यवान तथा उत्तम लक्षणों से युक्त थे। कोकिल के समान तुम्हारी मधुर वाणी थी एवं गजराज की सूँड़ के समान तुम्हारे आजानु बाहु थे। ललाट कितना प्रशस्त था, जब कि मुख तो

कमल की समता करता था। तुम इतने रूपवान थे कि तुम्हारे रूप को देख कर स्वयं कामदेव भी लज्जित हो जाते थे। तुम्हारे रूप-सौष्ठव-विलास तथा हावभाव के आगे बेचारे मनोज भी अपने को नगण्य समझते थे। तुम्हारी शूरता से समस्त संसार के वीर लज्जित थे। हे मुझ दु:खिया की आँखों के तारे! मेरे एकमात्र अवलम्बन, मेरी अन्धेरी रात्रि समान जीवन के ध्रुवतारे! तुम अपनी माता को असहाय छोड़ कर कहाँ चले गये? हाय, हाय, तुम्हारी क्या दशा होगी? हे मेरे पुत्र! घोर वन में जहाँ व्याघ्रादिक हिंसक जीवों का निवास है, वहाँ तुम किस प्रकार रहते होंगे? हाय, मैं ने अपने पूर्व-जन्म में कौन-सा दारुण पाप किया था, जिससे तुम्हारे सदृश प्रतापी पुत्र से आज वन्चित होना पड़ा है। आह, मेरे समान अन्य कौन अभागिनी माता होगी, जिसने ऐसा हृदय-विदारक दृश्य देखा हो? हे प्रभो! क्या मैंने पूर्व जन्म में किसी माँ से उसके पुत्र का वियोग करवा दिया था? श्री जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का उल्लघन किया था या शील छोड़ कर मैं व्यभिचार में प्रवृत हुई या किसी नदी का सेतु विनष्ट किया था? हे भगवान! क्या मैं ने दूषित जल से वस्त्र-विमोचन किया था या किसी वन को अग्नि दग्ध किया था? किसी व्रत का उल्लघन किय था या रात्रि के समय भोजन किया? किसी दिगम्बर मुनि की निन्दा की या किसी के साथ द्रोह कर उसके वचन की अवहेलना की थी? क्या इसी जन्म में मैं ने कोई दारुण पाप किया है, जिसके कारण मुझे पुत्र-वियोग की मर्मान्तक पीड़ा सहनी पड़ी।' इन्द्राणी का रुदन क्या था, एक दु:खित, जर्जरित मातृ-हृदय का हाहाकार था। उसके रुदन से समस्त नगर में कुहराम मच गया। घर-घर में राजकुमार श्रेणिक के वियोग के कारण शोक मनाया जाने लगा। नगरवासियों के हृदय में कुमार के लिए कितना दु:ख था, कितनी पीड़ा थी एवं कितनी हार्दिक वेदना—उसकी संसार में कोई तुलना नहीं। लोग यत्र-तत्र कहते फिर रहे थे कि महाराज ने कुमार को राज्य से निर्वासित कर घोर अन्याय किया है। राजकुमार सदृश योग्य, बुद्धिमान, प्रतापी, दानी, भाग्यवान एवं लोकप्रिय व्यक्ति को राज्य निष्कासित करना महाराज के लिए अदूरदर्शिता, अन्याय एवं अयोग्य कार्य है। हे बन्धु! महाराज ने ऐसा अनर्थ क्यों किया है? इस प्रकार राजगृह सदृश व्यस्त नगर में कुमार श्रेणिक के निष्कासन से घोर सन्नाटा छा गया, मानो शान्ति के वातारण में कुमार के प्रति अन्याय से उत्पन्न तीव्र जन-असन्तोष को सार्वजनिक अभिव्यक्ति हेतु सविनय अवज्ञा अन्दोलन का सूत्रपात हो गया। इस प्रकार पुरवासी शोकरूपी सागर में गोते लगाते हुए बड़े मानसिक कष्ट का जीवन व्यतीत करने लगे। अब तक तो राजकुमार श्रेणिक के विषय में जानने के लिए हमारे सहृदय पाठक भी घबड़ा रहे होंगे। जिस समय कुमार श्रेणिक गृह, परिवार, राज-वैभव एवं सुख त्याग कर नगर से बाहर निकल पड़े, उस समय उनके हृदय में मानो दु:ख की गङ्गा उमड़ रही थी। वे सोचते जाते थे कि मैं ने कुछ भी अपराध नहीं किया है, फिर भी पिता मेरे ऊपर क्यों क्रोधित हो गये? हाय! माता से भी आते समय भेंट

नहीं कर सका। हे जननी! न जाने तुम अपने पुत्र के वियोग में कितना दु:ख उठा रही होगी? इस प्रकार सोचते-सोचते अपमानजनक असहाय अवस्था में घर से निकाले जाने के कारण उनके मुखमण्डल पर विषाद की रेखा खिंच आयी, हृदय दु:ख से भर गया। वे चिन्तारूपी सागर में गोते खाने लगे।

सेठ इन्द्रदत्त से मित्रता

मार्ग में एक सुन्दर वन देख कर कुमार बड़े प्रसन्न हुए। मनमोहक रंग-बिरंगे मयूरों के झुण्डों को निहारते हुए प्रमुदित चित्त से वे अग्रसर हुए। तब तरह-तरह की ध्वजाओं से शोभित अनेक राजमन्दिर दृष्टिगत हुए। उनके समाने ही नन्दिग्राम नामक नगर का सिंहद्वार था। कुछ समय तक बाहर ही विश्राम करने के बाद वे नगर में प्रविष्ट हुए। आगे बढ़ने पर उन्हें एक मनोहर राजमन्दिर दिखलायी दिया, जिसकी अपूर्व तथा मनमोहिनी शोभा देख कर कुमार बड़े प्रभावित हुए। वहाँ पहुँचते ही उनकी इन्द्रदत्त नामक एक वयोवृद्ध तथा गुणी सेठ से भेंट हो गई। उसके सद्व्यवहार एवं मिलनसार स्वभाव से कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सहृदयतापूर्वक उससे कहा– 'हे सेठ! यहाँ निष्प्रयोजन समय बिताने से क्या लाभ है, आप हमारे साथ इस नन्दीग्राम के अधिपति ब्राह्मण के निवास पर भोजन के लिए चलिए।' इस प्रकार कुमार एवं सेठ उस ब्राह्मण के यहाँ भोजनार्थ गये। कुमार ने विनीत शब्दों में कहा– 'हे विप्रवर! आप कृपा कर हमारे लिए जल तथा भोजन की व्यवस्था कीजिए। हम महाराज उप-श्रेणिक के राजदूत हैं। सेवा कार्य के लिए घूमते-घूमते यहाँ आ गये हैं। आप के समीपस्थ राजमन्दिर परिसर में ठहरे हैं। अब आप हमारे लिए शीघ्र अन्न-जल भिजवाइये।' कुमार की विनती सुन कर उस क्रोधी बाह्मण ने कठोर शब्दों में कहा– 'सावधान, जो यहाँ पर ठहरे। यदि वास्तव में राजदूत हो तो तुम्हें फिर जल तक नहीं पीने दूँगा? भोजन की कामना जिह्वा से भी न निकालो। यहाँ से चले जाओ। बड़े राजदूत बनते हो। चाहे तुम कोई भी हो, मैं तुम्हें यहाँ एक क्षण भी ठहरने नहीं दूँगा।' ब्रह्मण के ऐसे कठोर वचन सुन कर कुमार श्रेणिक ने कहा– 'ऐ निर्दय विप्र! आज तू हमारी अवहेलना करता है। पर तुझे ज्ञात नहीं है कि मैं कौन हूँ? किन्तु याद रख, तेरी इस दुष्कृत्य पर मैं समय आने पर विचार करूँगा। तब तुझे इसका मजा चखाऊँगा।' इस प्रकार कह कर क्रुद्ध कुमार आगे बढ़ गए।

कुमार का बौद्ध-धर्म ग्रहण

मार्ग में चलते हुए उन्हें बौद्ध सन्यासियों का संघ मिल गया। वहाँ गेरुआ बाना धारण किये हुए बौद्ध सन्यासियों को उन्होंने देखा। उनमें से एक सन्यासी ने राजकुमार श्रेणिक के लक्षणों से अनुमान लगा लिया कि वे राजकुमार हैं तथा भविष्य

में उनका राजा बनना निश्चित है। ऐसा विचार कर उसने राजकुमार से कहा–'हे राजकुमार! आप यहाँ कैसे आये। इस प्रकार एकाकी भ्रमण का क्या कारण है?' कुमार ने उत्तर दिया–'महाराज के क्रोध के कारण मैं राज-परिवार छोड़ कर यहाँ आया हूँ।' राजकुमार का उत्तर सुन कर बौद्ध सन्यासियों के आचार्य ने उनका सत्कार किया। भोजन से निश्चिंत होन पर बौद्ध आचार्य ने राजकुमार से कहा–'हे राजकुमार! आप मेरे वचन के ऊपर विश्वास रखिये। आप के अच्छे दिन शीघ्र ही लौटेंगे। ये कष्ट के दिन सदा नहीं रहेंगे। आप ही मगधपति होंगे। अतः आप बौद्ध-धर्म ब्रहण कर लीजिए। इसकी कृपा से राज्य सुख तथा मनोरथ की सिद्धि अवश्य होगी। सच तो यह है कि व्रत तथा उपवास करने से मनुष्य की मनोकामना निश्चिंत ही पूर्ण होती है। अतः आप मेरी सलाह मान कर राज्य सुख तथा कल्याण-हित कामना के लिए बौद्ध-धर्म में दीक्षित हो जाइये।' बौद्ध आचार्य ने राजकुमार से पुनः कहना आरम्भ किया–'हे कुमार! आप एकाग्र मन से बौद्ध-धर्म को विशेषताओं पर ध्यान दीजिए। एक समय की घटना है कि धर्मसभा में यह प्रश्न उठा कि धर्म क्या है? उस समय भगवान बुद्ध ने संघ को सम्बोधित करते हुए कहा था–'धर्म का सच्चा लक्षण वहीं है, जिससे आत्मा का आत्मत्व प्रकट हो। जो संसार के समस्त पदार्थों की क्षणभंगुरता का परिचय देनेवाला हो उसे ही धर्म का रूप कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं है। अतः ऐसे ही धर्म की सेवा करनी चाहिये।' आचार्य कहते ही गये–'हे राजकुमार! इस संसार में समस्त दुःखों की जड़ पाँच तरह की संज्ञायें हैं; जिन्हें विज्ञान, वेदना, संस्कार, रूप एवं नाम कहते हैं। पाँच प्रकार के विज्ञान मार्ग समुदाय होते हैं। जितने सिद्धान्त हैं सबका आधार मोक्ष है। अतः अष्टाङ्ग मोक्ष की कामना के लिए समस्त भव्य जनों को उचित है कि वे सर्वप्रथम इन सिद्धान्तों की पूर्ण-रुपेण विवेचना कर लें। सब से प्रधान बात यह है कि यह समस्त संसार ही नाशवान है, स्थायी नहीं है। अतः कोई पदार्थ स्थिर नहीं रहता। मनुष्य के मन में समस्त पदार्थों के सम्बन्ध में ऐसी भ्रान्त धारण बैठ गयी है कि वे चिरस्थायी हैं। किन्तु वे स्वप्न के समान हैं, उनके एकत्व में सत्य की मात्रा बहुत ही कम है। ज्ञान की सच्ची व्याख्या यह है कि उसमें कल्पना एवं भ्रम का लेश मात्र तक न हो तथा निर्विकल्प होने के कारण प्रमाण-स्वरूप माना जाता है। जिन प्रमाणों में किसी कल्पना सहित ज्ञान की चर्चा हो, वह आदर्श प्रमाण नहीं माना जा सकता। उसकी गणना भ्रम पैदा करनेवाली मृग-तृष्णा में की जाती है। अतः हे राजकुमार! यदि आप सिद्धांतों के सच्चे स्वरूप को देखना चाहते हैं, तो उनका वर्णन बौद्ध शास्त्रों में ही मिलेगा, जिसकी व्याख्या मैं ने आप के सामने की है। इसलिये बौद्ध-धर्म ही संसार में सर्वोत्कृष्ट है। इसे स्वीकार करने से आप के दुःख दूर हो जायेंगे, कष्ट के बन्धन कट जायेंगे। आप अवश्य ही मगधपति होंगे। इसके स्वीकार करने से मनुष्य की मनोकामनाएँ निश्चय ही पूर्ण होती हैं। इसलिये यदि आप अपना हाथ से गया हुआ राज्य वापिस चाहते हैं, तब इस

बौद्ध-धर्म की शरण में आइये। आप की मनोभिलाषा अवश्य ही पूर्ण होगी।' बौद्धाचार्य के वचनों का प्रभाव अपना वांछित कार्य कर गया। राजकुमार श्रेणिक के हृदय में बौद्ध-धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा हो गयी। उन्होंने आचार्य के चरणों में भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया। उन्हें हृदय में शान्ति मिली। कुछ समय तक राजकुमार वहीं रहे। ब्राह्मण ने उनके साथ जैसा दुर्व्यवहार किया था, उसका दु:ख कुछ कम हो गया। कुछ समय के बीत जाने पर राजकुमार श्रेणिक, ने अपने साथी सेठ इन्द्रदत्त के साथ वहाँ से आगे किसी अन्य स्थान के लिए प्रस्थान किया। वे वन-प्रान्तर में गमन करते समय मयूरों के मनमोहक नृत्य से अत्यन्त प्रसन्न हुए। पर्वत की रहस्यमयी-सी गुफाओं को देखते हुए वे आगे बढ़े।

राजकुमार की भेद भरी बातें

मार्ग में चलते-चलते राजकुमार थक गए एवं सेठ इन्द्रदत्त से कहने लगे—'हे मातुल! अनवरत पदाचरण से हम अब शिथिल गात हो चले हैं, अतः आइये अब जिह्वा रथ पर चढ़ कर चलें, जिससे काल्नित दूर हो जाए।' राजकुमार के गूढ़ वचन सुन कर सेठ इन्द्रदत्त तो 'जिह्वा रथ' के सम्बन्ध में कुछ नहीं समझा। उसने अपने मन में विचार किया कि उक्त रथ के विषय में अब तक मैं ने न तो कुछ सुना है एवं न देखा है। इससे यही सिद्ध होता है कि यह आदमी असन्तुलित मस्तिष्क का है, इसके साथ अन्य अधिक बातें नहीं करनी चाहिये। ऐसा विचार कर वह मौन हो गया। उसने राजकुमार के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों मौन बढ़ते गये। फिर मार्ग में चलते समय कोई किसी से नहीं बोला। थोड़ी दूर जाने पर एक नदी मिली। उसका जल बड़ा निर्मल तथा स्वच्छ था, जिससे पथिकों का मन प्रसन्न हो जाता था। उसके पीने मात्र से चित्त के समस्त विकार दूर हो जाते थे।

राजकुमार श्रेणिक जूते पहिने हुए ही नदी में घुस गए। किन्तु सेठ इन्द्रदत्त ने जूते उतार कर उन्हें अपने हाथ में लेकर प्रवेश किया। राजकुमार श्रेणिक को जूते पहिन कर नदी में जाते हुए देख कर सेठ के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। उसने अपने मन में विचार किया—'यह नितान्त मूर्ख है, जो जूते पहिन कर जल में जा रहा है। आज तक मैं ने किसी भी बुद्धिमान पुरुष को जल में जूते पहिन कर जाते न तो देखा एवं न सुना है। अतः यह विचित्र मनुष्य है। इसका मस्तिष्क अवश्य ही विकृत हो गया है। पागल के सिवाय कोई दूसरा मनुष्य इस प्रकार की मूर्खता नहीं कर सकता। अतः यह मूर्ख ही नहीं, एक बड़ा पागल भी है।' दोनों नदी पार कर गये। सेठ इन्द्रदत्त राजकुमार के पीछे-पीछे चलने लगा। वह चुपचाप चलता जाता था। कुछ दूर चलने के उपरान्त वे दोनों धूप की कड़ी गरमी से पसीने में सराबोर हो गये। सामने ही सघन छाया युक्त एक

पेड़ देख कर राजकुमार तथा सेठ उसके नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गए। वहाँ पर कुमार ने फिर अपनी विचित्रता का परिचय दिया। वृक्ष की सघन छाया में वह अपना छाता शीश पर तान कर बैठ गया। सेठ अपना छाता बन्द कर कर बैठा। राजकुमार की इस विचित्रता पर सेठ सोचने लगा—'इस शीतल छाया में इसके छाता लगाने का क्या अर्थ है? धूप की गर्मी से बचने के लिए की छाता लगाने की आवश्यकता होती है। यह विचित्र आदमी है। इसके पागलपन एवं मूर्खता का कुछ भी ठिकाना नहीं है।' इस प्रकार सोचते हुए सेठ इन्द्रदत्त कुमार को देखते रह गये एवं फिर कुछ समय बाद साथ-साथ बढ़ चले। मार्ग में उन्हें उत्तम पुरुषों से युक्त एक रमणीक नगर दिखलायी पड़ा, जो भाँति-भाँति के गज, अश्व एवं अन्य सामग्रियों से परिपूर्ण था। राजकुमार ने यहाँ भी अपने पागलपन का नमूना पेश किया। कुमार श्रेणिक ने कहा—'हे मातुल! क्या मैं आप से एक प्रश्न पुछ सकता हूँ? यह नगर आबाद है या उजड़ा हुआ है?' सच तो यह है कि सेठ अपनी अज्ञानता के कारण राजकुमार के भेद भरे वचनों का कुछ भी अर्थ नहीं समझ पाता था। अतः वह अपने अज्ञानवश राजकुमार को ही मूर्ख या पागल समझता था। इस बार भी राजकुमार के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही वह उसके साथ चुपचाप बढ़ता गया।

थोड़ी दूर जाने पर कुमार तथा सेठ ने देखा कि एक आदमी अपनी सुन्दर स्त्री को पीट रहा है। इस पर राजकुमार ने पुनः अपने भेद भरे वचनों में सेठ से कहा—'हे सेठ! क्या आप कह सकते हैं, यह प्रताड़ित स्त्री बन्धन-मुक्त है या बन्धन-युक्त?' अब सेठ का रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया एवं उसे मन में यह दृढ़ निश्चय हो गया कि कुमार अवश्य पागल है। अतः सेठ ने उसके भ्रामक प्रश्नों का उत्तर देना उचित नहीं समझा। वह चुपचाप उसके साथ चलता गया। चलते-चलते उन्होंने देखा कि एक मरे हुए मनुष्य को कुछ लोग जलाने के लिए श्मशान में लिए जा रहे है। इसे देख कर राजकुमार से रहा नहीं गया, उन्होंने सेठ के लिए अपने पागलपन को सिद्ध करने में अधिक ठोस प्रमाण दिया। राजकुमार ने सेठ से पुनः पूछा—'क्या आप मुझसे कह सकते हैं, यह व्यक्ति आज ही मरा है या पहिले का मरा हुआ है?' सेठ भला उत्तर क्यों देने लगा? उसके मन में राजकुमार के लिए विचित्र धारणा बन गई थी। फलतः दोनों आपस में बिना बोले ही चलते गए। आगे चल कर राजकुमार ने अन्य विचित्र प्रश्नों द्वारा सेठ को अपने पागलपन का रहा-सहा सबूत भी दे दिया। राजकुमार ने एक शालिक्षेत्र देखा, जिसके सुगन्धयुक्त फलों पर लोभी भौंरे रसपान करने के लिए मँडरा रहे थे। जल में भींग जाने से तथा फलों के भार से वह नीचे झुक रहा था। इस पर राजकुमार ने सेठ से पूछा—'इस शालि क्षेत्र का स्वामी इसके उत्तम-उत्तम फलों को खा चुका है या अब खायेगा?' कुछ दूर जाने पर राजकुमार ने एक किसान को हल चलाते हुए देख कर हल के स्वामी के सम्बन्ध में सेठ से पूछा—'इस हल के कितने स्वामी हैं?' फिर थोड़ी दूर चलने पर उन्हें एक बेरी का झाड़ मिला।

इस पर राजकुमार ने सेठ इन्द्रदत्त से पूछा– 'हे मातुल! क्या आप कह सकते हैं इस बेरी के झाड़ में कितने काँटे हैं?' इस प्रकार यात्रा करते-करते राजकुमार ने जिह्वा-रथ, जूता, छाता, ग्राम, स्त्री, शव, शालि क्षेत्र, हल तथा बेर के काँटों के सम्बन्ध में सेठ से प्रश्न किए। सेठ अपनी अज्ञानता के कारण पुण्यवान, प्रखर बुद्धिशाली राजकुमार के भेद-भरे सारयुक्त प्रश्नों के अर्थ समझने में असमर्थ रहा। किन्तु कुमार ने उसकी जिज्ञासा को अतृप्त कर दिया। राजकुमार शास्त्रों में कितने निपुण थे, चन्द्रमा के समान उनकी शोभा थी। लक्ष्मी के वरद-पुत्र के समान तेजस्वी तथा प्रतापवान थे वे। ऐसे राजकुमार श्रेणिक सेठ इन्द्रदत्त के साथ वेणपदम नामक नगर में आये। इस नगर में अनेकों उत्तम सरोवर थे। नगर की शोभा देख कर कुमार भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। किन्तु भाग्यचक्र का उलट-फेर तो देखिये, उसके चंगुल में पड़ कर राजकुमार श्रेणिक को 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' (स्वर्ग से भी उत्तम अपनी जन्मभूमि) राजगृह एवं परम वत्सल माता को छोड़ कर कहाँ-से-कहाँ न जाना पड़ा। नन्दिग्राम में अपमानजनक कटु वचन-बाण सहे, बौद्ध मत की शरण ली एवं फिर सेठ इन्द्रदत्त से मित्रता हुई। इस संसार में कर्मों का फल बड़ा विचित्र है। समस्त अशुभ कर्मों का नाश करनेवाला एक धर्म ही है। इसी से कर्मों के सम्पादन का अवसर मिलता है। धर्म के प्रसाद से प्रिय वस्तुएँ प्राप्त होती है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि जिस कार्य में धर्म-भावना बढ़े, उसी में मन लगावें।

चतुर्थ अध्याय

पाठक! भरी हुई है जिसमें श्रेणिक की चतुराई। कैसे उसने साहस कर के निज बुद्धि प्रकटाई।।
लिखी जा रही नन्दश्री के शुभ विवाह की गाथा। पढ़ लो, प्रेम भाव से भाई! कैसा दृश्य वहाँ था।।

इन्द्रदत्त का घर जाना और अपनी पुत्री से वार्तालाप

राजकुमार जिस समय सेठ इन्द्रदत्त के साथ वेणपदम नगर के बाह्यवर्तो एक सरोवर पर पहुँचे, तब वे वहाँ से ही नगर की रचना पर मुग्ध हो गए। इस नगर की स्त्रियों के रूप का कहाँ तक वर्णन किया जाए? उनकी मुख की सुन्दरता के समाने चन्द्रमा भी लज्जित होकर रात्रि-दिवस यत्र-तत्र छिपा फिरता था। स्त्रियों के रूप-लावण्य को देख कर कामीजनों का मन प्रसन्न हो जाता था। वेणपदम नगर के निवासी बड़े धर्मात्मा थे। वे निशि-दिन पुण्य-कर्मों में संलग्न रहा करते थे। आनन्दित हो रहे राजकुमार श्रेणिक से सेठ इन्द्रदत्त ने पूछा– 'इस नगर में आप क्या करेंगे? कहाँ रहेंगे?' उसने उत्तर दिया– 'हे मातुल! यहाँ के भाँति-भाँति के शोभायुक्त सरोवरों के किनारे-किनारे चलते हुए इस रमणीक नगर में जाऊँगा।' सेठ इन्द्रदत्त

ने कहा—'हे मित्र! यदि आप को यह मनोहर सरोवर इतना प्रिय है, तो आनन्द के साथ इसके किनारे पर घूमते रहिये। किन्तु मेरी आज्ञा के बिना यहाँ से कहीं अन्यत्र नहीं जाइयेगा। अभी मैं अपने घर जाता हूँ, फिर आप को सन्देश भेजूँगा।' इस प्रकार सेठ इन्द्रदत्त ने राजकुमार श्रेणिक को सरोवर के किनारे छोड़ कर अपने घर की राह ली। सेठ इन्द्रदत्त के घर पहुँचते ही उसके परिवार के हर्ष का पारावार न रहा। सेठ ने भी स्त्री, पुत्र तथा कन्याओं से मिल कर अपना भाग्य सराहा। उसका हृदय गद्गद् हो उठा। उसने अपने मन में विचार किया कि बड़े भाग्य से एवं पूर्व जन्म के पुण्य-प्रताप से ही अपने प्रिय जनों से भेंट हो पाती है। जिस समय उसकी स्त्री तथा पुत्रियों ने उसका प्रेमपूर्वक स्वागत किया, उस समय उसका रोम-रोम तक गद्गद् हो उठा।

पाठकगण! इतने से ही आप समझ सकते हैं कि सेठ के हृदय में अपने प्रिय-परिजनों से मिल कर कितनी प्रसन्नता हुई होगी। सेठ इन्द्रदत्त की नन्दश्री नाम की एक कन्या थी। उसका मुख चन्द्रमा को भी लज्जित करनेवाला था। कोयल के समान उसकी मधुर वाणी थी। कोयल भी उसके मधुर स्वर की मधुरता से मानो लज्जित हो जाती थी। उसके सुन्दर विशाल नेत्र कमल के समान मनमोहक थे। उसकी सघन केश-राशि देखने से यही ज्ञात होता था मानो नील मणि भी उसके सामने फीकी है। उसके उन्नत उरोज, क्षीण कटिप्रदेश तथा गजगामिनी-सी चाल ऐसी मनमोहनी थी, जिसका वर्णन असम्भव-सा है। पिता के आगमन का आनन्ददायक सामाचार सुन कर नन्दश्री अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने श्रद्धापूर्वक पिता के चरणों में प्रणाम किया तथा उनसे विनम्र शब्दों में कहा—'हे तात! इतने दिनों तक आप का समय सुख से व्यतीत हुआ था न? किन्तु इस बार आप एकाकी ही आये हैं या आप के साथ कोई उत्तम मित्र भी है? कारण, यदि कोई गुणी मित्र आप के साथ आया होता, तो आप अपने साथ उन्हें यहाँ अवश्य लाते। इसलिये ज्ञात होता है कि इस बार आप की यात्रा अकेले ही हुई है, कोई संगी नहीं मिला।' कन्या के स्वाभाविक, सहज एवं जिज्ञासापूर्वण प्रश्न से सेठ इन्द्रदत्त उसके हृदय की मनोभावना समझ गया। उसने हँस कर कहा—'हे पुत्री! मेरे साथ एक राजकुमार आया हुआ है। उसके रूप, गुण, शील, बुद्धि तथा प्रताप के आगे मैं किसी अन्य पुरुष की तुलना नहीं कर सकता। पर वह मेरे साथ यहाँ नहीं आया वरन् वह नगर के बाहर सरोवर पर ठहर गया है। वह अपने विषय में बतलाता है कि वह मगधाधिपति उप-श्रेणिक का श्रेणिक नामक पुत्र है। किन्तु उसके अटपटे वार्तालाप से सिद्ध होता है कि वह नितान्त विक्षिप्त मस्तिष्कवाला युवक है, अन्यथा वह हर दृष्टि से तेरे लिए उपयुक्त वर है।

पुत्री नन्दश्री का चमत्कारिक उत्तर

पिता के इस प्रकार के उद्‌गार सुन कर अत्यन्त रूपवती, धवल दन्त-पंक्ति से युक्त, मनोहारिणी उरोजों से परिपूर्ण एवं जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से यौवन प्रकट हो रहा है, ऐसी उस वणिक कन्या नन्दश्री ने पिता से कहा– 'हे तात! कृपा कर यह कहिये कि उनकी आयु कितनी है? आप ने उनके कौन-कौन से भाव देखे हैं? वह यहाँ पर किसी कार्य के निमित्त आये हैं?'

कन्या के आग्रहपूर्वक पूछने पर सेठ ने अपने मन में विचार किया कि जब मेरी कन्या उस युवक के विषय में सब कुछ सुनना चाहती है, तब उत्तम भी यही है कि समस्त यात्रा-वृत्तांत सुना ही दिया जाए। प्रगट में उसने कहा– 'हे पुत्री! तुम ध्यान देकर उस युवक के विषय में समस्त बातें सुनो। विदेश से लौटने पर नन्दिग्राम में उस युवक से मेरी भेंट हुई। उसने मुझ को मातुल कह कर पुकारा तथा मुझ से मित्रता स्थापित कर ली। उसके मातुल कहने पर मैं चकित रह गया एवं विचार करने लगा। जब इस युवक के विषय में मैं कुछ नहीं जानता, तो यह मुझे मातुल कह कर क्यों पुकार रहा है? भला तुम ही कहो उसके मातुल कहने का क्या उद्देश्य था? हम लोग एक साथ चलने लगे। चलते-चलते उसने कहा कि चूँकि हम लोग क्लात हो गए हैं, अतः आइये जिह्वा-रथ पर चढ़ कर चलें। उसके इस प्रकार के असम्भव वचन सुन कर मैं ने मन में सोचा कि इस संसार में भला क्या जिह्वा-रथ नामक वाहन के विषय में किसी ने सुना है? हे पुत्री। क्या उसने यह उचित कहा था? थोड़ी दूर चलने पर एक नदी मिली। उसने नदी के जल में अपने जूते पहिने हुए ही प्रवेश किया। एक वृक्ष के नीचे उसकी शीतल छाया में वह छाता लगा कर बैठ गया। एक गुलजार हरेभरे रमणीक नगर के विषय में उसने आबाद तथा उजाड़ का प्रश्न किया। आगे चल कर उसने अपने पति द्वारा पीटी जानेवाली एक स्त्री को देख कर मुझ से पूछा कि–हे मातुल! वह स्त्री बंचन-युक्त है या बंधन-मुक्त? इसी प्रकार उसने एक शव के सम्बन्ध में जिज्ञासा की कि यह अभी मरा है या पहिले का मरा हुआ है? उसने मार्ग में पड़नवाले एक धान्य-क्षेत्र को देख कर प्रश्न किया कि इस क्षेत्र का स्वामी इसके फलों को अब खायेगा या पहिले ही खा चुका है? हे पुत्री! उसने एक हल चलानेवाले मनुष्य को देख कर प्रश्न किया कि इस खेत पर जुतनेवाले हल के कितने स्वामी हैं? बेरी के झाड़ को देख कर काँटों की संख्या के सम्बन्ध में पूछा। इस प्रकार के ऊटपटांग प्रश्न पूछने पर उसे भला कोई पागल नहीं कहेगा तो क्या कहेगा?'

पिता द्वारा कुमार श्रेणिक के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा सुन कर बुद्धिमता नन्दश्री ने कहा– 'हे तात! जिस राजकुमार को आप भ्रमवश पागल समझे हुए हैं, वह वास्तव में पागल नहीं हैं। अपनी बातों से तो वह एक श्रेष्ठ विद्वान सिद्ध

होते हैं। उनके साारयुक्त वचन उन्हें कदापि पागल नहीं सिद्ध करते। उनके वचनों का तात्पर्य मैं समझा कर कहती हूँ, आप सुनिये। उन्होंने आप को मातुल कह कर पुकारा, क्योंकि मातुल के लिए भानजा अत्यन्त प्रिय तथा स्नेह-पात्र होता है। अतः मातुल सम्बोधन से वह आप का कृपापात्र बनना चाहते थे। इसी प्रकार उनकी जिह्वा-रथ की बात सारगर्भित, अर्थयुक्त एवं चमत्कारपूर्ण थी। उसका विशेष अर्थ होता है। उनके जिह्वा-रथ पर चढ़ने का अर्थ यह था कि आप लोग चलते-चलते शिथिल हो गये हैं, अतः मनोरन्जक कथा-कौतूहल (जिह्वा-रथ) द्वारा यात्रा की क्लन्ति दूर करें। हे तात! हे तात! उनके शब्दों में कितना गूढ़ अर्थ भरा है, जिन्हें आप एक पागल मूर्ख के नाम से पुकारते हैं। भला सोचिए तो सही, जिस समय कोई विद्वान् या चातुर व्यक्ति मार्ग में चलते-चलते थक जाता है, तब उस समय सिवाय वाग्विलास के उसकी शिथिलता दूर करने में अन्य क्या वस्तु सहायक सिद्ध हो सकती है। इसलिए उस समय उन्होंने जिह्वा-रथ पर चढ़ने का संकेत कर मनोरन्जक वार्तालाप करने के लिए प्रार्थना की थी, जिससे मार्ग का श्रम दूर हो सके। इसी प्रकार कुमार ने नदी के जल में जूते पहिने प्रवेश कर अपनी बुद्धिमता प्रकट की है। कारण खुले पैर नदी में चलने से काँटे, पत्थर तथा सर्पों के काटने का डर बना रहता है, जिससे त्राण पाने के लिए ही राजकुमार ने अपने जूते का प्रयोग किया एवं उसे आप ने पागलपन का काम समझ लिया। भला क्या इस प्रकार का कार्य भी पागलपन कहा जा सकता है? उन्होंने वृक्ष की शीतल छाया के नीचे अपना छाता इसलिये लगाया था, जिससे वृक्ष पर बैठे पक्षियों द्वारा बीट करने से रक्षा हो सके। कहिये इसमें कितनी बुद्धिमानी है? हे तात! आप की दृष्टि में जो नगर रमणीक तथा हरा-भरा जान पड़ता था, वही नगर कुमार की नजरों में उजड़ा हुआ मालूम हुआ। इस दृष्टि-भेद में कितना रहस्य भरा है। कितनी दूर तक गहराई में इसका अर्थ है। उनके उजड़ा हुआ कहने का यह आश्य है कि जिस नगर में उत्तम धर्मात्मा पुरुषों का वास हो, जहाँ जिन चैत्यालय, जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति तथा यतीश्वरों का निवास हो, वही वस्तुतः आबाद (बसा हुआ) नगर है। जिस नगर में इसका अभाव होता है, वह ऊपर से रमणीक, सुन्दर तथा हरा-भरा दिखलाई पड़ने पर भी उजड़ा हुआ नगर है। हे तात कुमार के इस प्रकार के वचन कितने महत्वपूर्ण युक्ति-युक्त तथा बुद्धिमता से परिपूर्ण हैं। उनके वचनों की अर्थ-व्यापकता कितनी बढ़ी-चढ़ी है, जिसे समझ सकने में सामान्य बुद्धि के मनुष्य समर्थ नहीं हो सकते। उन्होंने पुरुष द्वारा एक स्त्री को पीटे जाने पर आप से उसके बँधे हुए होने या मुक्त होने के विषय में जो प्रश्न किया था, वह पाण्डित्य से शून्य नहीं था। उनके कहने का यही तात्पर्य था कि वह स्त्री जिसे उक्त पुरुष मार रहा है, उसकी विवाहित स्त्री हैं या अविवाहिता। इतने गूढ़ वचनों से उनका चातुर्य ही सिद्ध होता है। कोई साधारण व्यक्ति इस प्रकार के असाधारण, सार्थक तथा अर्थ-गम्भीर शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता। अतः उनके वचन ही उनके महान

व्यक्तित्व, उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा एवं उनके अनन्त ज्ञान के परिचायक हैं। हे तात! उन्होंने उस शव के सम्बन्ध में आप से यह प्रश्न किया था कि यह व्यक्ति अभी मरा है या इसकी मृत्यु पहिले ही हो गई थी। यह सामान्य नहीं है, वरन् विशेष अर्थ का द्योतक है। उनके प्रश्न का यह अर्थ है कि जो व्यक्ति अपने जीवन-काल में धर्मानुसार आचरण करता है, सब जीवों के ऊपर दया-भाव बनाये रखता है, सबसे नम्रता का व्यवहार करता है, उत्तम ज्ञान से युक्त है, कुल का यशवर्द्धक है एवं सत्पात्रों को सविनय दान देनेवाला होता है; यदि उसकी मृत्यु हो जाती है तब उसे तत्काल मरा हुआ कहा जाता है। जिस मनुष्य ने अपने जीवन-भर में पुण्य कर्म का प्रयास तक नहीं किया, पाप-ताप में जलता रहा, दान देने का नाम तक नहीं जाना; उसकी मृत्यु पर लोग यही कहेंगे कि यह पहिले का ही मरा हुआ है। इसलिये हे तात! कुमार के इस प्रकार के प्रश्न करने पर आप उन्हें मूर्ख कैसे मानते हैं? जब कि उन प्रश्नों के आशय में इस प्रकार के उत्तर विचार भरे हुए हैं। कुमार के क्षेत्र-धान्य के सम्बन्ध में प्रश्न करने का अर्थ भी चतुराई भरा हुआ है? जरा उनके प्रश्न की गम्भीरता पर विचार कीजिये। तब आप को बोध होगा कि उन्होंने इस अर्थ में पूछा था कि यदि किसान ने कर्ज लेकर अपना खेत बोया होगा, तब इस खेत का अन्न वह भोग चुका (अर्थात् उसे अन्न भोगने के लिए नहीं मिलेगा)। पर यदि इसने अपने घर के बीज से अपने खेत बोये हैं, तब उसके अन्न को वह अवश्य ही भोगेगा। अतः उनके इस प्रश्न से उनकी बुद्धिमता ही प्रकट होती है। हे तात! उन्होंने आप से बेरी झाड़ के काँटों के सम्बन्ध में पूछा था कि उस पर कितने काँटे हैं? जरा, इस प्रश्न की गूढ़ता पर तो ध्यान दीजिये। कुमार के पूछने का अर्थ यह था कि इसके काँटे दुष्ट मनुष्यों के दुर्वचनों के समान वक्र हैं या उत्तम पुरुषों के मधुर वचनों के समान सरल। हे तात! कुमार ने आप से जितने प्रश्न किए हैं, उनसे उनकी निपुणता का पूर्ण परिचय मिलता है। इससे वाक्चातुर्य की कला में उनका पूर्ण निष्णात होना भी अनायास ही सिद्ध होता है।

अतः हे तात! महाराज उपश्रेणिक के जिस पुत्र के मानस-तल में इस प्रकार के उत्तम विचार भरे पड़े हैं, जिसके हृदय-मन्दिर में इस प्रकार के गूढ़ अर्थयुक्त, सद्विचारों से पूरिपूर्ण ज्ञान एवं भावों को प्रकट करने की अलौकिक प्रतिभा बहुमूल्य रत्नस्वरूप शोभित हो रही है; ऐसे पुरुष-रत्न की मैं स्वयं परीक्षा लेकर देखना चाहती हूँ कि उनमें कितनी क्षमता है? उनके व्यक्तित्व में कितने महान् गुण विद्यामान हैं?'

सेठ ने राजकुमार के सरोवर पर ठहरने की बात कही। अब नन्दश्री के हृदय में कुमार को देखे बिना शान्ति कहाँ? उसके हृदय में कुमार के दर्शन की उत्कट अभिलाषा उहापोह मचा रही थी। उनके भेद भरे गूढ़-वचनों की महत्ता ने उसके

अन्तस्थल में घोर हलचल मचा दी थी। इसलिये वह अधीर होकर निपुणमती नामक अपनी प्रिय सखी के घर पर बड़ी शीघ्रता के साथ गयी। वहाँ कुमार की बड़ाई करते हुए वह कहने लगी—'हे प्रिय सखी निपुणमती! मेरा एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। वह तुम्हारे सिवाय किसी अन्य से होने का नहीं। मैं ने सुना है कि नगर के बाह्यवर्ती सरोवर पर श्रेणिक नामक एक रूपवान राजकुमार आये हुए हैं। तुम शीघ्र जाकर उनको आदर के साथ मेरे पास लिवा आओ। मेरी प्यारी सखी, तत्काल जाओ। देखना विलम्ब न हो।' नन्दश्री के वचन सुन कर निपुणमती ने अपना श्रृङ्गार किया। फिर वह अपने नख में तेल भर कर राजकुमार श्रेणिक की खोज में सरोवर पर गयी। निपुणमती ने कुमार को सरोवर के किनारे बैठे देखा एवं उनके रूप को देख कर अपने मन ही मन सराहना की। कुमार के निकट जा कर उसने मधुर शब्दों में कहा—'हे राजकुमार! क्या आप ही सेठ इन्द्रदत्त के साथ यहाँ आये हुए हैं?'

निपुणमती द्वारा इस प्रकार विनीत शब्दों में जिज्ञासा प्रकट करने पर कुमार श्रेणिक ने कहा—'हे चन्द्रमुखी! मैं ही सेठ इन्द्रदत्त के साथ यहाँ आया हूँ। कहो, मुझ से क्या प्रयोजन है? तुम निःसंकोच मुझ से प्रश्न पूछ सकती हो।' कुमार के वचनों में कितनी मधुरता भरी थी, कितने मोहक थे उनके शब्द। मधुर संभाषण सुन कर निपुणमती ने राजकुमार से कहा—'हे राजपुत्र! जिस सेठ इन्द्रदत्त के साथ आप आये हैं, उनकी एक रूपवती कन्या है, जिसका नाम नन्दश्री है। उसकी सुन्दरता का वर्णन आप से मैं भला क्या करूँ। वह वह इतनी कोमलांगी है कि उसका कटि-प्रदेश उसके उत्तुङ्ग उरोजों के भार से क्षीण हो गया है, जिनकी रक्षा करने के लिए दो पृथुल नितम्ब सदैव प्रस्तुत हैं। उसकी सुन्दरता का भला क्या वर्णन हो, जब विधाता तक उसकी रचना कर सन्देह में पड़ गए कि इस सुन्दरी के समान मनोहारिणी क्या कोई अन्य कन्या है? कहने का तात्पर्य यह है कि जब उसके रूप-ऐश्वर्य पर विधि (ब्रह्मा) तक चंकित हो जाते हैं, तब किसी अन्य की क्या बिसात है? उसका मुखकमल पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त है, जिसके दर्शन करने से ही कामी जनों के चित्तरूपी कमल विकसित हो जाते हैं एवं जिसकी शुभ्र ज्योत्स्न की छटा से अन्धकार का नाश हो जाता है—पदम पुष्प का पूर्ण विकास हो जाता है। उसके नख-शिख कितने कान्तिमय एवं प्रभावान हैं? कामीजनों का मनोहरण करनेवाले उसके मुखकमल की सुगन्ध के रसपान के लिए लोभी भौंरे मँडराते रहते हैं। उसने ही मेरे इस नख में तेल दे कर आप के लगाने के लिए भेजा है। अतः हे राजकुमार! इसे लगा कर आप शीघ्रता के साथ स्नान कर लें। आप को उसने बुलाया है। आप मेरे साथ सेठ इन्द्रदत्त के शोभायुक्त भव्य-प्रसाद में चलें।'

निपुणमती के इस प्रकार के वचन सुन कर राजकुमार सोचने लगे कि नखभर तेल को सार्वङ्ग-शरीर में लगा कर स्नान करने के लिए कह कर मेरी परीक्षा ली जा रही है? इसमें अवश्य ही कोई गूढ़ रहस्य भरा हुआ है। सेठ की यह कन्या निश्चय ही चतुर है, इसलिए इस प्रकार से मेरी परीक्षा लेना चाहती है।

राजकुमार ने क्षणभर कुछ सोच कर तुरन्त ही अपने पैर के अँगूठे से जमीन में एक छोटा-सा गड्ढा खोदा एवं उसमें ताल से जल भर कर निपुणमती से कहा–'हे सुभाषिणी सुन्दरी। अपने नख के तेल को इस गड्ढे में डाल दो।' कुमार की आज्ञा के अनुसार अत्यन्त प्रसन्न होते हुए अपने नख के तेल को उस छोटे-से पर जल से लबालब भरे हुए गड्ढे में उसने डाल दिया। वह सुन्दरी वापिस घर लौटने लगी। राजकुमार ने देखा कि यह रमणी सेठ इन्द्रदत्त के निवास का पता बिना बताये जा रही है। तब उससे कहा–'हे सुन्दरी सेठ के घर का पता बता कर जाना।' निपुणमती ने इसके उत्तर में कुछ भी नहीं कहा, केवल अपने कान में लगाये हुए तालवृक्ष के पत्ते का कर्णाभूषण दिखला कर वह चुपचाप चलती बनी। राजकुमार के पास जा कर निपुणमती ने उसके जो-जो चातुर्यपूर्ण कार्य देखे थे, उनका सविस्तार वर्णन कमलमुखी नन्दश्री से किया। कुमार की बुद्धिमता की प्रशंसा सुन कर नन्दश्री बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने मन में विचार किया कि कुमार की चतुरता का वर्णन पिता से अवश्य करना चाहिए। वे कुमार के आश्चर्यजनक बुद्धि-वैभव से अवश्य ही प्रसन्न होंगे। नन्दश्री शीघ्र अपने पिता (सेठ इन्द्रदत्त) के पास गई। उसने विनम्र शब्दों में कहा–'हे तात! राजकुमार श्रेणिक कितने गुणवान हैं? उनके ज्ञान की प्रतिभा कितनी बढ़ी-चढ़ी है? वे संसार के चतुर व्यक्तियों में सब से अधिक चतुर हैं, कला-निपुण हैं एवं शास्त्रों के विशेष ज्ञाता हैं। उनकी प्रतिभा के आगे किसी अन्य-जन की तुलना नहीं की जा सकती। अतः ऐसे गुणज्ञ चतुर, कला-निष्णात राजकुमार को आदर के साथ आप अपने घर लाना चाहिये। आप उन्हें मूर्ख तथा पागल कदापि नहीं समझें। राजकुमार ने मार्ग में भेद-भरे अर्थपूर्ण जो प्रश्न आप से किये थे, उनसे उनकी महानता, विद्वता तथा प्रतिभा पग-पग पर प्रकट हो रही है। इसलिये हे तात! ऐसे वीर, मनोहर एवं चतुर राजपुत्र का अपने घर पर आतिथ्य करने की मुझे अनुमति प्रदान करें।'

हमारे सहृदय पाठक घबरा रहे होंगे कि राजकुमार श्रेणिक ने क्या किया? राजकुमार श्रेणिक ने उस छोटे-से गड्ढे में भरे हुए तेल युक्त जल को अपने सर्वाङ्ग शरीर में लगाया। अपने शीश पर भौंरों के समान काले बालों में वहीं तेल लगा कर आनन्द के साथ स्नान किया, तत्पश्चात् स्वर्गोपम उत्तम शोभावाले उस नगर में प्रवेश किया। वे वीथिकाओं में सेठ इन्द्रदत्त के भवन की खोज में घूमे, किन्तु सेठजी का मकान कहीं नहीं मिला। राजकुमार जब नगर में चलते-चलते थक गये एवं

सेठजी के घर का पता नहीं लग सका, तब वे एक स्थान पर बैठ कर सोचने लगे—'किस प्रकार सेठ इन्द्रदत्त का पता लगेगा।' इसी चिन्ता में वे निमग्न थे कि इतने में निपुणमती के किये हुए संकेत का ध्यान आ गया। वे झट सोचने लगे—'मैं ने उससे पूछा था कि सेठजी के घर का पता बता कर जाना। तब उसने मेरे प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया था। उसने केवल अपने कान में लटकते हुए तालवृक्ष के पत्तों के गहने की तरफ संकेत किया था। ओह, अब तक मैं व्यर्थ में ही भटक रहा था। उसका संकेत स्पष्ट बतलाता है कि हे राजकुमार! आप मुझ से सेठ के घर का पता क्या पूछते हो? आप के लिए (यदि चतुर हो तो) यह संकेत ही यथेष्ट है कि जिस भवन में तालवृक्ष होगा, वही सेठ इन्द्रदत्त का निवास-स्थल है।' इस प्रकार वे तत्काल यह तलाश करने लगे कि किस भवन में तालवृक्ष है। बहुत खोजने पर एक सतखण्डा महल सदृश भवन मिला, जिसमें ताल का वृक्ष था।

कुमार परीक्षा में कैसे सफल हुए

नन्दश्री ने कुमार की फिर परीक्षा लेने के विचार से अपने द्वार के सामने घुटने भर तक कीचड़ डलवा दी थी एवं एक-एक पग की दूरी पर एक-एक ईंट भी रखवा दी थी। अपनी प्रिय सखी निपुणमती से उसने कहना शुरू किया—'हे सखी! मैं जब स्वयं कुमार की परीक्षा कर लूँगी, तब ही उनसे विवाह करने की प्रतिज्ञा करूँगी।' उसकी प्रिय सखी निपुणमती भी कुमार की बुद्धि-परीक्षा देखने के लिए वहाँ पर ठहर गयी। वे प्रसन्नता के साथ मनोरन्जक वार्तालाप करती हुईं राजकुमार के आने की प्रतिक्षा कर रही थीं कि इतने में वे आ पहुँचे। उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। द्वार के सामने ही कीचड़ भरा हुआ देख कर कुमार सोचने लगे—'हे भगवन्! यहाँ का दृश्य तो विचित्र है। समूचे नगर में कीचड़ का नामो-निशान भी नहीं है, फिर यहाँ पर कीचड़ कैसे हो गया? वर्षा के दिनों में कीचड़ होता है, परन्तु आजकल कीचड़ का होना एक अनहोनी बात है? बड़ी विकट समस्या है। अवश्य ही मेरी परीक्षा ली जा रही है।' कीचड़ में ईंटे देख कर राजकुमार चौंके? उनके मस्तिष्क में यह विचार कौंधा कि कीचड़ एवं ईंटों के ऊपर से सेठ के घर में जाना खतरे से खाली नहीं है। जहाँ एक तरफ कुँआ है, तो दूसरी तरफ खाई है। यदि कीचड़ में धँस कर जाता हूँ तो मेरी हँसी होती है, जो किसी के लिए भी कितनी लज्जाजनक तथा हास्यास्पद बात होगी। यदि कीचड़ से बचने के लिए रक्खी हुई ईंटों के ऊपर से जाऊँ तो पैर फिसल कर गिरने का भय है, जिसमें हाथ-पैर तक टूटना सम्भव है। ऐसी अवस्था में शरीर को कितना कष्ट होगा? ईंटे रखने का दूसरा आश्य यह है कि मैं कीचड़ से बचने के लिए ईंटों पर चढ़ कर फिसल पडू तथा अपनी मन्द-बुद्धि का परिचय दूँ। इसलिये कीचड़

में धँस कर लथ-पथ हो जाना, ईंटों पर चढ़ कर हाथ-पैर तुड़वाने से श्रेयस्कर है। हँसी का पात्र भले ही बनूँ, परन्तु कष्टपूर्ण जोखिम के काम में क्यों कटिबद्ध होऊँ? इस प्रकार सोच कर चतुर राजकुमार ने कीचड़ में घस कर सेठ के मकान में प्रवेश किया।

नन्दश्री कुमार की इस चतुराई पर अत्यन्त चंकित हुई। उसने अपनी सखी से थोड़ा-सा जल कुमार के पैर धोने के लिए भेजा। राजकुमार ने थोड़ा-सा जल देख कर अपने मन में विचार किया यह भी मेरी परीक्षा है। कहाँ भयङ्कर कीचड़ से सने हुए पैर एवं कहाँ चुल्लू भर जल। आश्चर्य है, नन्दश्री ने जान-बूझ कर थोड़ा-सा ही जल भेजा है। अतः यह फिर मेरी कठिन परीक्षा नहीं है, तो क्या है? लेकिन बुद्धिमानों के लिए कोई कार्य कठिन नहीं। जिसकी समय पर आवश्यकता हो बुद्धिमान वैसा ही करते हैं। वे प्रत्येक कार्य को सावधानी के साथ सम्पूर्ण कर डालते हैं। ऐसे उत्तम पुरुषों में हमारे राजकुमार श्रेणिक भी हैं। उन्होंने झट बाँस की पंचट से अपने पैर की कीचड़ अलग कर दी। थोड़े जल से भींगे हुए कपड़े से अपने पैर धो डाले एवं बचा हुआ जल नन्दश्री के पास भेज दिया। नन्दश्री कुमार श्रेणिक के बुद्धिमतापूर्ण कार्य से अत्यन्त प्रसन्न होकर सोचने लगी—'कुमार सचमुच में बड़े चतुर, विज्ञ तथा प्रवीण व्यक्ति हैं। इनके समान चतुर व्यक्ति संसार में अन्य नहीं है। ये कितने रूपवान हैं। इनके रूप-लावण्य के आगे कामदेव भी लज्जित होते हैं।' वह इस प्रकार सोचती हुई कुमार के गुणों पर मुग्ध हो गई, उनकी प्रतिभा पर न्यौछावर हो गई एवं उनके ज्ञान की चरम सीमा पर आश्चर्यचंकित-सी रह गई।

उसने कुमार को भीतर ले जाकर ठहराया। हाथ जोड़ कर मधुर शब्दों में कुमार से निवेदन किया—'हे भाग्यशाली राजकुमार! आप कृपा कर आज मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर यहाँ भोजन करें। हे ज्योति पुन्ज, महाभाग! मैं आज कितनी भाग्यशलिनी हूँ, मेरे पुण्य का कैसा प्रबल उदय हुआ है, जिसके अनुग्रह से आप का पदार्पण हुआ है। हे मेरी आकांक्षों के कल्पवृक्ष! मेरी मनोकामनाओं के आरध्य देव! बड़े भाग्य से प्रियजनों का समागम होता है। उसके समान तो संसार में कोई अभागा व्यक्ति नहीं निकलेगा, जिसने अपने प्रियजन को प्राप्त कर उत्तम रूप से उसकी सेवा नहीं की। अतः हे राजकुमार! आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर आज मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।' कुमारी नन्दश्री के इस प्रकार के रसभरे विनयपूर्ण वचन सुन कर कुमार श्रेणिक ने कहा—'हे सुन्दरी! आज तुम्हारे रूप एवं गुणों की चर्चा सारे संसार में हो रही है। तुम्हारे उत्तम लक्षणों के आगे कोई प्रतिस्पर्द्धा करनेवाला नहीं रहा। हे सुभगे! मेरी ऐसी प्रतिज्ञा है कि जो मेरे इन बत्तीस चावल के दानों से नाना प्रकार के स्वादिष्ट तथा सरस भोजन (जैसे चावल, दुग्ध, दही तथा पक्वान)

उत्तमपूर्वक बना सके, उसीके यहाँ मैं भोजन कर सकता हूँ—अन्य किसी के यहाँ नहीं। अतः हे सुन्दरी! यदि तुम मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे केवल इन बत्तीस चावल के दानों से पूर्वोक्त स्वादिष्ट उत्तम भोजन कराने में समर्थ हो, तो मैं तुम्हारे यहाँ अवश्य ही भोजन कर सकता हूँ।'

कुमार की इस प्रकार की असम्भव बातें सुन कर नन्दश्री ताड़ गयी कि अब मेरी परीक्षा हो रही है। उसने विनम्र शब्दों में कहा—'हे कुमार! यदि आप की ऐसी ही प्रतिज्ञा है, तब कृपा कर अपने बत्तीस चावल के दाने दीजिये, मैं यथासाध्य आप की प्रतिज्ञा पूरी करने की चेष्टा करूँगी।' यद्यपि कुमार की इच्छा परीक्षा लेने की नहीं थी, किन्तु उस कुमारी द्वारा विशेष आग्रह से माँगने पर अपने बत्तीस चावल के दाने उसे दे दिये।

नन्दश्री परीक्षा के चक्र में

पाठकों को आश्चर्य होगा कि कुमारी नन्दश्री केवल बत्तीस चावल के दानों से कुमार श्रेणिक की प्रतिज्ञा का पालन कैसे करेगी? ध्यान दे कर आगे पढ़ें। नन्दश्री ने उन बत्तीस चावल के दानों के उत्तम-उत्तम पूवे तैयार किए। अपनी प्रिय सखी निपुणमती को उन पूवों को बाजार में बेचने के लिए भेजा। यथार्थ में निपुणमति अपने नाम के अनुसार निपुणमति थी। वह उन पूवों को ले कर जुवारियों के अड्डे पर गयी, जहाँ पर खूख जोर-शोर से द्यूतक्रीड़ा चल रही थी। उसने पूवों की प्रशंसा करते हुए अपनी मधुर वाणी कहा—'हे जुवारियों! मेरे पूवों में अद्भुत गुण हैं। आप में से जो जुवारी इसे खायेगा, आज उसकी जीत निश्चत है।' उसके पास रुपये-पैसे के ढेर लगे जायेंगे। उसके मधुर हावभाव के जाल में फँस कर साथ ही उसके प्रशंसायुक्त चमत्कारिक वचनों को सुन कर एक जुवारी ने द्यूतक्रीड़ा जीतने के लोभ में पड़ कर उन पूवों के मनमाने दाम दिये।

निपुणमती तो ऐसे ही आँख के अन्धे एवं गाँठ के पूरे की ताक में थी, जिससे उसे प्रचुर धन मिले। संयोग से जब एक जुवारी ने उसकी लच्छेदार बातों में फँस कर उसे मुँहमागा धन देकर समस्त पुवे खरीद लिए, तब निपुणमती ने वह धन लाकर नन्दश्री के हाथों में रख दिया। नन्दश्री बड़ी प्रसन्न हुई। नन्दश्री ने उस धन से नाना प्रकार के व्यंजन बनाना शुरू किए। भोजन तैयार कर कुमार को बुलाया। कुमार तो भोजन के लिए तैयार बैठे ही थे। लोभी भौंरे की तरह भोजन करने के लिए रसोई घर में वे पहुँच गये। कुमारी ने कुमार को आते देख कर उन्हें आदर के साथ आसन पर बैठाया। श्रेणिक के कथनानुसार तरह-तरह के मिष्ठान, पकवान तथा दुग्ध-दही-निर्मित भाँति-भाँति के उत्तम-उत्तम व्यंजनों को परोस कर वह कुमार के मन को प्रसन्न

करने लगी। कुमार मन-ही-मन उसकी बुद्धिमता की प्रशंसा कर रहे थे। आनन्द के साथ उत्तम-उत्तम भोजन के पदार्थों को खा कर कुमार अत्यन्त संतुष्ट हुए। भोजन कर चुकने पर कुमार ने सुगन्धि-युक्त पान के बीड़े खाये। उस समय कुमार के साथ कुमारी नन्दश्री की युगल छवि इस प्रकार शोभा दे दही थी, जिस प्रकार मानसरोवर में राजहंस के साथ राजहंसिनी दिखलाई देती है। पर अभी तक नन्दश्री के हृदय से कुमार की परीक्षा लेने की उत्कट लालसा पूर्णरूपेण गयी नहीं थी। उसने एक टेढ़ छेद के मूँगा में डोरा पिरोने के लिए राजकुमार को दिया। राजकुमार उसे क्षण भर तक देखते रहे।

नन्दश्री से विवाह

इसके बाद कुमार ने डोरे के एक सिरे पर गुड़ लगा कर मूगा के छेद में डोरा जहाँ तक जा सकता था डाल दिया, फिर चींटियों के बिल पर गुड़ लगे हुए मूँगे को रख दिया। चींटियों ने गुड़ चखने के लालच में डोरे को आर-पार कर दिया। राजकुमार श्रेणिक ने मूँगे को उठा कर नन्दश्री को दे दिया। नन्दश्री के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वह राजकुमार के गुणों पर मोहित हो गयी तथा उनके प्रेम में व्याकुल हो गई। जब सेठ इन्द्रदत्त को कुमार श्रेणिक तथा कुमारी नन्दश्री के परस्पर प्रेम का ज्ञान हो गया, तब उसने दोनों के विवाह की तैयारी जोरों से की। समूचे नगर भर में कुमार तथा कुमारी के विवाह की धूम मच गयी। चारों ओर घण्टे बजने लगें, ध्वजाओं एवं तोरणों से सेठ इन्द्रदत्त का विशाल भवन सज्जित होने लगा। शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदि वाद्य बजने लगे, शहनाई की मधुर ध्वनि से प्रभाती गायी जाने लगी, जिससे आनन्दोत्सव अधिक धूमधाम से मनाया जाने लगा। कुमार तथा कुमारी का विवाह कार्य सम्पन्न कराने के लिए बड़ा सुन्दर विवाह-मण्डप बनाया गया, जिसे देखने के लिए दर्शनार्थियों की भीड़-सी लग जाती थी। बन्दीजनों की खूब बन आई थी, वे प्रातः एवं सायं वेला में कुमार तथा कुमारी के विवाह के विषय में मङ्गल गान गाया करते थे। वाद्य-वादन के साथ बड़ी धूमधाम से दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। दोनों के विवाह से लोगों में एक अपूर्व उत्साह फैल गया। लोग युगल जोड़ी के रूप, शील तथा गुण की प्रशंसा में गीत गा-गा कर आनन्दोत्सव में मग्न हो जाते थे।

लोग परस्पर कहते कि नन्दश्री कितनी सुन्दर तथा पुण्यवान है। इसके विशाल नेत्र कमल सदृश हैं, प्रशस्त ललाट है एवं यह चन्द्रमा के समान कान्तिवाले वर्ण की है। राजकुमार भी कितना भाग्यशाली है कि उसका इस अपूर्व सुन्दरी के साथ विवाह हुआ है। ऐसा सुन कर दूसरा कहता—'अजी क्या राजकुमार कम हैं? उनकी प्रतिभा, कला-कौशल एवं प्रताप के आगे कोई अन्य पुरुष समकक्ष दिखलाई नहीं देता। कुमारी नन्दश्री ने अपने उत्तम-उत्तम व्रतों के पालन के प्रभाव से, सत्पात्रों को

सतत् दान देने के कारण एवम् पूर्व जन्म की तपस्या के बल पर ही ऐसे गुणवान, प्रतिभा-सम्पन्न एवं कलाबिद् को पति के रूपमें प्राप्त किया है।' तीसरा कहता—'अरे! कौन छोटा या बड़ा है, यह कहना असम्भव है। दोनों की उपमा अद्‌भुत है। दोनों की रचना कर प्रकृति ने अपने सृजन-कौशल की पराकाष्ठा कर दी है।' इस प्रकार कुमार एवं कुमारी का विवाहोत्सव मङ्गलपूर्ण आनन्दमय कार्यों द्वारा सम्पन्न हुआ। अतः जो लोग धर्मज्ञ होते हैं, वे धर्म के प्रभाव से लोक-परलोक में पूजे जाते हैं। संसार में उनके यशोगान की दुन्दुभी बजती रहती है। वे सदा सुख, शान्ति एवं आनन्द का जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे ही कुमार श्रेणिक तथा कुमारी नन्दश्री धर्म-कार्यों में लीन होकर बड़े आनन्द के साथ सुख से अपना जीवन व्यतीत करने लगे। सच है, धर्म पालन से समस्त पदार्थों की प्राप्ति होती है। धर्म ही मनुष्य जीवन के उत्थान का एकमात्र साधन है, जिनके द्वारा मनुष्य के लोक एवं परलोक दोनों सुधरते हैं। संसार में धर्म के द्वारा ही यश का प्रकाश फैलता है, अतः सब को धर्म साधन में सदैव रत रहना चाहिये।

पंचम अध्याय

जिसकी कृपा-कोर से जग में नव-दम्पति ने सुख पाया। जीवन-ज्योति जला कर जग में धर्म-ध्वजा को फहराया।।
धार्मिक जन जिसके प्रताप से जग के वैभव पाते हैं। परम पवित्र धर्म के मग में अपना शीश झुकाते हैं।।

कुमारी नन्दश्री का गर्भ धारण और कुमार की वीरता का वर्णन

पाठकगण! सुख का समय शीघ्र व्यतीत जाता है। इसी प्रकार विवाह के बाद कुमार श्रेणिक ने पके हुए ताल-वृक्ष के फलों के समान उत्तुङ्ग उरोजों से अलंकृत नन्दश्री के साथ आनन्द-विहार करना प्रारम्भ कर दिया। कुमारी का अधिकांश समय कुमार के साथ कभी मनोहर उद्यान-भम्रण में बीतता था, तो कभी कल-कल निनाद कर बहनेवाली नदियों के सुन्दर मनमोहक एवं आनन्दप्रद सरोवरों पर उनके सुन्दर दृश्यों के देखनें में सुख से व्यतीत होता था। कभी-कभी महल की छत पर अनुपम सुन्दरी पत्नी नन्दश्री के साथ रङ्गरेलियाँ होती थी। उनका जीवन भोग-विलासमय बन रहा था। सब जानते हैं कि यदि दरिद्र मनुष्य के सामने सुवर्ण का भण्डार आ जाए, तो उसके हर्ष का पारावार नहीं रहता। इसी प्रकार कुमार श्रेणिक के लिए कुमारी नन्दश्री दरिद्र की निधि के समान थी, जिसके अङ्ग-स्पर्श, अहर्निश सहवास एवं रूप-यौवन की अपूर्ण छटा ने राजकुमार को मदमस्त बना दिया था। वे नन्दश्री के साथ क्रीड़ा में अनुपम आनन्द का अनुभव करने लगे। जैसे कमलिनी सूर्य की किरणों से प्रस्फुटित हो जाती है, वैसे ही नन्दश्री भी कुमार के स्पर्श से आनन्दित होकर हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव

करती है। दोनों कभी परस्पर आलिंगन-चुम्बन के द्वारा अद्भुत आनन्द रस का पान करते थे, तो कभी मनोरंजन द्वारा सुख-रस का आस्वादन करते। कभी हास्य-विनोद द्वारा आनन्द की गङ्गा बहाते, कभी प्रकृति के सौंदर्य का रस-पान करते, तो कभी हठात् अङ्ग-स्पर्श द्वारा उत्पन्न हुए आश्चर्यजनक दैहिक सुख का उपभोग करते। इस प्रकार मन, वचन एवं काय द्वारा विविध प्रकार की क्रीड़ाओं में निमग्न होकर वे सुख एवं आनन्द के समुद्र में डूबने-उतराने लगे। इस प्रकार उनके सुखानन्द की घड़ियाँ बीतते देर नहीं लगीं।

इस रति-क्रीड़ा का परिणाम भी आनन्ददायक हुआ। पुण्य के प्रताप से नन्दश्री के गर्भ रह गया। उसके उदर में गर्भ की उत्तरोत्तर उन्नति प्रकट करनेवाले लक्षण दिखने लगे। पाठक गर्भ-धारण की अवस्था कितनी कष्टपूर्ण होती है, उसे गर्भवती स्त्री ही जानती है। नन्दश्री के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गर्भ-धारण से उत्पन्न परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे। उसका मनोहर मुख पीत हो चला, उरोजों के अग्रभाग श्यामवर्णी हो गये। भोजन एवं आभूषण में अरुचि होने लगी, शरीर शिथिल पड़ने लगा। उसके शिथिल अङ्ग में आलस्य ने आकर अपना आधिपत्य जमा लिया। जिस प्रकार नक्षत्रों से विहीन प्रातःकाल सुन्दर दिखलाई देता है, उसी प्रकार गर्भ-धारण करने के भार से नन्दश्री की गति मन्द पड़ गयी। जिसकी मतवाली चाल गज को भी मात करती थी, जिसके मुखमण्डल का सौन्दर्य देख कर चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता था, कमल के समान जिसके सुन्दर नेत्र थे, ऐसी वह नन्दश्री गर्भ की अवस्था में पीत पड़ जाने पर भी बड़ी मनोज्ञ दिखलाई देती थी। इस प्रकार उसमें गर्भाधान का पूर्ण चिन्ह प्रकट होने लगा। गर्भ की अवस्था में उसने सात दिन तक अभय-दान देनेवाले उत्तम स्वपन देखे। उसके ह्रदय में अपने पति की वर्तमान दयनीय स्थिति की चिन्ता ने घर कर लिया। वह चिन्तित क्यों न हो? नन्दश्री जानती थी कि उसका पति अब तक किसी तरह अपना समय व्यतीत कर रहा है। उसकी मनोभिलाषा कैसे पूर्ण होगी? क्या जल के बिना उत्तम लतिकायें प्रफुल्लित रह सकती हैं? उसी प्रकार नन्दश्री दिन-प्रतिदिन स्पप्न में देखे अभय-दान के सम्बन्ध में लालसा अपूर्ण पर चिन्तित रहने लगी। फलस्वरूप सदैव विहँसती हुई नन्दश्री के कमल सदृश मुखमण्डल पर चिन्तारूपी तुषारापात हो गया, जिससे वह म्लान हो गया। उसके मुख की दमकती हुई कान्ति प्रभाहीन हो गयी। चन्द्रमा-सा मुखड़ा निस्तेज दिखलाई देने लगा। नन्दश्री की ऐसी अवस्था देख कर कुमार श्रेणिक को हार्दिक वेदना हुई। उन्होंने अपने मन में विचार किया—'अरे इसे क्या हो गया है? अभी कल तक ही इसका चेहरा चन्द्रमा के समान दमकता था, पर आज इसके मुख पर उदासी की घनघोर घटा क्यों छा गयी है? आज मेरी प्रिया नन्दश्री निस्तेज क्यों दिखलाई दे रही है?' उन्होंने नन्दश्री से कहा—'प्रिय! तुम्हारी उदासी का क्या कारण है? अरे, तुम्हारे हँसते हुए चन्द्रमा-से मुखड़े पर उदासी-रूपी काली स्याही किसने फेर दी है? मेरी प्राणप्रिये!

शीघ्र अपनी चिन्ता का कारण मुझ से कहो।' अपने पति के स्नेह-युक्त मधुर वचन सुन कर भी अपने स्वप्न की कामना पूर्ण होना असम्भव मान कर पहिले तो वह मौन रही, परन्तु कुमार के विशेष आग्रह करने पर उसने कहा– 'हे स्वामी! मैं ने सात दिनों तक अभय-दान-सूचक स्वप्न देखा है? किन्तु उसकी पूर्ति कैसे हो, इसी चिन्ता में मैं घुली जा रही हूँ। आप की स्थिति मैं भलीभाँति जानती हूँ। अतः मेरी चिन्ता का इसके अतिरिक्त कोई अन्य काण नहीं है।'

नन्दश्री के इस प्रकार के चिन्तित होने का कारण जान कर कुमार ने उत्साहवर्द्धक शब्दों में कहा– 'प्रिये! इसके लिए तुम व्यर्थ ही चिन्ता क्यों करती हो। मैं तुम को विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण कर दूँगा। अब तुम निश्चित हो कर सुख से अपना समय व्यतीत करो। मैं तुम्हारी इच्छा की पूर्ति के लिए जा रहा हूँ।' कुमार के आत्म-विश्वासपूर्ण वचन सुन कर नन्दश्री के हृदय में शान्ति एवं सुख का सन्चार हुआ। अब राजकुमार के हृदय में चिन्ता ने अपना डेरा जमाया। वे सोचने लगे कि किस प्रकार मैं अपनी प्राणप्रिय पत्नी की मनोभिलाषा पूर्ण करूँगा। इस प्रकार सोचते-सोचते कुमार वन की ओर चल दिये एवं वहाँ नदी के किनारे बैठ कर पुनः नन्दश्री के स्वप्नरूपी चिन्ता-सागर के गोते खाने लगे। दैवयोग से उसी समय एक ऐसी आसाधारण घटना घटी, जिसने नन्दश्री की स्वप्न-पूर्ति में विशेष निमित्त का काम किया। उसी समय उस नगर के वसुपाल नामक राजा का प्रिय हाथी (गजराज) बिगड़ गया। उस मतवाले गजराज ने अपने लोमहर्षक एवं हृदय-विदारक उत्पात से नगर में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। लोग उसके प्रचण्ड हमले के कारण भयभीत हो कर अपने-अपने घरों में घुस गये। उसने अपने ऊँचे दाँतों से नगर के अनेकों घर उजाड़ डाले, बड़े-बड़े मजबूत खम्भे तोड़ डाले एवं हरे-भरे वृक्षों की डालियों को अपनी प्रबल सूँड से उखाड़ कर नगर की सारी सड़के आच्छादित कर डालीं। उसके भीषण चीत्कार से समस्त दिशायें काँप उठीं, मानों उसने उन्हें रण-निमन्त्रण (ललकार) दिया हो।

उसके भयङ्कर प्रकोप ने सारे नगर में त्राहि-त्राहि मचा दी। बलवान से बलवान पृरुष उसके सामने जाने में हिचकते थे। इस प्रकार वह पर्वत के समान विशाल, निरंकुश-मत्त गयन्द चिंघाड़ करता हुआ, मार्ग में तोड़-फोड़ करता, ऊधम मचाता ठीक कुमार के सामने मदमाती चाल में पहुँच गया। कुमार उठ कर खड़े हुए तथा उस मदमस्त गजराज से लड़ने के लिए आगे बढ़ आये। कुमार ने उस मतवाले गजराज से भीषण युद्ध कर प्रबल प्रहारों से उसे अपने वश में कर लिया। देखिए, क्षण भर पहिले जिस मत्त गयन्द ने अपने भीषण उत्पात से नगर भर में त्राहि-त्राहि मचा रखी थी, वही मतवाला गजराज कुमार श्रेणिक से युद्ध में थक कर मेमना सदृश बन गया। कुमार उसकी पीठ पर चढ़ कर नगर में चल दिए। जब नगर निवासियों ने कुमार श्रेणिक को उसी मतवाले गजराज के ऊपर शान्तिपूर्वक बैठे देखा, जिसने थोड़ी देर पहिले ऊधम मचाया था, तब

उन्होंने चंकित होकर 'जय-जय' शब्द करना शुरू किया। उस समय सब की जिह्वा पर कुमार श्रेणिक के पराक्रम की चर्चा थी। सभी कुमार के रूप-यौवन की प्रशंसा कर यह कहते थे कि कुमार कितने बलवान हैं। मतवाले गजराज को अपने वश में कर उन्होंने पराक्रम की पराकाष्ठा कर दी है। इस प्रकार रङ्ग-बिरङ्गी ध्वजाओं से युक्त उस रमणीक वेणपदम नगर में पहुँचने के बाद कुमार ने अपनी वीरता का यह प्रथम परिचय दिया।

नन्दश्री की अभिलाषा की पूर्ति का वर्णन

जब महाराज वसुपाल ने सकल गुणों से सम्पन्न, प्रतिभाशाली, असाधारण वीर तथा रूपवान कुमार श्रेणिक को अपने निरंकुश मदमस्त गयन्द पर चढ़ा हुआ देखा, तब महाराज के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। वे कुमार के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अपने हर्ष को प्रकट करते हुए बड़े विनम्र शब्दों में बोले—'हे कुमार! तुम वीरों के शिरोमणि हो। अपने अनन्त पुण्य फलों के भोगनेवाले हे युवक! बोलो—तुम्हारी क्या मनोभिलाषा है? मैं अपनी शक्ति के अनुसार उसे पूर्ण करने का वचन देता हूँ। हे उत्तमोत्तम गुणों के पूर्ण आगार! इसमें तुम तनिक भी संकोच न करो, मैं तुम्हारी अन्तरिक इच्छा अवश्य ही पूर्ण करूँगा।' महाराज वसुपाल के इस प्रकार इच्छानुसार माँगने के लिए कहने पर कुमार श्रेणिक के हृदय में स्वाभिमान जागृत हो उठा तथा लज्जावश वे मौन हो गए। जब इस प्रकार महाराज के कहने पर भी कुमार श्रेणिक ने उनसे कुछ नहीं माँगा तथा मौन खड़े रह गए, तब कुछ लोग कुमार से कहने लगे—'अरे भाई! बड़ा उत्तम अवसर मिला है, तब इस बहती गङ्गा में अपना हाथ क्यों नहीं धो लेते? ऐसे शुभ संयोग को क्यों व्यर्थ गँवा देते हो।'

सेठ इन्द्रदत्त भी वहाँ पर उपस्थित थे। वे समझ गए कि कुमार जैसे स्वाभिमानी पुरुष-रत्न के लिए यह कदापि सम्भव नहीं है कि वे मुँह खोल कर कुछ माँगें। अतः सेठ ने महाराज से कहा—'हे महाराज! यदि आप कुमार के ऊपर प्रसन्न हो कर इन्हें कुछ देना चाहते हैं, तो कृपया अपने नगर तथा समूचे राज्य भर में सात दिनों तक अभय-दान की घोषणा करा दें; जिससे कि कोई भी सात दिवस पर्यन्त हिंसा-कर्म न करे। आप की इतनी ही कृपा करने से कुमार की मनोकामना पूर्ण हो जाएगी।' सेठ इन्द्रदत्त की उक्ति सुन कर महाराज ने कहा—'यदि इसी पर कुमार प्रसन्न हैं, तो मैं उनकी हृदय की अभिलाषा को अवश्य पूर्ण करूँगा।' इस प्रकार कह कर महाराज ने अपने नगर तथा राज्य भर में जीव हिंसा से ७ दिवस पर्यन्त अभय की मुनादी करवा दी। नन्दश्री की प्रसन्नता का कोई पारावार नहीं था। उसके हृदय में अपनी अभिलाषा की पूर्ति के कारण आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। जिस प्रकार जल की सिचाई से नवीन लता प्रस्फुटित होती है, उसी प्रकार नन्दश्री के मन में

शान्ति की छटा दिखने लगी। इस प्रकार वह शुभ लग्न, नक्षत्र, तिथि एवं वार आ पहुँचा, जिसकी प्रतीक्षा में वह दिन-रात अधीर रहा करती थी। नियत समय पर उसके एक अत्यन्त रूपवान, सुन्दर एवं प्रतापी पुत्र हुआ। कमल के समान उसके नेत्र सुन्दर थे, चन्द्रमा के समान उसकी कान्ति थी। नन्दश्री के पुत्र होने का आनन्ददायक समाचार समस्त नगर में घर-घर फैल गया। लोग आनन्द के साथ खुशियाँ मनाने लगे। नन्दश्री के हर्ष का भी कुछ पारावार नहीं था। सेठ इन्द्रदत्त के घर में पुत्रोत्सव की चहल-पहल मच गयी। सुन्दरियों ने बधाई के गीत गाये, बन्दीजनों ने मङ्गल गान कर बधाई दी। वाद्य-वादन से सेठ इन्द्रदत्त का भवन गूँज उठा। नन्दश्री ने अभय-दान के स्वप्न देखे थे, अतः उसी उपलक्ष में नवजात शिशु का नाम 'अभयकुमार' रखा गया। बालक शुल्क पक्ष के चन्द्रमा के समान 'दिन दुना रात चौगुना' बढ़ने लगा। उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग तेजपूर्ण था। बालक का लालन-पालन उचित रीति से होने लगा। सब की दृष्टि उस प्रतिभाशाली, तेज पुन्जधारी सुन्दर बालक पर थी। उसको देखने से यही ज्ञात होता था कि इसके समान त्रिभुवन में कोई अन्य मनोज्ञ आनन्ददायक होनहार बाल नहीं है। उत्तम देख-रेख में बालक अभयकुमार ने अपनी कुमार अवस्था में पदार्पण किया। अल्पकाल में वे सम्पूर्ण शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता हो गए। कुमार श्रेणिक एवं नन्दश्री का समय आनन्द के साथ भोग-विलास में व्यतीत होने लगा। भला आनन्दमय घड़ियों के बीतते कितनी देर लगती है। इस प्रकार कुमार श्रेणिक अपनी पत्नी नन्दश्री के साथ सेठ इन्द्रदत्त के महल में आनन्दमय भोग-विलास का जीवन बिताते रहे।

महाराज उप-श्रेणिक का निधन एवं कुमार श्रेणिक का आगमन

प्रिय पाठकगण कुमार श्रेणिक का वर्णन पढ़ते-पढ़ते मन्त्रमुग्ध मग्न हो गए होंगे, महाराज उप-श्रेणिक का कुछ समाचार देना भी आवश्यक है, जिसके पढ़ने के लिए हमारे सहृदय पाठक उत्सुक होंगे। जब महाराज उप-श्रेणिक ने निष्कण्टक राज्य करते-करते यह समझा कि अब उनकी मृत्यु सन्निकट है, तब उन्होंने अपने प्रिय पुत्र चिलाती को अपने विशाल राज्य का युवराज बना दिया। स्वयं राज्य-कार्य से विरक्त होकर परमार्थ-चिन्तन में दिन-रात्रि बिताने लगे। थोड़े दिनों के बाद महाराज उप-श्रेणिक का प्राणान्त हो गया। महाराज की मृत्यु के समाचार से सारे नगर में शोक की घनघोर घटाएँ घिर आयीं, क्या घर एवं क्या बाहर सर्वत्र हाहाकार मच गया। लोग महाराज के निधन पर शोक-समुद्र में गोते लगाने लगे। महाराज उप-श्रेणिक की जितनी रानियाँ थीं, सब माथा धुन-धुन कर रोने लगीं। काल बली को भला कौन रोक सकता है? जन्म लेने के बाद मृत्यु निश्चित है। अतः रानियों ने वैधव्य वेश धारण किया एवं सौभाग्य-सूचक चिन्हों को त्याग कर शोक के चिन्ह

ग्रहण कर लिए, मानों महाप्रतापी महाराज उप-श्रेणिक की मृत्यु से सारा संसार ही उनके लिए अन्धकारमय हो गया हो।

महाराज उप-श्रेणिक का देहावसान हो जाने पर कुमार चिलाती ही मगध देश का सम्राट बना। वह राज्य पा कर 'परम स्वतन्त्र न शीश पर कोई, भावे मनहिं करहिं सोई-सोई' के अनुसार महा उत्पाती एवं उच्छृङ्खल हो गया। निरंकुश होने के कारण उसका अत्याचार बढ़ता गया। राज-कार्य में सहायता देने वाले उत्तम अमात्य परिषद एवं सामन्तों के होते हुए भी राजनीति में कोरे उस नादान चिलाती ने राज्य करने में अपनी अयोग्यता का परिचय दिया। क्या धनी एवं क्या निर्धन प्रजा पर उसका निर्मम अनाचार मानो दुधारे खड्ग की तरह अपना भीषण वार करने लगा। उसके भीषण दमन के मारे प्रजा त्राहि-त्राहि पुकारने लगी। समस्त प्रजा में चिलाती के मूढ़ शासन ने अत्याचार करना शुरू कर दिया। सभी लोगों के आर्त्त-हृदय से एक स्वर में यह हाहाकार निकल कर आकाश मण्डल में गूज्जने लगा कि चिलाती भारी अन्यायी तथा पापी दुष्टात्मा है। इसके अत्याचार के आगे सब की नाक में दम हो रहा है, इसने सब को लोहे के चने चबवा दिए हैं। चिलाती की निरंकुशता से राज-मन्त्रियों के होश हिरण हो गए। सब लोगों ने विचारा किया इससे राज्य शासन नहीं चल सकता है। अन्त में सब का ध्यान उस निर्दोष निर्वासित युवराज पर गया, जिसे स्वर्गीय महाराज ने अन्याय से राज्याधिकार से वंचित कर देशत्याग के लिए बाध्य कर दिया था।

पाठकगण! उस व्यक्ति को अवश्य जान गए होंगे, वह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं वरन् राजकुमार श्रेणिक ही हैं। जिनकी वीरता, प्रतिभा एवं बुद्धिमता के कायल राजा से ले कर रङ्क तक थे। समस्त प्रजाजन एवं मन्त्रियों ने परामर्श कर कुशल दूत के द्वारा श्रेणिक के पास शीघ्र पधारने के लिए एक पत्र भेजा। पत्र में राज्य-शासन सम्भालने के लिए प्रार्थना भी की गयी तथा उनके पिता महाराज उप-श्रेणिक के स्वर्गारोहण की सूचना भी थी। दूत शीघ्रता के साथ मार्ग तय कर कुमार श्रेणिक के पास पहुँच गया एवं सादर प्रणाम कर के पत्र दिया। उसने राजकुमार से निवेदन किया—'हे कुमार! आप तत्काल मेरे साथ राजगृह चलिए।' पत्र पढ़ कर तथा साथ ही दूत के मुख से राजगृह का समस्त वृत्तान्त सुन कर राजकुमार अत्यन्त दु:खी हुए। कुमार ने सेठ इन्द्रदत्त को प्रणाम कर राजगृह नगर का आद्योपान्त वृत्तान्त कह सुनाया। उनके हाथ में वह पत्र दे दिया एवं निवेदन किया—'राजगृह में मेरा पहुँचना अब नितान्त आवश्यक है, जिसके लिए यह दूत आया है। अत: आप कृपा कर मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। बिना आप की आज्ञा के मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ?' राजकुमार के प्रस्थान की बात सुन कर सेठ इन्द्रदत्त अत्यन्त दु:खी हुए। उन्होंने विचार किया कि अब कुमार के दूर चले जाने से उनके वियोग में मन में बहुत क्लेश होगा। किन्तु

राजकुमार के बहुत समझाने-बुझाने पर सेठ इन्द्रदत्त ने प्रसन्न-चित्त से उनके तत्काल गमन हेतु अपनी भी सहमति व्यक्त कर दी। अब राजकुमार ने सोचा कि नन्दश्री से कैसे प्रस्थान की स्वीकृति लूँ, देखें वह क्या कहती है? मेरे प्रस्थान की अनुमोदना वह करती है या नहीं? इस प्रकार मन में विचार कर कुमार नन्दश्री के निकट गये। उससे दूत के आगमन एवं पत्र द्वारा अपने बुलाये जाने का सारा समाचार कह सुनाया। उन्होंने कहा—'हे प्राणप्रिये! हे चुन्द्रमुखी! हे गजगामिने! मेरे पिता महाराज उप-श्रेणिक के स्वर्गारोहण से राज्य में भारी हलचल मच रही है। यद्यपि इस समय राज्य-शासन कुमार चिलाती कर रहा है, किंतु उसके शासन से प्रजा में तीव्र असन्तोष फैल रहा है। अतः हे सुन्दरी! मेरा वहाँ पहुँचना अत्यन्त आवश्यक है। अगर मैं वहाँ नहीं जाता हूँ तो प्रजा में असन्तोष अपनी सीमा पार कर जाने का भय है। इसलिए तुम कुछ दिनों के लिए हमारे प्रिय पुत्र अभय कुमार के साथ यही रहो। मैं राज्य-शासन अपने हाथ में लेते ही तुम दोनों को शीघ्र बुलवा लूँगा।' राजकुमार के ऐसे वियोगसूचक वचन सुर कर नन्दश्री अत्यन्त उदास हो गयी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। कुमार के जाने की बात उसे वज्र के समान लगी। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वह काठ की पुतली की तरह निश्चल हो गयी, उसका मुखकमल कुम्हला गया। कुमार ने नन्दश्री की ऐसी दशा देख कर उसे बहुत समझाया। फिर सन्तोषप्रद मधुर वचन कह कर उसका हृदय शान्त किया। नन्दश्री से विदा लेकर कुमार शीघ्र ही राजगृह प्रस्थान हेतु तैयारी करने लगे। सेठ इन्द्रदत्त ने कुमार के साथ पाँच हजार बलवान यौद्धा भेज दिए। मार्ग में कुमार ने कई शुभ शकुन देखे। पाँच हजार यौद्धाओं के साथ कुमार मगध देश की सीमा पर पहुँच गए। कुमार श्रेणिक के आने का सुसम्वाद जब मगध देश में मिला, तब समस्त मन्त्रीगण समान्त एवं प्रमुख नागरिकों के साथ कुमार श्रेणिक के पास आये एवं उनकी अभ्यर्थना की। राजकुमार ने यहाँ कुछ दिन ठहर कर अपने दल-बल के साथ राजगृह नगर के लिए प्रस्थान किया। उधर राजा चिलाती ने जब यह समाचार सुना कि अग्रज श्रेणिक ने राजगृह की ओर कूच कर दिया है एवं उनके साथ हजारों योद्धाओं की सेना भी है; यही नहीं समस्त मन्त्री, समान्त एवं प्रमुख नागरिक भी उनके पक्ष में मिल गए हैं, तब उसके होश हिरन हो गये। शूरवीर प्रतापी अग्रज श्रेणिक से पार पाना टेढ़ी खीर था, अतः हताश होकर कुछ धन लेकर वह एक दुर्ग में जाकर छिप गया।

स्वागत का वर्णन

राजकुमार श्रेणिक के स्वागत के लिए समूचा नगर ही मानो समुद्र की तरह उमड़ पड़ा। उनके मस्तक पर शुभ्र चँवर ढुलने लगे। बन्दी जनों ने स्वागत गान गाया। भाँति-भाँति के वाद्य बजने लगे। इस प्रकार बड़ी धूमधाम से राजकुमार श्रेणिक

ने नगर में प्रवेश किया। कुमार के नगर में प्रवेश करते ही जयनाद होने लगा। जिस प्रकार समुद्र की लहरें उमड़ पड़ती हैं, उसी प्रकार नगर की स्त्रियाँ राजकुमार के दर्शनार्थ अपने-अपने घर से निकल पड़ीं। नगर की स्त्रियों के हृदय में एक विचित्र उत्तेजना भर गयी। उनकी उत्सुकता इतनी बढ़ी हुई थी कि किसी ने अपने पति को रसोईघर में भोजन परोसे बिना ही कुमार को देखने के लिए प्रस्थान कर दिया। कोई स्त्री मठा मथ रही थी, तो उसे वहीं छोड़ कर चल पड़ी। तो कोई कुमार के दर्शन के लिए इतनी उत्कण्ठित थी कि अपने श्रृङ्गार में ललाट की बिन्दी आँख में एवं आँख का काजल ललाट पर लगा कर बिना देखे-भाले ही दर्शन के लिए चल दी। तो कोई हार को कमर में एवं करधनी को गले में डाल कर दौड़ पड़ी। कोई स्त्री कुमार के आगमन का समाचार सुन कर उल्टी चोली पहिन कर ही दौड़ती हुई चल दी। किसी ने शीघ्रता में रोते हुए अपने बालक के स्थान पर किसी अन्य का बालक ले कर प्रस्थान कर दिया। कई वृद्धा स्त्रियों ने अन्य स्त्रियों से कुमार के दर्शन करा देने की प्रार्थना की। कितनी ही स्त्रियाँ कुमार के दर्शन में इतनी लीन हो रही थीं कि उनको अपने शरीर की सुधि भी नहीं रही। जिस ओर कुमार की सवारी जाने लगती, उसी तरफ एक-दूसरे पर गिरती-उठती हुई स्त्रियाँ दौड़ लगाने लगती। कई स्त्रियाँ एक बार दर्शन कर घर वापस आने पर दुबारा दर्शन करने दौड़ी गयीं। कई स्त्रियों ने कहा कि वह माता धन्य हैं, जिन्होंने कुमार को जन्म दिया है। जब किसी ने बतलाया कि कुमार का विवाह सेठ इन्द्रदत्त की नन्दश्री नामक कन्या के साथ हुआ है, तब अन्य स्त्रियों ने कहा कि नन्दश्री कितनी भाग्यशालिनी है, उसका विवाह कुमार श्रेणिक के साथ हुआ है। एक स्त्री बोल उठी कि उसके अभय कुमार नामक एक पुत्र हुआ है। इस प्रकार परस्पर में विविधरुपेण वार्तालाप हो रहा था। रङ्ग-बिरङ्गी पताकाओं से सुशोभित अपनी सवारी सहित राजकुमार श्रेणिक राजभवन के पास पहुँचे। राजभवन में बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत हुआ। सर्वप्रथम उन्होंने श्रद्धा सहित अपनी माता के चरणों में प्रमाण किया।

श्रेणिक का राज्यारोहण

कुमार श्रेणिक ने पूर्ण परिचित गणमान्य व्यक्तियों से भेंट की। कुछ दिनों के अनन्तर राज-मन्त्रियों के परामर्श से राजकुमार श्रेणिक का राज्याभिषेक हुआ। उनके, प्रताप, यश, बल एवं बुद्धि के कारण समस्त प्रजाजन में शान्ति का साम्राज्य छा गया। इस प्रकार राजनीति-कला-विशारद-दूरदर्शी महाराज श्रेणिक राज्य का शासन कार्य सुचारु रूप से करने लगे। उनके बिगड़े दिन शान्ति, सुख एवं आनन्द में परिवर्तित हो गये। अतः हे पाठकों! इस संसार में एक धर्म ही ऐसा है, जिसके पुण्य-प्रताप से मनुष्य के सुख के दिन वापिस लौट आते हैं। देखिए कालचक्र से राजकुमार श्रेणिक को किस प्रकार घर-द्वार

छोड़ कर अनजानी डगर का अकिंचन पथिक बनना पड़ता था। फिर सेठ इन्द्रदत्त की शरण में आश्रय लेना पड़ा था, किन्तु धर्म के प्रताप से कालक्रम से वे शासनारूढ़ हुए। अतः समस्त उत्तम पुरुषों का यही कर्त्तव्य होना चाहिये कि वे किसी भी दशा में धर्म से विमुख नहीं होवें। कारण यह है कि धर्म से ही बुद्धि उत्तम होती है, सुख तथा आनन्द की प्राप्ति होती है एवं देवेन्द्रादि उत्तम पदों की प्राप्ति तथा उत्तम कुल में जन्म लेने की क्षमता अर्जित होती है। इसलिये हे पाठकों! आप लोग भी धर्म पालन में सदा कटिबद्ध रहें; जिससे धन, सुख, ऐश्वर्य, उत्तम पद तथा स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति होवे। धर्म ही संसार का आधार है, इसी के द्वारा लौकिक तथा पारलौकिक सुखों का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः धर्म का निरन्तर अनुशीलन करना प्रत्येक श्रेष्ठ मानव का कर्त्तव्य है।

षष्ठ अध्याय

केवल ज्ञान-कृपा से जीवों को शिक्षा देनेवाले, हैं दयालु जो तत्व पदार्थों को प्रकटित करनेवाले।
अन्तिम तीर्थङ्कर स्वामी श्री वर्द्धमान के चरणों में, नमस्कार मेरा है सच्चा सार-धर्म के मर्मों मे।

महाराज श्रेणिक का विलासवती से विवाह

महाराज श्रेणिक ने राजगद्दी पर बैठते ही योग्य रीति से शासन करना आरम्भ कर दिया। उनके राज्य में कोई अनाचारी किसी असहाय पुरुष पर अत्याचार नहीं कर सकता था। उनके न्याय-शासन से प्रजा में शान्ति एवं सुख की अभिवृद्धि होने लगी। सर्वत्र सम्रद्धि व्याप्त हो गई। पाठक तीसरे अध्याय में पढ़ चुके हैं कि महाराज श्रेणिक ने राज्य से अपने निष्कासन-काल में बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले ली थी। बौद्ध आचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर अपनी असहाय दशा में उक्त मत स्वीकार कर लिया था। फलतः उनके हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि बौद्ध-धर्म में दीक्षा के कारण ही राज्य की प्राप्ति हुई है। एक दिन राज-दरबार में जब वे सिंहासन पर बैठ कर राज्य-कार्य कर रहे थे, तब जम्बूकुमार नामक एक तेजस्वी विद्याधर (जिसके तेज से समग्र दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं) आया। वह महाराज श्रेणिक को नमस्कार कर कहने लगा—'हे महाराज! इसी जम्बूद्वीप की दक्षिण-दिशा में केरला नाम का एक प्रदेश है। वहाँ मृगाङ्क नामक राजा राज्य करते हैं। वे समस्त विद्याधरों के अधिपति हैं। उनकी अत्यन्त रूपवती रानी का नाम मालतीलता है। वह समस्त रानियों में पट्टमहिषी है। उसके उत्तम गुणों के कारण सब उससे प्रसन्न रहा करते हैं। राजा मृगाङ्क की उससे एक रूपवती कन्या है। जिसका नाम विलासवती है। एक दिन राजा मृगाङ्क ने अपनी कन्या की योग्य वय देख कर मन में विचार किया अब उसका विवाह कर देना चाहिये। अतः उसके

उपयुक्त वर की चिन्ता में परेशान होकर उन्होंने एक दिन किसी दिगम्बर मुनि के निकट विनम्र शब्दों में प्रार्थना की—'हे भगवन्! आप त्रिकालदर्शी हैं। भूत, वर्तमान एवं भविष्य-काल की समस्त घटनाओं के ज्ञाता हैं। संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जिसका आपको सम्यक्ज्ञान न हो। आतः हे महानुभाव! कृपा कर आप मुझ से कहिये कि मेरी विलासवती नामक कन्या का वर कौन एवं कहाँ पर है?' राजा का इस प्रकार से विनम्र निवेदन सुन कर मुनि ने कहा—'हे राजन्! इसी जम्बूद्वीप के राजगृह नामक प्रसिद्ध नगर में अत्यन्त प्रतापी, दानवीर, प्रजापालक तथा नीतिज्ञ महाराज श्रेणिक राज्य करते हैं। उन्हीं से आप की कन्या का विवाह होगा।' मुनिराज के वचन सुन कर राजा मृगांक घर लौठ आये। उसी दिन से आप के साथ अपनी कन्या का विवाह कर देने का दृढ़ संकल्प उन्होंने कर लिया है। इसी मध्य हंसद्वीप के रत्नचूल नामक नृपति ने विलासवती के साथ बलात् विवाह करने के लिए सेना के साथ केरला राज्य पर घेरा डालने का विचार किया है। हे महाबली! मैं आप से यही समाचार कहने के लिए आया हूँ। अब आप जैसा उचित समझें, वैसा कीजिये। मैं अब अधिक काल नहीं ठहरूँगा, शीघ्र ही गमन करूँगा।' महाराज श्रेणिक ने जम्बूकुमार के मुख से यह समाचार सुन कर केरला जाने का निश्चय किया। उन्होंने उक्त विद्याधर से कहा—'हे दूत! मैं तुम्हारी नगर में अवश्य चलूँगा।' जम्बूकुमार ने कहा—'हे महाराज! मैं आप को साथ ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। केवल समाचार को पहुँचाना ही मेरा कर्त्तव्य था। उसे मैं ने पूर्ण कर दिया है एवं अब मैं जा रहा हूँ। एक आवश्यक तथ्य से मैं आप को अवगत करा देना चाहता हूँ। आप तो भूमिगोचरी है, केरला तक न जाने कितने दिनों में पहुँचेगें? वह स्थान यहाँ से बहुत दूर है। अतः आप का वहाँ पहुँचना अति श्रमसाध्य है।' ऐसा कह कर उसने आकाश मार्ग से अपने प्रदेश के लिए प्रस्थान कर दिया एवं शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचा। इधर महाराज श्रेणिक ने केरला राज्य के लिए तत्काल प्रस्थान किया एवं कुछ ही दिनों में विंध्याचल के वन-प्रांतर में पहुँच कर कुरलाचल के निकट अपना शिविर स्थापित किया। उधर जम्बूकुमार विद्याधर ने वहाँ पहुँच कर देखा कि रत्नचूल ने अपनी सेना से केरला को घेर लिया है। तब उसने किसी युक्ति से रत्नचूल के पास पहुँच कर निवेदन किया—'हे राजन्! आप के जैसे न्यायी राजा के लिए यह कदापि योग्य नहीं है कि किसी अन्य के लिए समर्पित की हुई कन्या की प्राप्ति के लिए इस प्रकार बलप्रयोग करें। आप जानते ही हैं कि राजा मृगांक ने अपनी कन्या विलासवती का विवाह मगधाधिपति महाराज श्रेणिक के साथ करने का पूर्ण निश्चय कर लिया है। ऐसी अवस्था में आप इस प्रकार का अन्याय क्यों कर रहे हैं? आप जैसे प्रतापी राजा के लिए यह अनुचित कार्य शोभा नहीं देता।'

लेकिन पाठकों 'पत्थर पर का मारना, चोखों तीर नशाय' की उक्ति ही चरितार्थ हुई। जम्बूकुमार के अनुनय-विनय एवं

समझाने का रत्नचूल पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसके शीश पर तो शामत सवार थी। अतः उसने अपनी हित-अनहित की सलाह पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, उल्टा वह जम्बूकुमार से क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए तत्पर हो गया। भला वीर जम्बूकुमार क्यों युद्ध से मुख मोड़ता? दोनों में घनघोर द्वन्द्व युद्ध शुरू हो गया। जम्बूकुमार ने क्षणभर में ही रत्नचूल को पराजित कर बाँध लिया। उसके आठ हजार सैनिकों को भी जम्बूकुमार ने अपने दुधारे खड्ग से यमलोक पठा दिया। जम्बूकुमार ने रत्नचूल को राजा मृगांक के सामने ले जा कर खड़ा कर दिया तथा युद्ध का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। महाराज श्रेणिक के आगमन की शुभ सूचना भी उन्हें दी।

जब राजा मृगांक ने जम्बूकुमार के मुख से युद्ध का समस्त वृत्तान्त सुना तथा फलस्वरूप राजा रत्नचूल को बन्दी के भेष में सामने बँधा हुआ पाया, तब उसके हर्ष की कोई सीमा नहीं रही। उसने जम्बूकुमार की वीरता की बड़ी प्रशंसा की तथा विनम्र शब्दों में कहा–'हे वीर! तुम्हारी वीरता धन्य है। आज तुमने अपने प्रबल पराक्रम द्वारा अपने देश की स्वतन्त्रता तथा राजवंश की प्रतिष्ठा की रक्षा की है। अपने अपार साहस से तुम ने हम सब का मस्तक उन्नत कर दिया है। मैं तुम्हारी देशभक्ति पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ।'

राजा के इस प्रकार के वचन सुन कर जम्बूकुमार ने उन्हें अपनी कन्या विलासवती तथा बन्दी रत्नचूल सहित महाराज श्रेणिक के स्वागत में चलने का परामर्श दिया। राजा मृगांक ने बन्दी राजा रत्नचूल तथा अपनी कन्या विलासवती एवं कुछ सेना के साथ पाँच सौ विमानों द्वारा प्रस्थान किया। उस समय महाराज श्रेणिक कुरलाचल की तराई में विश्राम कर रहे थे। जब राजा मृगांक के विमान वहाँ पहुँचे, तब जम्बूकुमार ने देर से ही महाराज श्रेणिक को पहिचान लिया। अपने दल के साथ उस स्थान पर उतर कर उसने महाराज श्रेणिक को प्रणाम किया। वे भी राजा मृगांक के साथ बड़े प्रेम से मिले। दोनों ओर से कुशल-मङ्गल पूछने के पश्चात् राजा मृगांक ने महाराज श्रेणिक के साथ अपनी कन्या विलासवती का विवाह शुभ मुहूर्त्त में वही पर कर दिया। पाठक विवाह सदृश शुभ कार्य से जंगल में मङ्गल हो गया। कुछ काल उपरान्त राजा मुगांक ने महाराज श्रेणिक से स्वदेश लौटने की आज्ञा माँगी। जब महाराज श्रेणिक ने देखा कि राजा स्वदेश जाने के लिए तैयार हो गये हैं, तब उन्होंने उनसे परस्पर हित सम्बन्धी वार्तालाप किया एवं प्रेमपूर्वक उन्हें विदा किया। फिर महाराज श्रेणिक प्रसन्नता से जम्बूकुमार के साथ राजगृह नगर में आये तथा उसकी बड़ी आवभगत की। तदनन्तर अपनी नयी पत्नी विलासवमती के साथ वे आनन्दपूर्वक सुखोपभोग करने लगे।

नन्दिग्राम पर महाराज का प्रकोप

इस प्रकार महाराज श्रेणिक सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे। अकस्मात् उनके हृदय में नन्दिग्राम निवासी विप्र नन्दिनाथ की स्मृति आ गयी। उस विप्र ने महाराज श्रेणिक के साथ जिस निर्दयता का परिचय दिया था, उसके स्मरण-मात्र से महाराज के हृदय में क्रोध की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। वे सोचने लगे—'अहो वह नन्दिनाथ कितना क्रूर हृदय का है, जिसने (मेरे निर्वासन काल में) मुझसे किस निष्ठुरता का परिचय दिया था। मेरे विनययुक्त वचनों के ऊपर उसने रन्चमात्र भी ध्यान नहीं दिया। मैं ने बारम्बार प्रार्थना कर उससे भोजन की याचना की थी। पर उसने मुझे भोजन देने से अस्वीकार कर दिया एवं कठोर वचनों द्वारा मेरा तिस्कार किया था। तब शेष सामान्य प्रजा के साथ वह कब शिष्टता का बर्त्ताव करेगा। राज्य की ओर से दान देने के लिए जो सामग्री दी जाती है, उसे वह स्वयं खा जाता है—पर किसी अन्य को नहीं देता है। अब वह ग्राम वहाँ के ब्राह्मणों (विप्रों) से छीन लेना चाहिये। ब्राह्मणों को उस ग्राम से शीघ्र निकाल देना चाहिए, जिससे वे सब भी समझ जायें कि राजपुरुषों के अपमान का कैसा फल मिलता है?' इस प्रकार क्रोधित होकर महाराज ने एक राजसेवक से कहा कि तुम शीघ्र नन्दिग्राम जाओं एवं वहाँ के समस्त ब्राह्मणों से कह दो कि वे लोग शीघ्र ही नन्दिग्राम त्याग कर अन्यत्र चले जायें अन्यथा राजाज्ञा से वह ग्राम उजाड़ दिया जायेगा। नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के सम्बन्ध में महाराज की दी हुई आज्ञा का समाचार चारों ओर विद्युत की तरह फैल गया। राजमन्त्रियों ने अपने राजा की ऐसी कठोर आज्ञा सुन कर उनसे विनम्र शब्दों में निवेदन किया—'हे दयानिधन! आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं? क्या आप यह नहीं जानते कि आप के इस अन्याय से विरोध, जन-असन्तोष एवं अशान्ति का सूत्रपात हो उठेगा? क्या आप सोचते हैं कि इतने बड़े अन्याय से आप को हानि नहीं उठानी पड़ेगी? अतः आप अच्छी तरह सोच-विचार कर आज्ञा प्रदान करें, क्योंकि ऐसा कहा गया है—

'बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय। काम बिगारे आपनो, जग में होय हँसाय।।'

राजमन्त्रियों के इस प्रकार के स्पष्ट वचन ने महाराज की क्रोधाग्नि में घृत का काम किया। उन्होंने अत्यन्त क्रोधित हो कर रौद्र रूप धारण कर लिया एवं उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। महाराज ने आवेश में आकर कहा—'हे मन्त्रियों! तुम लोगों को क्या ज्ञात है कि नन्दिग्राम अधिपति विप्र नन्दिनाथ ने मेरे साथ कैसा अपमानजनक दुर्व्यवहार किया था? यहाँ से मेरा निष्कासन होने पर जिस समय मैं ने क्षुधा से पीड़ित होकर उसके निकट भोजन-सामग्री की याचना की, तब उसने भोजन के बदले गाली खाने को दी। अनुनय-विनय के प्रतिकार में वहाँ से निकल जाने की बात कही तथा बल-प्रयोग हेतु

तत्पर हो गया। इस प्रकार अपमान का कडुवा घूँट पी कर मैं भूख से तड़पता हुआ गाली खा कर वहाँ से आगे बढ़ा। अतः हे मन्त्रियों! तुम निश्चय मानों कि मैं अभी तक उस अपमान को भूला नहीं हूँ। उन लोगों को दण्ड देने की अभिलाषा मेरी नस-नस में व्याप्त हो गयी है। मैं वहाँ के निवासियों को उनके दुर्व्यवहार का फल अवश्य दूँगा, मैं उन्हें प्रताड़ित करूँगा। मेरा क्रोध स्वाभाविक है। क्या तुम लोग समझते हो कि इस प्रकार के अपमानजनक व्यवहार को कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य यों ही विस्मृत कर सकता है? अतः वहाँ के दुष्टजन अवश्य ही दण्डित होंगे।'

क्रोध की शान्ति पर दोषारोपण

महाराज के प्रचण्ड क्रोध को देख कर मन्त्रियों ने पुनः कहा– 'हे महाराज! आज समस्त संसार में आप की न्याय-परायणता की प्रशंसा में शंखनाद हो रहा है। आप ने अभी तक जिस प्रकार से न्याय-नीति के साथ राज्य किया है, उसकी प्रशंसा सर्वत्र हो रही है। किन्तु नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के ऊपर आप का क्रोध करना अन्याय के नाम से पुकारा जायेगा? आप जानते हैं कि राजा पिता के समान है–प्रजा उसकी सन्तान है। न्याय करना राजा का प्रधान कर्तव्य होना ही चाहिये। जिस राजा के शासन में प्रजा के ऊपर अत्याचार होता है, उसका शासन विनष्ट हो जाता है? न्याय के बल पर ही साम्राज्य एवं समाज का स्थायित्व है। इसलिए उनकी उन्नति का सारा श्रेय न्याय के ऊपर ही अवलम्बित है। राजा तो उस किसान की तरह है, जिसका काम रक्षा करना है। राजा को न्यायी, दयावान एवं कर्तव्य-परायण होना चाहिए। यदि राजा ही अत्याचारी होगा, तो प्रजा किसके सामने अपनी गुहार करेगी? लोक-कल्याण की भावना से राजा का न्यायी होना उतना ही आवश्यक है, जितना सूर्य के लिए प्रखरता, चन्द्रमा के लिए शीतलता एवं बलवानों के लिए धीरता तथा क्षमा। हे महाराज! यदि आप नन्दिग्रामवासियों को दण्ड देना ही चाहते हैं तो उनका अन्याय साबित कर दण्ड दीजिये, नहीं तो राजा के अन्यायी होने से न्याय-नीति-सत्य एवं अनुशासन का समापन हो जायेगा। अतः हे महाराज! आप अपने क्रोध को शान्त कीजिये एवं न्याय-नीति से काम लीजिये।' मन्त्रियों के युक्ति-युक्त, न्यायपूर्ण विनम्र वचनों से महाराज का क्रोध शान्त हो गया।

प्रिय पाठक! जहाँ क्षणभर पहिले महाराज की ज्वालामुखी रूपी क्रोधाग्नि नन्दिग्राम निवासियों को भस्मीभूत कर देने के लिए प्रस्तुत थी, वहाँ स्वामीभक्त मन्त्रियों के योग्य परामर्श ने उनकी क्रोधाग्नि का शमन करने के लिए जल के छींटे का काम किया। महाराज भी अब अपने मन में सोचने लगे कि यदि मैं नन्दिग्रामवासियों को बिना अपराध के दण्ड दूँगा, तो मेरी निन्दा होगी। मैं अन्यायी राजा के नाम से पुकारा जाऊँगा। इस प्रकार सोच कर उन्होंने निश्चय किया कि वहाँ के निवासियों को

सब से पहिले दोषी सिद्ध करना चाहिए, जिससे दण्ड देने का मौका मिले। एक बकरा चतुर सेवकों के हवाले कर महाराज ने कहा—'तुम लोग इस बकरे के साथ शीघ्र नन्दिग्राम जाओ। वहाँ के ब्राह्मणों को इसे दे देना एवं कह देना कि इसकी भलीभाँति पूरी देख-रेख की जाए। एक बात का पूर्ण ध्यान रहे कि यह बकरा न तो इससे अधिक स्थूल होने पावे एवं न ही कृश अन्यथा नन्दिग्राम उनके हाथो से छीन लिया जायेगा।' महाराज की आज्ञानुसार सेवक नन्दिग्राम में शीघ्र पहुँच गए। सेवकों ने ब्राह्मणों से जा कर महाराज की आज्ञा सुना दी एवं बकरा उनके हवले कर दिया। नन्दिग्राम निवासी ब्राह्मणों ने जब महाराज की इस प्रकार की असम्भव आज्ञा सुनी, जब उनके होश हिरण हो गये। वे आपस में कहने लगे—'ज्ञात होता है कि यहाँ के लोगों के अब अशुभ दिन आ गये हैं। हे बन्धु! अन्य क्या कारण हो सकता है कि महाराज ने इस प्रकार की कठिन आज्ञा दी है। हे भगवन्! हम लोग कैसे राजाज्ञा का पालन कर सकेंगे? यह या तो स्थूल होगा या कृश। हे ईश्वर! किस प्रकार इस आसन्न विपत्ति से हमारी रक्षा होगी?' इस प्रकार वहाँ के निवासी चिन्ता-सागर में डूबने-उतराने लगे। उनके नेत्रों के सामने अन्धेरा छा गया। नन्दिग्राम के घर-घर में इस आज्ञा से कुहराम मच गया। सब लोग भयभीत हो गए।

अभयकुमार की बुद्धिमता का परिचय

हमारे सहृदय पाठक नन्दश्री एवं अभयकुमार के विषय में जानने के लिए उत्कण्ठित होंगे। अतः अब उनकी कथा लिखना भी आवश्यक है। जब सेठ इन्द्रदत्त ने देखा कि कुमार श्रेणिक को गए दीर्घ अवधि हो गयी है एवं वहाँ जाकर व मगधाधिपति बन गए हैं, तब अपनी कन्या नन्दश्री एवं दौहित्र अभयकुमार के साथ उन्होंने राजगृह के लिए प्रस्थान किया। संयोग से उस दिन सेठ इन्द्रदत्त उसी नन्दिग्राम में संध्याकाल के समय जा पहुँचे। नगर के बाहर ही सेठ ने अपना शिविर स्थापित किया एवं भोजनादिक कार्यों में संलग्न हो गए। तब तक उनके लाख मना करने पर भी अभयकुमार नन्दिग्राम देखने के लिए निकल गया।

घूमते हुए वह ग्राम के केन्द्रस्थान में पहुँच गया। तभी वहाँ चिन्ताग्रस्त विप्र नन्दिनाथ आया। नन्दिनाथ के उदास मुखमण्डल को देख कर अभयकुमार ने पूछा—'हे विप्र! आप का मुखमण्डल उदास क्यों दिखलाई दे रहा है? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप के हृदय पर कोई भारी चिन्ता का बोझ है। इस ग्राम के समस्त निवासियों के ललाट पर चिन्ता की स्पष्ट झलक दिख रही है। यहाँ के समस्त लोग क्यों भय से अधमरे हो रहे हैं? इसका क्या कारण है?' अभयकुमार के सहानुभूतिपूर्ण वचन सुन कर नन्दिनाथ ने विनम्र शब्दों में कहा—'हे दयालु कुँवर! इस समय हम नन्दिग्राम निवासियों के

ऊपर एक महान विपत्ति का प्रकोप है, जिसके भय से आबाल-वृद्ध तक भय-प्रकम्पित हैं। कारण है कि मगधाधिपति महाराज श्रेणिक ने राजगृह से हमारे पास एक बकरा भेज कर यह आज्ञा दी है कि हमलोग बकरे की इस तरह देख-रेख करें, जिसमें वह ठीक इसी रूप में रहे—न स्थूल ही हो एवं न कृश हो। यदि महाराज की आज्ञा का पालन नहीं किया गया, तो नन्दिग्राम हमारे हाथों से छीन लिया जायेगा। हे दयानिधन! हमलोग महाराज की इस अनहोनी आज्ञा को कैसे पूरा करें? यह बात हमारी समझ में नहीं आती। अतः इसी चिंता से हम घुल-घुल कर मरे जा रहे हैं।'

विप्र नन्दिनाथ के इस प्रकार के भययुक्त वचनों को सुन कर अभयकुमार का कोमल हृदय दया से भर आया। अभयकुमार ने नन्दिनाथ से कहा—'हे विप्र! आप अधीर न होवें। मैं आप की इस विपत्ति के निवारण का उपाय शीघ्र बतलाता हूँ। आप निश्चित होकर जाइये।' प्रिय पाठक, आप समझ सकते हैं कि अभयकुमार की बुद्धि कितनी प्रखर थी। उनके कुशाग्र मस्तिष्क में महाराज की आज्ञा का यथोचित पालन करने के लिए झट एक युक्ति आ गई।

अभयकुमार द्वारा ब्राह्मणों की रक्षा

अभयकुमार ने विप्रों को बुलवा कर कहा—'हे विप्रों! आप लोग एक उपाय कीजिये, जिसके करने से आप लोगों की यह विपत्ति दूर हो जायेगी। आप लोग अपने ग्राम के केन्द्र में एक सुदृढ़ स्तम्भ गड़वा दीजिये एवं एक बाघ को उस खम्भे में बाँध दीजिये। आप लोग निश्चित हो कर बकरे को भरपेट खिलाइये तथा खुले मैदान में चराइये। जब बकरा खिलाने-पिलाने से मोटा हो जाए, तब बाघ के सामने उस बकरे को ले जाइये। इस प्रकार बाघ के डर से बकरा कुछ दुबला हो जायेगा। फिर दूसरे दिन खिलाने-पिलाने से वह मोटा-ताजा हो जायेगा। इस प्रकार की दिनचर्य्या एक माह तक रखने से भी वह बकरा न तो स्थूल होगा एवं न ही कृश। अब आप का सङ्कट इस उपाय से दूर हो जायेगा।'

अभयकुमार के कथनानुसार नन्दिग्राम निवासी ब्राह्मणों ने वैसा ही किया। कुछ दिनों तक अपने यहाँ रख कर बकरे को पहिले की दशा में महाराज के पास ले जा कर पहुँचा दिया। बकरे को ठीक उसी तरह देख कर महाराज के लिए नन्दिग्राम निवासी विप्रों को दण्ड देने का कोई अवसर नहीं रहा। वे शान्त रह गये। इधर विप्रो ने घोर विपत्ति से रक्षा होने पर अभयकुमार को ही रक्षक मान उनके पास आ कर हृदय से आनन्द प्रकट किया—'हे दयानिधान! आप धन्य हैं। आप की कृपाकोर से हम नन्दिग्रामवासियों की रक्षा हुई है। यदि आप नहीं होते तो हम लोगों का सर्वनाश होने में क्या कसर थी? न जाने अब तक क्या हो गया होता? हे कृपासिंधु! आप ने हमारी रक्षा की है। यह आप का ही अनुग्रह है, जिसके प्रताप से इस

ग्राम के घर-घर में आज आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। आप की इस परम कृपा को हम लोग किन शब्दों में व्यक्त करें? आप ने वास्तव में हम लोगों को नव-जीवन प्रदान किया है। आप के इस उपकार का ऋण कैसे चुकाया जाए? हम असहायों की रक्षा कर आप ने अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। आप के समान दयालु, परोपकारी, बुद्धिमान एवं निर्बलों का सहायक अन्य कोई इस संसार में दृष्टिगोचर नहीं होता। आप का चित्त मेघ के समान परोपकारी है। जिस प्रकार मेघ बिना किसी भेद-भाव के सब को आश्रय देता है, उसी प्रकार अपने अपनी दयालुता का परिचय दिया है। आप वास्तव में कितने महान, कितने परोपकारी एवं सहृदय हैं?' इस तरह बारम्बार आभार प्रकट करते हुए उन विप्रों ने अभय कुमार से निवेदन किया—'हे महानुभाव! हमारे हृदय में इस बात का डर बना हुआ है कि कहीं आप के यहाँ से प्रस्थानोपरान्त महाराज हम लोगों के ऊपर पुनः क्रोधित होकर कोई ऐसी आज्ञा दें, जिससे कि हमारा यहाँ पर रहना ही असम्भव हो जाए। अतः हे अन्नदाता, आप कृपा कर इस ग्राम में कुछ काल तक निवास कीजिये, जिससे महाराज के क्रोध से हमारी रक्षा हो सके। आप के समान बुद्धिमान अन्य कोई हमारा सहायक नहीं है। बड़े भाग्य से आप हमारे रक्षक बन गये हैं। हे कृपालु! आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ग्राम में चलिये एवं अपने बुद्धि-बल से हम निर्धन, असहाय एवं भय-त्रस्त विप्रों की रक्षा कर पुण्य के भागी बनिये।'

ब्राह्मणों की दीनताभरी पुकार सुन कर अभयकुमार का कोमल हृदय द्रवित हो गया।वे समझ गए कि यहाँ के ब्राह्मणों के ऊपर जब महाराज का ऐसा प्रकोप है, तब मेरा यहाँ से प्रस्थान करना अनुचित होगा। ऐसा सोच कर अभयकुमार ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अभयकुमार ने वहाँ तब तक रहना स्वीकार किया, जब तक महाराज का उनके ऊपर क्रोध शान्त न हो जाए। अभयकुमार के इस प्रकार के अभय-दान से नन्दिग्राम के ब्राह्मणों के हृदय में आशा, साहस एवं बल का संचार हुआ। सब ने अभयकुमार को अपना प्राणरक्षक समझ कर सन्तोष एवं निर्भरता की साँस लीं। अन्तस्तल से अभयकुमार की प्रशंसा करते हुए वे सब अपने-अपने घर को लौट गए।

बावड़ी लाने की आज्ञा

अपने भेजे हुए बकरे को ज्यों का त्यों देख कर महाराज श्रेणिक के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। नंदिग्राम निवासी ब्राह्मणों को येन-केन-प्रकारेण सिद्ध कर दण्डे देने का अवसर हाथ से निकल जाने पर महाराज कुछ चिन्तित हुए। ब्राह्मणों की बुद्धिमत्ता पर क्रोधित हो कर क्षणभर कुछ सोचने के बाद महाराज ने एक दूत नन्दिग्रामवासी ब्राह्मणों के समीप यह कहने के

लिए भेजा कि वे शीघ्र ही एक बावड़ी राजगृह नगर पहुँचा दें, अन्यथा राजाज्ञा की अवहेलना के परिणाम-स्वरूप कठोर दण्ड सहने के लिए प्रस्तुत रहना होगा। राजदूत ने नन्दिग्राम जा कर वहाँ के ब्राह्मणों से महाराज की आज्ञा कह सुनायी तथा अवहेलना के लिए राजदण्ड की बात कही। नन्दिग्राम के सब-के-सब ब्रह्मण राजाज्ञा से अवाक रह गए। ऐसी कड़ी आज्ञा सुन कर वे कहने लगे—'ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज ने हमलोगों को इस नगर से निष्कासित कर देने की ठानी है। अभी बकरेवाली शर्त्त से मुक्ति मिली ही थी, तो यह बावड़ी की असम्भव शर्त्त गले आ पड़ी। साँप से बचे तो अजगर के मुख में जा पड़े। हे बन्धु! अब रक्षा होना कठिन है।' सब लोग अभयकुमार के पास जा कर त्राहि-त्राहि करने लगे। अभयकुमार के पूछने पर नन्दिग्राम निवासियों ने एक स्वर में बावड़ी नन्दिग्राम से राजगृह ले जाने की राजाज्ञा कह सुनाई।

अभयकुमार ने कहा—'आप सब शान्त हो जाओ। इसमें अधीर होने का कोई कारण नहीं है। भला इसमें घबड़ाने की कौन-सी बात है? मैं अभी इस विघ्न के हरण का उपाय बतलाता हूँ। आप लोग अपने समस्त भैंसे एवं बैल एकात्रित कर उनके कन्धे पर जूए रखवा दें एवं उन्हें ले कर राजगृह नगर में राजमहल तक उनका ताँता लगवा दें। जिस समय महाराज गहरी निद्रा मे सोये हुए हों, उस समय आप लोग राजमहल में प्रवेश कर उनसे जोरों से कहो—'हे महाराज! हम नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावड़ी लाये हैं। आप की क्या आज्ञा है?' बस, महाराज आप लोगों को जो उत्तर देंगे, उसी से आप लोगों की रक्षा हो जायेगी। अब क्या था ब्राह्यणों ने प्रसन्न हो कर उनके पास समस्त बैल एवं भैंसे इकट्ठे कर लिए तथा सब के कन्धों पर जूए रख दिये। नन्दिग्राम से प्रस्थान कर वे राजगृह जा पहुँचे एवं राजमहल तक उनका ताँता लगा दिया। महाराज की प्रगाढ़ सुषुप्तावस्था में जा कर उन सभी ब्राह्मणों ने हल्ला मचा दिया—'हे महाराज! हम नन्दिग्रामवासी बावड़ी लाये हैं—आप की क्या आज्ञा है?' महाराज श्रेणिक निद्रादेवी के अङ्क में सुख से शयन कर रहे थे। इस प्रकार ब्राह्मणों के हल्ला करने पर उन्होंने झुँझला कर कहा—'यहाँ से जल्दी चले जाओ। जहाँ से बावड़ी लाये हो, वहीं पर पहुँचा दो।' बस, ब्राह्मणों के आनन्द का क्या ठिकाना था? वे तो चाहते ही थे कि महाराज उन्हें लौट जाने की आज्ञा देवें। अनुकूल आज्ञा सुन कर ब्राह्मण प्रसन्नता के साथ नन्दिग्राम वापिस चले आये। आये हुए घोर सङ्कट के टल जाने से सब ने प्रसन्नता का अनुभव किया तथा अभयकुमार की बुद्धिमता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभी जन एक स्वर में कहने लगे कि यह अभयकुमार की बुद्धि का ही आश्चर्यजनक चमत्कार है, जिससे हमारी प्राण रक्षा हो सकी। अतः नन्दिग्रामवासी अभयकुमार का गुण-गौरव-गान करते हुए फूले नहीं समाये। वे अब सुख सन्तोष से जीवन बिताने लगे।

उधर जब महाराज की नींद टूटी, तब उन्होंने पूछा कि नन्दिग्राम निवसी ब्राह्मण बावड़ी कहाँ रख गये हैं, उन्हें मेरे यहाँ ले आओ। महाराज की ऐसी आज्ञा सुन कर प्रहरियों ने कहा—'हे अन्नदाता! नन्दिग्राम के ब्राह्मण रात्रिकाल में ही बावड़ी ले कर आये थे। आप से पूछा था कि वे इसे कहाँ रख दें, किन्तु आप ने उन लोगों से कहा था कि वे लोग बावड़ी जहाँ से लाये हों वहीं वापिस रख दें।' अतः आप की ऐसी आज्ञा सुन कर वे शीघ्र ही यहाँ से बावड़ी ले कर चले गये।

प्रहरियों के मुख से ऐसी सूचना प्राप्त कर महाराज क्रोधाग्नि से उन्मत्त हो गये। उसी दशा में वे सोचने लगे कि इस संसार में निद्रा के आघात के समान किसी अन्य का आघात नहीं है। इस सत्यानाशी निद्रा के कारण समस्त सुख नष्ट हो जाते हैं। अतः बड़े-बड़े ऋषियों ने इसे वश में करने को ही आत्महित बताया है। उनका ऐसा कहना शत-प्रतिशत युक्ति-युक्त है। कारण मनुष्य निद्रा के वश में हो कर न जाने कैसे-कैसे अच्छे-बुरे कर्म कर डालते हैं। यदि अच्छा कर्म हुआ तो ठीक, नहीं तो बुरे कर्म से नरकादि कठिन कष्टों का सामना करना पड़ता है। सच है इस पिशाचिनी निद्रा की तुलना केवल क्षुधा से ही की जा सकती है। कारण जिस प्रकार क्षुधा की ज्वाला सहन नहीं होती, उसी प्रकार निद्रा के वेग को रोकना टेढ़ी खीर है। सच है क्षुधा की ज्वाला में जलते हुए मनुष्य के लिए यह सोचना भी असम्भव हो जाता है कि क्या अच्छा एवं क्या बुरा कर्म है? संसार में कौन-सी वस्तु ग्रहण करनी चाहिये एवं किस वस्तु का त्याग करना चाहिये? अर्थात् सत्-असत् के विवेचन करने की शक्ति ही नष्ट हो जाती है। वैसे ही निद्रा में सुषुप्त मनुष्य की दशा होती है। जिस प्रकार भूख से व्याकुल मनुष्य वास्तव में पुण्य-पाप की चिन्ता नहीं करता है, उसी प्रकार निद्रा के वशीभूत मनुष्य भी पुण्य-पाप की विवेचना नहीं कर सकता। इस निद्रा की समता मृत्यु से की जा सकती है। जैसे मरण के समय मनुष्य के गले में श्लेष्मा के रुक जाने से घड़-घड़ शब्द होता है, वैसे ही निद्रित मनुष्य के गले से स्वर आता है। निद्रा में खुर्राटा लेनेवाला मनुष्य मृतक की भाँति शैय्या पर सोता है, ठीक मृतक के समान उसकी देह से स्वेद कण निकलते हैं। मृतक के समान ही वह हिल-डुल नहीं सकता। अतः संसार की अधिकांश बुराईयों की जड़ निद्रा ही है।

इस प्रकार सोचते हुए महाराज ने अपने सेवकों को बुला कर कहा—'तुम लोग नन्दिग्राम जा कर वहाँ के विप्रों से गजराज का तौल भेजने के लिए कहो, नहीं तो उनसे नन्दिग्राम वापिस ले लिया जायेगा।' राज सेवकों ने नन्दिग्राम के विप्रों से राजा की आज्ञा सुना दी। ऐसी आज्ञा सुन कर विप्रों का रहा-सहा धैर्य भी जाता रहा। सब के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगीं। विप्रों ने इस बार निश्चय कर लिया कि महाराज का प्रकोप प्रचण्ड है। वह हम विप्रों को नन्दिग्राम से निष्कासित किए बिना शान्त होने का नहीं। किसी की बुद्धि ने काम नहीं दिया। सब किंकर्त्तव्यविमूढ़-से हो रहे। उस समय विप्रों के जीवन का एकमात्र

अवलम्बन अभयकुमार ही थे, अतः विप्र दौड़े-दौड़े उनके पास गए एवं निवेदन किया—'हे दयासागर! इस बार महाराज ने अनोखी शर्त्त पूर्ण करने के लिए भेजी है। हम लोग गजराज का तौल कैसे भेजें? हमारी बुद्धि इसमें कुछ भी काम नहीं करती है, अब आप का ही भरोसा है। यह निश्चय है कि महाराज हम लोगों को यहाँ से भगाने पर ही तुले हुए हैं।' विप्रों को इस प्रकार गिड़गिड़ाते हुए देख कर अभयकुमार ने कहा—'तुम लोग शान्त रहो। मैं इसका उपाय अभी किए देता हूँ।' इस प्रकार कह कर अभयकुमार ने एक तालाब में एक नौका लगा कर विप्रों से मंगवा कर उसमें एक गजराज खड़ा कर दिया। गजराज के भार से नौका जितनी डूब गयी, उसमें एक चिन्ह लगवा दिया। गजराज का नौका से उतार कर उसमें पत्थर के टुकड़े तब तक भरवाए, जब तक नौका फिर उसी चिन्ह तक नहीं डूबी। इस तरह गजराज के वजन के बाराबर तौल हो गया, तब उसके बराबर पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाएँ इकट्ठी करा कर महाराज श्रेणिक के पास इस सन्देश के साथ भिजवा दिया कि उनकी आज्ञा के अनुसार गजराज के तौल के बराबर पत्थर की शिलाएँ मौजूद हैं। जब महाराज ने गजराज के वजन के बराबर पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाएँ देखीं, तब वे समझ गये कि नन्दिग्राम के विप्र अत्यन्त बुद्धिमान हैं। उनसे बुद्धि में पार पाना कठिन है। तब भी निरन्तर परीक्षा देते-देते वे एक दिन चंगुल में अवश्य की फँस जायेंगे।

खैर की लकड़ी की परीक्षा

ऐसा सोच कर महाराज ने सेवकों को पुनः बुलवाया। एक हाथ प्रमाण खैर की एक ठोस लकड़ी दे कर कहा—'इसमें कौन अगला भाग है तथा कौन-सा पिछला? नन्दिग्राम के विप्रों के पास ले जाओ एवं उनसे अविलम्ब उत्तर देने के लिए कह देना अन्यथा वे नन्दिग्राम से हटा दिये जायेंगे।' महाराज की आज्ञा सुन कर राजसेवक खैर की वह ठोस लकड़ी ले कर नन्दिग्राम गया। विप्रों को खैर की लकड़ी दे कर महाराज की शर्त्त तथा पूर्ण नहीं करने पर ग्राम से निष्कासन के दण्ड का भय दिखलाया। नन्दिग्राम के विप्र समझ गए कि सब शर्त्तों से भले ही बचे, किन्तु इससे बचना मुश्किल है। वे तत्काल अपने हितैषी अभयकुमार के पास गए। खैर की लकड़ी दे कर कहा—'हे कृपालु! इस बार महाराज की शर्त बड़ी विचित्र है। यह खैर की लकड़ी है। महाराज ने इस लकड़ी में अगला एवं पिछला भाग पूछा है। इसमें हम लोगों की बुद्धि काम नहीं देती है। अतः इस संकट से आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं, नहीं तो भविष्य में हम लोगों का इस नन्दिग्राम में रहना असम्भव हो जायेगा।' अभयकुमार ने खैर की लकड़ी ले ली तथा उन लोगों से यह कहा—'मैं शीघ्र ही इसका उपाय बतलाये देता हूँ।' अभय कुमार एक ताल पर गये। जल में खैर की लकड़ी डाल दी। खैर की लकड़ी जल गिरते ही अपना अग्रिम भाग आगे कर तैरने लगी।

जिसे देख कर अभय कुमार ने निश्चय कर लिया कि लकड़ी का अगला भाग कौन है एवं पिछला भाग कौन है? इस प्रकार लकड़ी के अगले एवं पिछले भाग का निर्णय कर अभय कुमार ने एक विप्र के हाथ वर खैर की लकड़ी महाराज श्रेणिक के पास भेज दी। विप्र ने खैर की लकड़ी महाराज श्रेणिक के सामने रख कर उसके अगले एवं पिछले भाग का चिन्ह बतलाया।

महाराज लकड़ी देख कर नन्दिग्राम के विप्रों के ऊपर अत्यन्त क्रोधित हो कर मन में सोचने लगे कि नन्दिग्राम के विप्रों को दोषी, सिद्ध करने के लिए मैं ने जितनी कठिन शर्तें लगायीं, वे सब-की-सब पूरी हो गयीं। वहाँ के विप्रों अत्यन्त मेघावी प्रतीत होते हैं। अब किसी अन्य कठिन उपाय से काम लेना चाहिये जिससे कि वे दोषी हुए बिना न बचें। इस प्रकार अपने मन में विचार कर महाराज ने किसी सेवक द्वारा तिल भेज कर नन्दिग्राम के विप्रों से उतना ही तेल देने के लिए आज्ञा दी, अन्यथा ग्राम से समस्त विप्रों को निष्कासित होना पड़ेगा। सेवक तिल लेकर वहाँ गया एवं उतना ही तेल देने के लिए महाराज की आज्ञा सुनायी। असफल होने पर ग्राम छोड़ने की आज्ञा होगी। सेवक से तिल ले कर विप्र अभयकुमार के पास सीधे आये। तिल के बराबर तेल देने की बात कही। वे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगे कि इस बार उनकी रक्षा कैसे होगी?

विप्रों को इस प्रकार घबड़ाया हुआ देख कर अभयकुमार ने एक दर्पण मँगा कर उस पर तिल बिछा दिये एवं उन लागों से तेल निकालने के लिए कहा। तिलों से तेल निकलवा कर विप्र ले आये। अभयकुमार ने शीशे पर तिलों के बराबर ही तेल भर दिया एवं महाराज की सेवा में उसे भिजवाया। जब महाराज के सामने उन के भेजे हुए तिल के बराबर ही तेल आ गया, तब महाराज भी समझ गये कि नन्दिग्राम के विप्र कितनी प्रखर बुद्धिवाले हैं। अतः अब उनके ह्रदय में उन विप्रों की बारम्बार परीक्षा लेने की उत्कट लालसा उत्पन्न हो गयी। महाराज ने नन्दिग्रामवासियों के समीप भोजन के योग्य दुग्ध भेजने के लिए आज्ञा दी; किन्तु दुग्ध के विषय में यह शर्त्त लगा दी कि वह गाय, भैंस, बकरी इत्यादि का न हो, याने चौपाये से लेकर दोपाये तक का दुग्ध न हो तथा नारियल आदि पदार्थों का भी दुग्ध न हो, साथ ही दुग्ध का परिमाण अधिक-से-अधिक हो, स्वादिष्ट तथा मिष्ट हो।

सेवक के मुख से इस प्रकार का अनोखा दुग्ध भेजने की आज्ञा सुन कर नन्दिग्राम के ब्राह्मण चिंतासागर में डूबने-उतराने लगे। वे ब्राह्मण कहने लगे कि महाराज ने इस बार पुनः विचित्र आज्ञा दी है। इससे यही लगता है कि उनके ह्रदय में हमारे उन्मूलन का विचार पैठ गया है। नहीं तो वे इस प्रकार की असम्भवपूर्ण आज्ञा नहीं देते। मित्रों, इस बार बड़ी विकट समस्या है। वे दौड़े-दौड़े अभयकुमार के पास आये एवं विनीत स्वर में कहने लगे—'हे दीनरक्षक! इस बार पुनः महाराज की विचित्र

आज्ञा आई है। इससे ज्ञात होता है कि महाराज हम लोगों को इस नन्दिग्राम में नहीं रहने देंगे। अब केवल आप का ही अवलम्बन है।' इस प्रकार कह कर उन्होंने महाराज की आज्ञा कह सुनायी। अभयकुमार ने दृढ़ता के साथ कहा—'इसमें घबड़ाने की कौन-सी बात है?' विप्रों ने एक स्वर में कहा—'हे दीनबन्धु! हमलोग इस प्रकार का दुग्ध कहाँ से पायेंगे जैसी महाराज की आज्ञा है? महाराज ने दुग्ध नहीं माँगा है वरन् हमारे शरीर का रक्त ही अपरोक्ष में माँगा है।' इस प्रकार कह कर विप्र चिंतित हो उठे। अभयकुमार ने विप्रों को चिंतित देख कर आश्वासन दे कर कहा—'हे विप्रों! पशुओं के अतिरिक्त अन्य वस्तु से दुग्ध निकलवा कर मैं महाराज के पास भेज देता हूँ। तुम सब निश्चित रहो।' ऐसा कह उन्होंने धान की हरे बालें मँगवा कर उनसे दुग्ध निकलवा कर घड़ों में भर कर महाराज के पास भिजवा दिया। महाराज श्रेणिक के सामने नन्दिग्राम से आये हुए दुग्ध के घड़े रख दिए गए। जब महाराज ने देखा कि उक्त ग्राम के विप्रों ने उनकी आज्ञा का पालन कर दिया है, तब उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वे कुछ चिंतित हो अपने मन में विचार करने लगे। नन्दिग्राम के विप्र भी साहस के पुतले हैं—वे कितने बुद्धिमान हैं कि मेरी समस्त आज्ञाओं को पूर्ण करने में सदा तत्पर रहते हैं। उनकी बुद्धि की बलिहारी है। मेरी आज्ञा पहुँचते ही वे उसका पालन कर देते हैं। उन्हें सोचने-समझने तक की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः उनकी परीक्षा अपने सामने ली जाए, जिससे सत्यासत्य का निर्णय सहज में ही हो जायेगा, अन्यथा उनकी कलई अवश्य खुल जायेगी।

महाराज ने अपने सेवक से कहा—'तुम तत्काल जाकर नन्दिग्राम के विप्रों से कह दो कि वे मेरे सामने एक मुर्गा ला कर लड़ावें, नहीं तो नन्दिग्राम छोड़ कर अन्यत्र कहीं चले जायें।' सेवक ने नन्दिग्राम जा कर वहाँ के विप्रों से कहा—'हे विप्रों! महाराज ने आज्ञा दी है कि नन्दिग्राम के विप्र मेरे सामने एक मुर्गे को ला कर लड़ावें, नहीं तो नन्दिग्राम उनसे शीघ्र ही खाली करा लिया जायेगा।' महाराज की ऐसी आज्ञा सुन कर विप्र बहुत घबराये—उनके शरीर में काटों तो खून नहीं। अभयकुमार के पास जा कर वे विप्र (द्विजगण) फिर गिड़गिड़ा कर कहने लगे—'हे महाराज! अब तक तो किसी प्रकार से प्राणरक्षा होती आयी है, पर अब हमारे सामने कठिन समस्या उपस्थिति हो गयी है। पहिले महाराज आज्ञा-पालन करने का हुक्म दिया करते थे, किन्तु इस बार अपने सामने परीक्षा लेने की ठानी है। हे दयानिधान! महाराज के सन्मुख जाते हुए हमारी आत्मा काँप रही है।' अभयकुमार ने कहा—'बतलाओं तो सही बात क्या है या यों ही भय के मारे मरे जा रहे हो?' विप्रों ने कहा—'महाराज ने अपने सामने एक मुर्गा लड़ाने की आज्ञा दी है, किन्तु हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि एक मुर्गे को अकेले कैसे लड़ाया जाए?' विप्रों की बात सुन कर अभयकुमार ने कहा—'एक छोटी-सी बात के लिए इतनी घबराहट। हे द्विजगण, आप लोग शीघ्र ही महाराज के पास जा कर एक मुर्गे की लड़ाई दिखला दो। एक दर्पण को मुर्गे के सामने रख दीजिये, मुर्गा अपने

प्रतिबिम्ब को ही एक प्रतिपक्षी मुर्गा समझ कर उसे अपना शत्रु मान कर अपने-आप लड़ने लगेगा। बस आप का प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। महाराज भी आप लोगों पर प्रसन्न हो जायेंगे।' नन्दिग्राम के द्विजगणों के हृदय में सन्तोष हुआ। वे एक मुर्गा ले कर महाराज के निट पहुँच गए। महाराज को नमस्कार कर एक तरफ मुर्गा छोड़ दिया तथा दूसरी तरफ एक दर्पण रख दिया। मुर्गे ने ज्यों ही दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा, त्यों ही वह दर्पण पर चोंच मार कर अपने-आप से लड़ने लगा। मुर्गे को अपने-आप लड़ते देख कर महाराज आश्चर्य प्रकट करने लगे। वे सोचने लगे कि वे द्विजगण निःसन्देह बड़े बुद्धिमान हैं। इनकी बुद्धि की जितनी भी प्रशंसा की जाए वह कम है। महाराज ने मुर्गे की लड़ाई बन्द करवा कर द्विजों को अपने-अपने घर लौट जाने की आज्ञा दे दी। विप्रों के जाने पर महाराज मन में विचार करने लगे–'नन्दिग्राम के विप्र वास्तव में बड़े बुद्धिमान हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि उन्हें किस प्रकार अपने चंगुल में फँसाऊँ? अब तक मेरी सभी आज्ञाएँ उन्होंने पूर्ण की हैं। अब उन्हें ऐसी आज्ञा देनी चाहिए, जिसे वे पूर्ण न कर सकें।'

इस प्रकार गम्भीरतापूर्वक बहुत सोच-विचार कर महाराज ने अपने सेवक से कहा–'तुम नन्दिग्राम के विप्रों के पास जा कर कह दो कि वे शीघ्र ही बालू की एक रस्सी ले कर महाराज के पास आयें, अन्यथा उनके हित में अच्छा नहीं होगा।' सेवक ने नन्दिग्राम जा कर महाराज की आज्ञा वहाँ के विप्रों से कह सुनायी। सेवक के मुँह से ऐसी विचित्र आज्ञा सुन कर उन विप्रों की अवस्था शोचनीय हो गयी। वे समझ गए कि इस बार तो प्राणरक्षा होने की नहीं। समस्त विप्रों ने अभयकुमार के पास आ कर निवेदन किया–'हे कृपालु! इस बार महाराज ने एक विचित्र आज्ञा दे रखी है। हम लोगों ने अब तक ऐसी रस्सी न तो देखी है एवं न ही सुनी है, जो बालू की बनी हुई हो। अब सिवाय आप के हमारी सुरक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं।' अभयकुमार ने कहा–'आप तत्काल महाराज के समीप जा कर निवेदन कीजिए कि वे जिस प्रकार बालू की रस्सी चाहते हैं, उसके नमूने के लिए दूसरी बालू की रस्सी देवें, ताकि आज्ञा का पालन किया जा सके। यदि महाराज वैसी रस्सी देने में अपनी समर्थता दिखलावें, तो आप लोग विनम्र शब्दों में कह दीजिए कि हे महाराज! हम लोग तो आप की निर्धन प्रजा हैं, हमारा अपराध क्षमा हो तथा भविष्य में इस प्रकार की अलभ्य वस्तु की आज्ञा न दी जाए।' अभयकुमार की युक्तिपूर्ण सलाह सुन कर विप्र फूले नहीं समाये। वे उसी समय प्रस्थान कर शीघ्र महाराज की सेवा में उपस्थित हो गए। महाराज को प्रणाम कर उन्होंने करबद्ध निवेदन किया–'हे महाराज! आप के सेवक ने बालू की एक रस्सी ले आने की आज्ञा दी है। हम विप्र श्रीमान की सेवा में इसलिए उपस्थिति हुए हैं कि आप जिस प्रकार की रस्सी चाहते हैं, कृपा कर उसका एक नमूना दिखला दें, जिससे आज्ञा-पालन में विलम्ब न होवे।'

विप्रों का विद्वतापूर्ण उत्तर सुन कर महाराज आश्चर्यचंकित रह गए। कुछ देर तक सोचने के बाद उन्होंने कहा— 'हमारे पास तो बालू की रस्सी नहीं है।' जब विप्रों ने देखा कि महाराज अपनी असमर्थता प्रकट कर रहे हैं, तब उन्होंने कहा— 'हे दीनबन्धु! जब आप के राजमहल में बालू की रस्सी नहीं है, तब हम निर्धन विप्रों के पास कहाँ से मिल सकेगी। हे महाराज! हम लोग आप की शरणागत प्रजा हैं। हम लोगों को इस प्रकार की आज्ञा पालन करने के लिए न कहा जाए, जिसका पालन करना असम्भव हो। कारण आप की किसी प्रकार की अवज्ञा से हमारा विनाश निश्चत है। अतः हम अपने अपराध के लिए क्षमाप्रार्थी हैं।' महाराज की सेवा में इस प्रकार निवेदन कर विप्रगण नन्दिग्राम लौट गए।

उनके चले जाने पर महाराज अपने मन में सोचने लगे कि नन्दिग्राम के ये विप्र अत्यन्त दुष्ट स्वभाव हैं। अभी तक उनकी प्रवृति बदली नहीं है। अतः उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। वे फिर सोचने लगे कि वहाँ के विप्र बहुत चालाक हैं, इसलिए इस बार उनके पास ऐसी आज्ञा भेजनी चाहिए, जिसे पूर्ण करने में वे असमर्थ सिद्ध हों। इस प्रकार सोच कर महाराज ने दूत को बुला कर आज्ञा दी कि तुम नन्दिग्राम जा कर वहाँ के विप्रों से कहो कि वे एक घड़े के बराबर कुष्मांड उसी घड़े में रख कर मेरे यहाँ ले आवें, नहीं तो उन्हें नन्दिग्राम त्याग कर चला जाना पड़ेगा।

उधर नन्दिग्राम के विप्रों ने अपने मन में विचार किया कि अब हमारे ऊपर से महाराज का कोप शान्त हो गया है। उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। वे घर-घर आनन्द मनाने लगे। इतने में महाराज का दूत आ धमका। महाराज के दूध को देख कर उन विप्रों का माथा ठनका। वे सब-के-सब स्तब्ध रह गए। उसी समय दूत ने महाराज की आज्ञा कह सुनायी। महाराज की आज्ञा सुन कर विप्रों के ऊपर मानों दु:ख का पहाड़ टूट पड़ा। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो रहे। वे सोचने लगे— 'अरे, यह क्या हो गया? अभी-अभी हम ने अपने अपराध महाराज से क्षमा कराये हैं, किन्तु हमारे ऊपर महाराज का क्रोध घटने के स्थान पर बढ़ता ही जाता है। हाय! अब हम क्या करें? महाराज का क्रोध क्यों बढ़ता जा रहा है, यह भी समझ में नहीं आता? क्या उनका हृदय पाषाण के समान कठोर हो गया है, जो हमारे इतने अनुनय-विनय करने पर भी नहीं पसीजता। हम हतभागों के लिए इस संसार में कहीं भी शरण नहीं रही। अब हम क्या करें एवं क्या नहीं करें, यह बड़ी विषम समस्या है?

इस प्रकार द्विविधाग्रस्त हो कर नन्दिग्राम के विप्र अभयकुमार के पास आ कर कहने लगे— 'हे कुमार! आप वीरों में अग्रणी हैं, आप के अतिरिक्त भला कौन हमारी रक्षा कर सकता है? पुनः हमारे ऊपर महाराज की क्रोधरूपी ज्वाला धधक पड़ी है। आज हम अनाथ-से हो रहे हैं। हम डूब रहे प्राणियों के एकमात्र रक्षक आप ही हैं। अतः हे दयावान! आप हमें अपनी

शरण में लीजिए। हमारी विपत्ति का निवारण कीजिए। इस समय हमारी समस्याएँ पर्वताकार हो रही हैं, आप वज्र बन कर उनका नाश कीजिए। हे दीनबन्धु! लोक में जिस प्रकार समुद्र अपनी गम्भीरता के लिए, हिमालय पर्वत अपनी अचलता के लिए, रवि अपने प्रताप के लिए, देवेन्द्र स्वामित्व के लिए, चन्द्रमा शीतलता के लिए, मर्यादा पुरुषोत्तम समवाय-प्रियता के लिए एवं कामदेव अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हैं—उसी प्रकार आप अपनी नम्रता, विद्वता तथा बुद्धिमता के लिए प्रसिद्ध हो रहे हैं। हे स्वामी! आप हमारे कष्ट दूर कीजिये, हम चिन्ता में घुले जा रहे हैं। अब तक आप ने हमारी रक्षा कर जिस योग्यता का परिचय दिया है, हम असहाय उसकी समुचित प्रशंसा भला क्या कर सकते हैं? अब आप ही हमारे संकटपूर्ण जीवन के एकमात्र अवलम्बन हैं। हम आप की शरण में आये हैं, रक्षा करना आप का काम है। आप के समान अन्य कोई हितकारी त्रिभुवन में हमें नहीं दिखलायी देता।'

इतनें में राज-सैनिकों ने जामुन के वृक्ष के नीचे आ कर उस पर चढ़े हुए बालकों से जामुन के फल चखने के लिए माँगे। सैनिकों के भय से समस्त बालकगण स्तब्ध थे; किसी ने उत्तर नहीं दिया। अभयकुमार ने अपने मने में विचार किया कि इन सैनिकों को छका कर ही जामुन के फल देना चाहिये। ऐसा सोच कर उसने कहा—'हे वीरों! तुम जितने चाहो उतने फल खा सकते हो, किन्तु पहिले यह तो बतलाओं कि तुम शीतल फल चखना चाहते हो या उष्ण फल। तत्काल कहो कि किस फल की अभिलाषा है?'

अभयकुमार के इस प्रकार आश्चर्यजनक प्रश्न पूछने पर राज-सैनिकों की बुद्धि उनका संग छोड़ गई। वे सोचने लगे कि क्या उत्तर दें। सब आपस में सलाह करने लगे—'आश्चर्य है कि एक वृक्ष में दो प्रकार के फल कैसे सम्भव हैं? शीतल एवं उष्ण। क्या ऐसा होना सम्भव है? अब तक हमने जीवन में इस प्रकार के फल नहीं चखे।' परस्पर परामर्श करने पर भी वे निश्चय नहीं कर सके कि इस बालक से क्या कहा जाए? अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया कि एक ही वृक्ष की डालियों में दो प्रकार के फल लगना असम्भव है। ज्ञात होता है कि यह बालक उनसे मनोविनोद कर रहा हो, अतः इसे भी छकाना चाहिये।' ऐसा सोच कर उन्होंने अभयकुमार से जामुन के उष्ण फल खाने की अपनी इच्छा प्रकट की। अभयकुमार ने जामुन के कुछ फल तोड़ कर उन्हें परस्पर घर्षित कर भूमि पर बिछी तप्त बालूका राशि में पटक दिया। उनसे कहा कि देखो उष्ण फल पड़े हैं, उन्हें खा कर अपनी क्षुधा की तृप्ति कर लो। अभयकुमार के वचन सुन कर राजसैनिक वहाँ गये, जहाँ जामुन के फल बालू में पड़े हुए थे। सैनिक फल उठा कर मुँह से फूँकने लगे। इतने में अभयकुमार ने हँस कर कहा—'वीर सैनिकों!

बड़े ध्यान से फल फूँकना, क्योंकि वे (फल) इतने उष्ण हैं कि तुम्हारी दाढ़ी-मुँछ तक जल जाने की सम्भावना है। अतः सावधानी से फलों को फूँकना।' अभयकुमार के व्यङ्ग-भरे शब्दों ने बाणों का काम किया। समस्त राज-सैनिकों ने अपनी मूर्खता पर लज्जित होकर अपना शीश नत कर लिया। सैनिक एक-दूसरे का मुख देखने लगे। उनकी वाणी मूक-सी हो गयी। अन्त में उन सैनिकों ने अपने मन में यही निश्चय किया कि यह कुमार अत्यन्त बुद्धिमान प्रतीत होता है। इसके रूप, गुण एवं बुद्धिमतापूर्ण वचनों से प्रतीत होता है कि इसी ने महाराज श्रेणिक के समस्त प्रश्नों का विद्वतापूर्णक समाधान किया है। इसकी भव्य मुखाकृति से राजसी तेज प्रकट हो रहा है। इसकी बुद्धिमता से यही सिद्ध होता है कि यह किसी प्रतापी राजा का पुत्र है। अन्य बालकों की तुलना में इसके मुखमण्डल पर प्रतिभा की आभा अधिक है। इसके आचरण, रूप तथा वाणी से राजसी अधिकार का तेज प्रकट हो रहा है। इसके समकक्ष प्रतिभाशाली कोई अन्य बालक दिखलायी नहीं देता। इसके ललाट की आभा, अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शोभा तथा विमुग्धकारी वाणी से यही सिद्ध होता है कि यह कोई राजपुत्र है। इसमें द्विज-कुमार से लक्षण नहीं है। इसी उहापोह में सैनिक पड़े हुए थे कि इतने में किसी ने आ कर बतलाया कि ये महाराज श्रेणिक के पुत्र राजकुमार अभयकुमार हैं। सैनिकों ने ऐसा शुभ समाचार पा कर नन्दिग्राम में जाने तक का विचार त्याग दिया तथा राजगृह वापिस आकर महाराज श्रेणिक से राजकुमार अभयकुमार के सम्बन्ध में अपना प्रत्यक्षदर्शी अनुभव सुनाने लगे। महाराज श्रेणिक के हर्ष की सीमा नहीं रही। उनका हृदय भी प्रिय पुत्र अभयकुमार का कुशल समाचार सुन कर गद्‌गद हो गया। अपने प्रिय पुत्र की बुद्धिमता पर प्रसन्न होकर वे सोचने लगे—'मेरा अनुमान सत्य ही निकला। यह अभयकुमार सरीखे बुद्धिमान राजकुमार की ही आश्चर्यजनक प्रतिभा थी, जिसने मेरे विकट प्रश्नों का युक्तिपूर्ण उत्तर दे कर अपनी बुद्धिमता की पराकाष्ठा प्रकट की। मेरे हृदय में प्रारम्भ से ही यह शङ्का हो रही थी कि ये भोजन-भट्ट ब्राह्मण मेरे कठिन प्रश्नों का उत्तर कैसे देते हैं? संयोग से उनके मध्य में कोई अन्य बुद्धिमान पुरुष अवश्य विद्यमान है, जिसने अपनी आश्चर्यजनक मेघा से सब को छका दिया है। अतः ऐसे बुद्धिमान पुत्र को शीघ्र ही यहाँ बुलवाना चाहिये।'

महाराज ने अभयकुमार के आगमन की आज्ञा दी

महाराज अभयकुमार से मिलने के लिए व्याकुल हो गये। उन्होंने राज-सेवकों को बुला कर कहा—'तुम लोग नन्दिग्राम में शीघ्र जाओं एवं राजकुमार अभयकुमार को साथ ले आओ।' अभयकुमार से कह देना—'महाराज ने आप को शीघ्र बुलाया है, किन्तु आप निम्नलिखित नियमों का पालन करते हुए आयें—न मार्ग से आवें तथा न कुमार्ग से, आने के समय न दिन हो

तथा न रात्रि काल हो, न भरपेट भोजन कर के आवें तथा न भूखे ही, न पैदल आवें अथवा न किसी सवारी पर चढ़ कर ही; किन्तु राजगृह में आवें अवश्य।'

महाराज की उपरोक्त आज्ञा सुन कर राज-सेवक नन्दिग्राम को चल पड़े। वे कुछ दिनों में ही वहाँ पहुँच गये। अभयकुमार को विनयपूर्वक नमस्कार कर राजसेवकों ने महाराज श्रेणिक की आज्ञा कह सुनायी। समस्त ग्राम में अभयकुमार के राजगृह जाने की चर्चा विद्युत के समान फैल गयी। सब के मुँह से यही बात निकलने लगी कि महाराज ने अभयकुमार के ऊपर बड़ी कड़ी शर्त रख कर अपने की आज्ञा दी है। अभयकुमार के राजगृह जाने के समाचार ने नन्दिग्राम निवासी विप्रों में तो खलबली ही मचा दी।

सब के चेहरे पर हवाईयाँ उड़ने लगीं, सब के हृदय में हाहाकार उत्पन्न हो गया। सब-के-सब भयग्रस्त होकर परस्पर चर्चा करने लगे—'हाय! अब हमारी क्या दुर्दशा होगी? बन्धु! अब विनाशकाल समीप आ गया है। अब तक तो हमारी रक्षा इस दयालु, परोपकारी, बुद्धिमान कुमार के कारण हुई है। हे भगवन्! आगे हमारी रक्षा कौन करेगा? अब तो हम बिना मौत के मर जायेंगे। यह निश्चय समझो कि उनके बिना हमारा यहाँ टिकना असम्भव है। देखो, महाराज ने अभयकुमार को बुला कर उसकी अनुपस्थिति में हमारे ऊपर प्रहार करने का निश्चय किया है। हे ईश्वर! अब हमारी कौन रक्षा करेगा? हमारी दुर्दशा के ऊपर अब कौन ध्यान देगा?' इस प्रकार समस्त ब्राह्मण रोते-बिलखते अभयकुमार के निकट पहुँच कर उनके राजगृह जाने के निश्चय पर अपना घोर दु:ख प्रकट करने लगे।

अभयकुमार ने द्विजगणों को आश्वासन देते हुए कहा—'प्रिय द्विजगणों! आप लोग इतने अधीर क्यों हो रहे हैं? मैं महाराज की आज्ञा के अनुसार राजगृह जाऊँगा। आप लोग इस ओर से निश्चिन्त रहें कि मुझे आप लोगों का सदा ध्यान रहेगा।' इस प्रकार नन्दिग्राम के द्विजगणों को धीरज बँधा कर अभयकुमार ने एक रथ मँगवाया। उस पर एक छींका बँधवा दिया। सूर्य के अस्ताचलगामी होते ही संध्या के प्रारम्भकाल में अभयकुमार ने रथ के छींके पर बैठ कर उसके पहिये मार्ग एवं कुमार्ग में चला कर अनेक नन्दिग्रामवासी द्विजगणों के साथ राजगृह के लिए प्रस्थान किया।

अभयकुमार का राजगृह में आगमन और उनका अभूतपूर्व स्वागत

राजकुमार अभयकुमार के आगमन का समाचार राजगृह नगर के हर गली-कूचे में फैल गया। उस समय समस्त नगर हर्ष के समुद्र में गोते खाने लगा। प्रजाजन अभयकुमार के आगमन से इतने प्रसन्न हुए, जिसकी कोई सीमा नहीं। सब-के-सब

उसके दशर्पन के लिए राजमार्ग पर इकट्ठे हो गये। कुमार के आगमन से समस्त नगर में वाद्यों की झङ्कार से धूम मच गयी। जिस समय अभयकुमार ने राजगृह नगर में प्रवेश किया, उस समय बन्दीगणों ने कुमार के स्वागत में प्रशंसात्मक शब्दों में वर्णन करना शुरू किया। नगर निवासी कुमार की प्रशंसा करते-करते नहीं अघाते थे। राजगृह की स्त्रियाँ कुमार को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। शनैः शनैः अभयकुमार राजमहल के सिंहद्वार पर पहुँच गया। रथ से उतर कर वह सीधे अपने पिता महाराज श्रेणिक के निट गया। उसके साथ में नन्दिग्राम के विप्र भी थे। जिस समय कुमार महाराज के पास पहुँचा, उस समय महाराज श्रेणिक राजसिंहासन पर बैठे हुए थे एवं अपने प्रिय पुत्र अभयकुमार के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। अभयकुमार ने अपने पूज्य पिता के चरणों में नत हो कर प्रणाम कर अपनी श्रद्धा प्रकट की। अभयकुमार के पीछे नन्दिग्राम के विप्र हाथ जोड़े खड़े थे। उसने अपने पिता से नम्रता के साथ प्रार्थना कर उनके अपराध क्षमता करवाये। महाराज श्रेणिक ने प्रसन्न हो कर उन द्विजगणों को अभयदान दिया। विप्र प्रसन्नता के साथ अभयकुमार का गुणगान करते हुए निर्भय होकर अपने नन्दिग्राम को लौट गये।

महाराज ने अभयकुमार की प्रशंसा करते हुए कहा—'हे पुत्र! तुम्हारे समान कोई अन्य विद्वान तथा लोक-हितकारी पुरुष मुझे संसार में दिखलायी नहीं देता। यह तुम्हारी ही बुद्धिमत्ता का प्रताप था, जिससे नन्दिग्राम निवासी द्विजगणों की रक्षा हो पायी है, अन्यथा उनका तो विनाश निश्चित था। यह तुम्हारी बुद्धि की विलक्षणता थी, प्रतिभा की दूरदर्शिता थी, जिसने मेरे समस्त प्रश्नों का युक्ति संगत समीचीन उत्तर दे कर मुझे आश्चर्यचंकित कर दिया। क्या इस प्रकार पाण्डित्यपूर्ण उत्तर देना किसी अन्य पुरुष के लिए सम्भव था? तुम्हारी विलक्षण प्रतिभा देख कर मैं आश्चर्य प्रकट करता हूँ। बकरा, बावड़ी, काष्ठ (लकड़ी), तेल, दुग्ध, बालू की रस्सी आदि के सम्बन्ध में मेरे जटिल-से-जटिल प्रश्नो का सहज सरलता से सटीक समाधान प्रस्तुत करते हुए तुम ने अपनी असाधारण विद्वता प्रदर्शित की है। यही नहीं अन्त में यहाँ आते समय मार्ग में पालन करने के लिए रखी गईं मेरी गूढ़-से-गूढ़ शर्त्तों को तुमने अनायास पूर्ण किया, अतः तुम्हारी जितनी भी प्रशंसा की जाए वह न्यून है।'

इस प्रकार पिता-पुत्र ने परस्पर वार्तालाप कर आनन्द प्राप्त किया। अभयकुमार के साथ उसके नाना सेठ इन्द्रदत्त भी वहाँ आये थे। महाराज श्रेणिक ने उनकी यथोचित अभ्यर्थना की। योग्य पिता के योग्य पुत्र को देख कर समस्त सभासद एवं प्रजाजन उनकी सूर्य एवं चन्द्र से तुलना करने लगे। इस प्रकार महाराज श्रेणिक अपने प्रिय पुत्र अभयकुमार को पा कर

आनन्द के साथ अपना समय बिताने लगे।

पाठकगण! धर्म की महिमा अपरम्पार है, इसके पुण्य प्रताप से संसार में मनुष्य बुद्धिमान तथा गुणवान बनता है। यह धर्म ही का प्रताप था, जिसने महाराज श्रेणिक को तेजस्वी, सुन्दर, प्रतिभाशाली, गुणग्राही, चक्रवर्ती तुल्य वैभवशाली, कीर्तिवान एवं प्रतापी बनाया। यह स्वयंसिद्ध है कि महाराज श्रेणिक तथा अभयकुमार ने अपने पूर्व जन्म में अपूर्व धर्म-कार्य किये थे, जिनके प्रभाव से इस जन्म में उन्होंने उत्तम-उत्तम गुणों से युक्त होकर सुख, सम्पत्ति तथा वैभव की प्राप्ति की। सच तो यह है कि धर्म की आराधना करना प्रत्येक श्रेष्ठ विचारशील का कर्तव्य होना चाहिये। धर्म ही संसार का आधार है। अब तक जितने साधुगण हुए हैं, सब ने निःशङ्क होकर धर्म की महानता स्वीकार ली है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक धर्म कार्य में संलग्न रहेगा, वह इस लोक में संसार के वैभव सुखों को भोग कर पारलौकिक सुखों को भी प्राप्त करेगा अर्थात् संसार के भ्रम-जाल से मुक्ति पा कर अनन्त अक्षय सुख को भोग कर अपना जीवन सफल करेगा। अतः प्रत्येक भव्य पुरुष को चाहिये कि वह उत्कृष्ट-उत्कृष्ट फलों के प्रदाता एकमात्र सारवान वस्तु 'धर्म' की सतत् आराधना कर मनवाँछित फल की प्राप्ति करें।

सप्तम अध्याय

ज्ञान रूप-भूषण त्रिभुवन सिर धारक तुम को पाता हूँ। हे भगवान सिद्ध! तव चरणों में निज शीश झुकाता हूँ।।
जिसके बल से जगत जीव जब मनुज शिरोमणि बन जाता। उसी बुद्धि की किंचित महिमा प्रिय पाठम मैं प्रगटाता।।

वैसे तो महाराज श्रेणिक का राज्य-काल आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था, किन्तु जब से अभयकुमार का आगमन हुआ, तब से महाराज का राज्य-शासन पूर्ण सुचारू रूप से चलने लगा। महाराज ने प्रिय पत्नी नन्दश्री को नन्दिग्राम से बुलवाया एवं महादेवी अर्थात् पटरानी बनाया। अभयकुमार को उन्होंने युवराज पद दिया। अभयकुमार के तेजस्वी स्वभाव, प्रखर बुद्धिमत्ता एवं न्याय-नीति-निपुणता देख कर राजमन्त्रियों के परामर्श से महाराज ने उसको अपनी विशाल सेना का सेनापति भी बना कर उसकी योग्यता का सम्मान किया। शासन सम्बन्धी सभी व्यवस्थाएँ कर महाराज श्रेणिक ने भगवान बुद्ध की आदर्श शिक्षाओं पर मुग्ध हो कर एक बौद्ध संन्यासी को अपना गुरु बनाया। उन गुरु महाराज के आदेशानुसार महाराज चातुर्याम तत्व की पूजा कर आनन्द एवं निर्विघ्न के साथ राज्य-कार्य सम्पादन करने लगे। इधर सब के मुँह से युवराज अभयकुमार की योग्यता की प्रशंसा दिन-प्रति-दिन फैलती गई। भला क्यों न फैले? अपनी बुद्धिमता, विद्वता, नीति-निपुणता एवं गुण-ग्राहकता से वह सब की नाक का बाल बन गया था। जिधर देखिये उधर उसकी तेजस्विता का यशोगान हो रहा है।

सब लोग—क्या राजा, क्या प्रजा—एक स्वर से उसी की प्रशंसा कर रहे हैं, क्योंकि उसने अनीति की राह पर चलना कभी नहीं सीखा। उसके कुशल व्यवहार से मगध की समस्त प्रजा सुख-चैन की बंशी बजाने लगी। महाराज श्रेणिक अपने इस प्रतापी पुत्र के बल पर लोकोत्तर सुख का अनुभव करने लगे। महाराज के अहोभाग्य की सराहना कितनी की जाए, जिनके अभयकुमार सरीखा सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न पुत्र था। वह माता भी धन्य है, जिसने कोख से अभयकुमार के समान पुत्र-रत्न उत्पन्न किया। इस प्रकार अभयकुमार अल्पकाल में ही सब की प्रशंसा के पात्र बन गये।

पुत्र के लिए विवाद

उन दिनों मगध राज्य में सुभद्रदत्त नामक सेठ के धन-वैभव की बड़ी धूम थी। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम था वसुदत्ता, दूसरी का नाम वसुमित्रा। वसुदत्ता सन्तानहीन थी, पर वसुमित्रा के एक बालक था। यद्यपि सुभद्रदत्त अपार सम्पत्ति का स्वामी था, किन्तु उसकी तृष्णा अभी अतृप्त थी। वह सदा धन-वृद्धि का उपाय सोचा करता था। एक दिन सेठ सुभद्रदत्त ने वाणिज्य-व्यवसाय के उद्देश्य से अपने पुत्र तथा स्त्रियों के साथ राजगृह हेतु यात्रा की। इस यात्रा का उद्देश्य धन उपार्जन ही था। कालान्तर में वह राजगृह नगर में पहुँच गया। वहाँ पर प्रचुर वाणिज्य-व्यवसाय करते हुए सेठ का जीवन आनन्द के साथ व्यतीत होने लगा। मनुष्य के जीवन में जब दुर्भाग्य का प्रकोप होता है, तब उसे दुःख झेलना ही पड़ता है। उसके आगे किसी की सत्ता नहीं चलती। उसी दुर्भाग्य ने काल के रूप में सेठ सुभद्रदत्त पर भी अपना प्रहार किया। पुत्र, धन-धान्य, स्त्री तथा वैभव-सुख सब कुछ यहीं छोड़ कर सेठजी स्वर्ग को सिधारे। सेठ की असामयिक मृत्यु से उसकी स्त्रियों के शोक का क्या ठिकाना? सच है काल-चक्र के आगे सब को पिसना ही पड़ता है, किसी की रक्षा नहीं हो सकती। सेठ सुभद्रदत्त के मरण के कुछ दिवस पर्यंत उसकी दोनों स्त्रियों ने अपना शोक-काल मनाया।

किन्तु मनुष्य की दशा सदा एक-सी नहीं रहती। न तो वह सदा प्रसन्न ही रहता है एवं न सदा शोक-मग्न। जिस प्रकार दुःख के बाद सुख का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार सुख के बाद दुःख। "चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च'। इस नियम के अनुसार जब सेठ की स्त्रियों को पति-वियोग का शोक कम हुआ, तब उनमें अनबन होने लगी। सेठ के जीवन-काल में उनमें इतना प्रेम भाव था, जिसे देख कर सेठ ने स्वप्न में भी ऐसा विचार नहीं किया था कि उसके मरते ही स्त्रियाँ रण-चण्डी का उग्र रूप धारण कर लेगी। रह-रह कर वसुदत्ता एवं वसुमित्रा में हर बात के लिए चख-चख मच जाया करती थी। लड़ाई का प्रधान कारण था—वसुमित्रा के बालक पर वसुदत्ता का दावा करना। सच तो यह है कि दोनों ही उस बालक

पर अपना प्रगाढ़ प्रेम प्रकट करती थीं। यद्यपि बालक वसुमित्रा का था, किन्तु उसके ऊपर वसुदत्ता का ही प्रेम अधिक था। बालक दोनों को अपनी माँ समझता था। बालक के ऊपर इस प्रकार अनुराग रखने के कारण अन्य लोगों को भी यह ज्ञात नहीं था कि वास्तव में पुत्र किसका है—वसुमित्रा का या वसुदत्ता का। जब मनुष्य के हृदय में ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि प्रचण्ड रूप धर लेती है, तब उसके प्रज्वलित होने के लिए तनिक-सा तिनका ही पर्याप्त होता है। इस प्रकार दोनों में बात-बात के लिए लड़ाई होने लगी, जिसने एक दिन बढ़ते-बढ़ते उग्र रूप धारण कर लिया। बात यह थी कि वसुदत्ता ने बालक के ऊपर केवल अपना अधिकार बतलाया। उसने कहा कि बालक उसका है, वसुमित्रा का नहीं। वसुमित्रा घपले में पड़ गयी। इसके अतिरिक्त उसके पास क्या उपाय था कि वह 'हाँ' या 'न' कहती। किन्तु वह किस मुँह से अपनी कोख से उत्पन्न प्रिय पुत्र को छोड़ने पर बाध्य होकर 'न' शब्द कहती? जब अन्य सेठों ने इनके झगड़े की बात सुनी, तब उन्होंने आकर उन दोनों स्त्रियों को समझाना शुरू किया। पड़ोसी सेठों ने स्वर्गीय सुभद्रदत्त को प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा तथा विपुल सम्पत्ति का बखान कर उन्हें लड़ाई-झगड़ा करने से मना किया। किन्तु उनके लाख समझाने पर भी उनका झगड़ा घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया। अन्य सेठ लोग भी लड़का किसका है—इस द्विविधा का सत्यासत्य निर्णय करने में असमर्थ होकर अपने-अपने घर चले गये। दोनों सेठानियों की यह लड़ाई दिन-प्रतिदिन बड़ी उग्रता के साथ बढ़ने लगी। उनके झगड़े से पड़ोसी तक तङ्ग आ गये।

दोनों स्त्रियों ने अपने झगड़े का निर्णय राज-दरबार में कराना निश्चित किया—जिसकी सूचना सारे पड़ोसियों में हो गयी। इस बार भी अन्य सेठों ने आ कर उन्हें समझाना प्रारम्भ किया—'यह कितनी लज्जा की बात होगी कि तुम लोगों के समान उत्तम कुल की नारियाँ राज-दरबार में जा कर अपने कुल का विवाद विज्ञापित करेंगी। तुम लोग क्या समझती हो कि वहाँ जाने से तुम्हारी नेकनामी होगी? स्वर्गीय सेठजी के नाम पर इस प्रकार काला धब्बा न लगाओ। तुम्हारे इस झगड़े के कारण लोग पहिले से ही तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं। तुम क्या समझती हो कि राजदरबार में जा कर तुम्हें यश मिलेगा या कलङ्क? सच जानो, वहाँ जा कर तुम्हारा अपयश ही होगा। लोग तुम्हें निर्लज्ज कहेंगे, क्योंकि बिना विचारे काम करनेवालों की अन्त में बड़ी दुर्दशा होती है। एक कवि ने कहा भी है—

जाको विधि दारुण दु:ख दीन्हा, ताकि मति पहिरे हरि लीन्हा।

पर उन स्त्रियों की बुद्धि तो भ्रष्ट हो चुकी थी, हितचिन्तक सेठों के बारम्बार अनुनय-विनय करने पर भी उनके चित्त पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। वे सीधे महाराज श्रेणिक के दरबार में पहुँच गयी। महाराज के सामने उन दोनों ने अपना-अपना पक्ष

प्रस्तुत किया। महाराज श्रेणिक भी सेठ की दोनों स्त्रियों का झगड़ा सुन कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। उनकी समझ में भी यह नहीं आया कि कैसे वे सत्यासत्य का निर्णय कर सकें। महाराज ने उन स्त्रियों से कहा– 'तुम दोनों क्यों व्यर्थ में झगड़ा कर रही हो–यह सब तुम्हें शोभा नहीं देता है। अतः अपने घर को लौट जाओ।' महाराज के समझाने पर भी जब स्त्रियों ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा, तब महाराज ने सोच-विचार कर युवराज अभयकुमार को बुला कर दोनों स्त्रियों का विवाद कह सुनाया। अभयकुमार ने इसे विचित्र विवाद का समस्त वृत्तान्त सुन कर कुछ समय तक सोच-विचार किया।

अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि जिस प्रकार से भी हो इस विवाद के मूल कारण का पता लगा कर सत्यासत्य का निर्णय कर लेना नितान्त आवश्यक है। अतः सेठ की स्त्रियों को अपने पास बुला कर उनसे पूछा कि लड़का वास्तव में किसका है? दोनों ने लड़का अपनी कोख से उत्पन्न बतलाया। कोई भी उसे सौत का उत्पन्न बालक मानने को प्रस्तुत नहीं थी। इस प्रकार अभयकुमार ने बहुत प्रयास किया, जिससे बालक की वास्तविक माता का पता लग जाए, पर उनकी समस्त कोशिशें व्यर्थ सिद्ध हुईं। तब अभयकुमार ने क्रोधित होकर सेठ-पुत्र को अपने समक्ष बुलवा कर उसके शीश पर अपना दुधारा खड्ग रख दिया एवं गुरु-गम्भीर स्वर में बोला– 'देखो! तुम्हारे विवाद से मैं तङ्ग आ गया हूँ। इसलिए मैं इस बालक को अपने इसी खड्ग से अभी दो खण्डों में विभक्त किए देता हूँ। तुम दोनों एक-एक खण्ड ले कर अपने हृदय की ज्वाला शान्त करो, नहीं तो तुम इसके लिए सदा झगड़ती रहोगी। बस, अब क्षण भर में तुम्हारा विवाद मिट जाता है।'

अभयकुमार के वचन सुन कर वसुमित्रा के हृदय पर मानो वज्राघात हो गया हो। उसका मातृ-प्रेम अपनी कोख से उत्पन्न शिशु की प्राणहानि की आशङ्का से ही काँप उठा। वह काँपती हुई उठ खड़ी हुई। सच है, अपने प्रिय पुत्र के लिए माता कठिन-से-कठिन विपत्तियाँ सहर्ष सहती हैं। अपने प्राणप्रिय पुत्र के ऊपर आपत्ति की आशङ्का से वह अपना बलिदान तक कर देती है। पुत्र चाहे वह कपूत हो या सपूत, पर माता की ममता उसे कुमाता नहीं बनने देती। पर वसुदत्ता के हृदय में भला वह निश्छल प्रेम कहाँ? जिसकी कोख से पुत्र ही नहीं उत्पन्न हुआ हो, वह बाँझ प्रसूति की पीड़ा क्या जाने? अभयकुमार के वचन सुन कर वसुमित्रा का हृदय हाहाकार कर उठा। उसके हृदय के मर्मस्थल पर प्रबल आघात लगा। तत्काल उसने निश्चय कर लिया कि उसे पुत्र भले ही न मिले, किन्तु वह जीवित तो रहे। उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। उसने अपनी भय-प्रकम्पित वाणी में कहा– 'हे महाभाग! मैं नहीं चाहती कि आप इस बालक के दो खण्ड कर दें। मुझे यह पुत्र अब नहीं चाहिये। आप इसे वसुदत्ता को ही दे देवें। मैं आप के हाथ जोड़ कर बालक के प्राण की भिक्षा माँगती हूँ। वास्तव में यह

बालक मेरा नहीं है, वसुदत्ता का ही दावा सत्य है।'

पाठक, देखी आप ने मातृ हृदय की उमड़ती गङ्गा। वसुदत्ता मौन थी, उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। इस प्रकार अभयकुमार ने जाँच कर लिया कि बालक वास्तव में वसुमित्रा का पुत्र है। वसुदत्ता का उस पर दावा बिल्कुल झूठा है। उसने वसुमित्रा को पुत्र दिया एवं वसुदत्ता को मगध राज्य से निष्कासन की आज्ञा दी। पाठक, आप सोच सकते हैं कि हमारे राजकुमार कितने बुद्धिमान पुरुष हैं। उनके सौजन्य, व्यवहार, नीति-निपुणता तथा प्रजारन्जन से समस्त नागरिक आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

वास्तविक बलभद्र का निर्णय—छदमवेशी का भण्डाफोड़

अयोध्या नगरी में बलभद्र नामक एक सच्चरित्र किसान रहता था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा था। भद्रा अत्यन्त रूपवती थी। उसका मुख चन्द्रमा के समान मनोहर था एवं उसकी वाणी कोकिल के समान सुरीली थी। उस नगरी में वसन्त नामक एक रूपवान क्षत्रिय रहता था, जिसकी स्त्री का नाम माधवी था। विधि का विचित्र संयोग देखिए। वसन्त जैसा रूपवान था, ठीक उससे विपरीत उसकी स्त्री कोयल के समान कृष्णवर्ण एवं कुरूपा थी। एक दिन वसन्त की दृष्टि भद्रा के ऊपर जा पड़ी। उसे देखते ही वसन्त का मन मानो भ्रमर बन कर भद्रारूपी पुष्प के रूप-सौरभ पान के लिए ललचाने लगा। उसका रूप-लावण्य देख कर वसन्त मानो पागल हो गया। वह सोचने लगा कि किस प्रकार यह सुन्दरी उसके वशीभूत हो? उसके रोम-रोम में काम-वासना की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। कामदेव के बाण रह-रह कर उसके अन्तस्तल को अपने प्रहारों से छलनी करने लगे। वसन्त दिन-रात्रि भद्रा की चिन्ता में घुल-घुल कर रुग्ण होने लगा। उसके नेत्रों के सामने भद्रा का चित्र किसी चलचित्र की तरह छाया रहता था। सोते-जागते, उठते-बैठते वह बस भद्रा का ही स्वप्न देखा करता था। उसके हृदय में काम-वासना से प्रचण्ड अधीरता उत्पन्न हो गयी। उसका मस्तिष्क मानो प्रज्वलित अङ्गारे का ही प्रतिरूप बन गया हो।

उसने अनेक प्रकार की शीतल औषधियों का सेवन करना प्रारम्भ किया। किन्तु 'रोग बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों औषधि दी' की उक्ति चरितार्थ होने लगी। सच तो यह है कि उसके हृदय में भद्रा के साथ वासना तृप्त करने की कामाग्नि धधक रही थी एवं वह उन्हें शीतल औषधियों के उपचार से शान्त करना चाहता था। पर क्या कहीं काम-रुपी अग्नि में घृत डालने से शान्ति मिलती है? उसके हृदय के मर्मस्थल में काम-वासना का ज्वालामुखी विस्फोट के कगार पर था, लेकिन वह औषधियों द्वारा शान्ति का मार्ग ढूँढ़ रहा था। उसके हृदय में भद्रा के लिए एक भयानक हलचल मच गयी। उसका जीवन स्वयं के लिए

भार स्वरूप बन गया। भद्रा उसके जीवन का एकमात्र प्रयोजन रह गयी थी। उकसे बिना उसे सारा संसार अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। वसन्त के जीवनाकाश में भद्रा की लालसा पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान अपनी स्निग्ध जयोत्स्ना से प्रकाशित होकर चकाचौंध करने लगी। उसके जीवन का एकमात्र आधार रूपसी भद्रा बन गयी। उकसे मुख से केवल भद्रा का ही नाम निकलता था।

जब वसन्त ने देखा कि भद्रा सदृश सुन्दरी नारी को फँसाने के लिए जाल बिछाने की आवश्यकता है अन्यथा वह हाथ में आने की नहीं, तब इस उद्देश्य से अपने मन में विचार कर उसने एक कुट्टनी से अपनी मनोकामना प्रकट की। उसने उस कुट्टनी के द्वारा अपना निन्दनीय मनोरथ सिद्ध करने का षडयन्त्र रचा। कुट्टनी का व्यवसाय ही ऐसा है कि वह कूटनीति में अपनी सानी नहीं रखती। वसन्त का सन्देशा लेकर कुट्टनी भद्रा के पास पहुँच गयी एवं अपना जाल फैलाना शुरू किया। उसने मधुर वचन में कहा—'हे भद्रे! तुम कितनी अपूर्व सुन्दरी हो। तुम्हारे समान भुवन मोहनी रूपवती स्त्री मैं ने कभी कहीं नहीं देखी। किंतु पति कैसा कुरुप मिला है, जिसे देख कर कहना पड़ता है कि तेरा भाग्य ही फूट गया है। तुम्हारा पति बलभद्र इतना कुरुप एवं मूर्ख है, जिसकी तुलना में कोई अन्य मनुष्य सहज में नहीं मिल सकता। कर्मों ने कैसी अनमेल जोड़ी मिलाई है। बहिन, तुम्हारे रूप-गुण देख कर मुझे तो रोना आता है कि हे भगवान! तुम ने यह अन्याय किया?'

कुट्टनी इतनी बातें कह कर भद्रा के हृदय में उहापोह मचा कर उसके मुख की तरफ अपनी कथनी का प्रभाव देखने के लिए व्यग्र हो उठी। जब उसने देखा कि नादांन शिकार जाल में फँसना ही चाहता है, तब 'मौनम् सम्मति लक्षणम्' के अनुसार उसने कहना आरम्भ किया—'हे भगिनी! तुम्हारी भाग्य की विडम्बना को देख कर मुझे भी हृदय से दु:ख हो रहा है, किन्तु मुझे आश्चर्य तो यह देख कर रहो रहा है कि तुम सरीखी सुन्दरी अभी तक अबोध रह कर बलभद्र की दासी क्यों बनी हुई है? हे सखी! तुम्हारे स्थान पर अगर कोई अन्य नारी होती, तो वह उसे छोड़ कर किसी सुन्दर पुरुष के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेती? मेरी प्यारी भगिनी! मैं जानती हूँ कि तुम्हारे हृदय में कभी-कभी अपने पति के सम्बन्ध में निराशा की आँधी प्रचण्ड गति से उठती होगी, किन्तु तुम ने भोलेपन के कारण अपनी वर्त्तमान दशा पर सन्तोष कर लेने में ही अपना हित समझा है। तुम्हारी इस अवस्था पर मुझे घोर असन्तोष हो रहा है।'

कुट्टनी की माया-भरी बातों ने भद्रा के ऊपर जादू का काम किया एवं फिर जादू वह जो शीश पर चढ़ कर बोले। ठीक यही दशा भद्रा की हो गयी। उसके हृदय में सुषुप्त काम-वासना प्रकट हो गयी। बहुत दिनों से अपने कुरूप पति के सम्बन्ध में जो असन्तोष की चिनगारी दबी हुई थी, वह कुट्टनी के फूँकते ही प्रज्वलित हो उठी। हे पाठकों! भद्रा के विषय में क्या

सोचेंगे? वह सचमुच में भोलीभाली थी, या उसके हृदय में लोभी भौरे के समान किसी अन्य सुन्दर पर-पुरुष के लिए वासना का स्थान भी था? मैं अपनी ओर से कुछ भी न लिख कर यह भद्रा की जिह्वा से प्रकट करवा देना उचित समझता हूँ। भद्रा ने कुट्टनी की स्नेहभरी बातों में अपनेपन का भाव पाया। उसने कुट्टनी से कहा—'हे बहिन! इसमें भला मेरा क्या दोष है? मेरा पति तो कुरूप है ही, मै अपने भाग्य की रेखा कैसे मिटाऊँ?' इस प्रकार कह कर उसका मुख फीका हो गया। कुट्टनी समझ गयी कि तीर अपने लक्ष्य पर जा लगा है। अपना शिकार जाल में फँसता देख कर आत्मीयता का भाव प्रकट करती हुई वह बोली—'हे सखी! यदि तुम चाहों तो मनचाहा सुन्दर पुरुष मिलना दुर्लभ नहीं है। इसी नगरी में वसन्त नामक एक सुन्दर धनवान क्षत्रिय युवक रहता है। उकसे रूप-गुण की चर्चा सारे नगर में हो रही है। यदि तुम चाहो तो मैं उससे मिलवा सकती हूँ। वह भी तुम्हारे रूप पर मोहित हो गया है। हाथ कंगन की आरसी क्या? तुम्हारे समान सुन्दरी रूपवती के लिए संसार में कोई ऐसी वस्तु अलभ्य नहीं, जो प्राप्त न हो सके। बस तुम्हारे हाँ कहने भर की देरी है, तुम दोनों के सुख के लिए मैं सब कुछ व्यवस्था करने के लिए प्रस्तुत हूँ।'

वसन्त के रूप, गुण एवं धन की प्रशंसा सुन कर भद्रा का दुर्बल हृदय विचलित हो उठा। उसके हृदय में वसन्त से मिलने की उत्कण्ठा उपत्न्न हो गयी। उसके मन की चचँलता ने सदाचंरण के ऊपर गहरी ठेस पहुँचायी। वास्तव में उसका हृदय तो पहिले से ही डँवाडोल था। अनुकूल परिस्थिति पाकर वह पाप के पङ्क में फिसल गयी। भद्रा कुट्टनी के बहकावे से जाल में पालतू कबूतर के समान फँस कर वसन्त के साथ भोग-विलास का कलुषित जीवन व्यतीत करने लगी। वसन्त के हाथ में कठपुतली बन कर भद्रा अपने पति की अनुपस्थिति में छदमरूप से उसके निकट प्रति दिन जाने लगी। भद्रा वसन्त के ऊपर प्राण न्यौछावर करने लगी। वसन्त के समक्ष अपना पति बलभद्र उसकी आँखों की किरकिरी बन गया। इस प्रकार भोली-भाली भद्रा वसन्त के चंगुल में फँस कर अपने सीधे-सादे पति का अपमान तक करने लगी। आह! एक दिन जो भद्रा बलभद्र के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकी थी, आज वह वसन्त के साथ दुराचरण करने में संलग्न हो गयी है। जो भद्रा अपने पति के वचन वेद-वाक्य के समान पवित्र मानती आ रही थी, वही दुर्व्यसन में पड़ कर दिन-रात्रि कलह करने पर उतारू हो रही है। जो भद्रा अपने भद्र स्वभाव के कारण प्रति की प्रियतमा बनी हुई थी, आज वह अपने रौद्र स्वरूप में किसी को कुछ नहीं समझती। भद्रा के जीवन में इस कलुषित परिवर्तन की घटना पढ़ कर पाठकगण अवश्य उद्विग्न हो उठेंगे? लेकिन हमारा निवेदन है कि कृपया धैर्य धारण कर अगे के घटनाचक्र को पढ़े।

एक दिन संयोग से भद्रा अपने पति के लिए खेत पर भोजन ले कर जा रही थी। मार्ग में उसकी गुणसागर मुनि से भेंट हो गई। मुनि के रूप पर भद्रा मोहित हो गयी। भद्रा का मन चचंल हो उठा, उसने मुनि के साथ दुराचार कहने का दृढ़ संकल्प कर वासना उद्दीपक हाव-भाव दिखला कर अपने मन की व्यथा प्रकट करनी शुरू कर दी। वह निर्लज्ज कहने लगी– 'हे युवक तपस्वी! आप का चन्द्रमा-सा उज्जवल मुखड़ा तथा कामदेव को लजानेवाला आप का सौन्दर्य क्या तपस्या करने योग्य है? आप कठिन तपस्या कर अपने शरीर को क्यों सुखा रहे हैं? जब विधि ने ही यह रूप एवं नवयौवन भोग-उपभोग के लिए दिया है, तब आप संसार त्याग कर योग-साधना क्यों कर रहे हैं? अभी आप की युवा वय संसार के भाग-विलास करने योग्य है, विरक्त होकर कर्तव्य त्याग देने की नहीं। उस मनुष्य का संसार में जीवन ही व्यर्थ है, जिसके हृदय में अपने यौवनकाल में भोग-लालसा की पिपासा स्वभावतया उत्पन्न न हो। अब आप इस समय तप करना त्याग दीजिए तथा भोग-विलास का आनन्द लीजिए। अन्त में मैं आप की सेवा में अपना नम्र निवेदन कर देना चाहती हूँ कि आप किसी सुन्दरी के साथ नगर में रह कर अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कीजिए, क्योंकि जिस जीवन में भोग, लालसा एवं आकंक्षा नहीं—वह जीवन व्यर्थ है।'

मुनिराज का उपदेश

भद्रा की काम-वासना जागृत करनेवाली वाणी सुन कर मुनिराज गुणसागर अपने मन में सोचने लगे कि यह नारी दुराचारिणी ज्ञात होती है? वे जितेन्द्रिय थे, भला भद्रा के चंगुल में कैसे फँसते। मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से भद्रा के सम्बन्ध में सम्पूर्ण घटनाचक्र ज्ञात कर लिया। भद्रा को आसन्न भव्य जान कर उसके उद्धार के लिए उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया– 'हे भद्रे! तुम्हारी उक्ति से ज्ञात होता है कि तुम्हारे हृदय में अब तक काम-वासना अतृप्त है। तुम्हारे हाव-भाव से प्रतीत होता है कि तुम अपनी पवित्रता नष्ट करने पर तुली हुई हो। हे देवी! क्या तुम्हें ज्ञात है कि जिस स्त्री का शील व्रत नष्ट हो जाता है, उसकी क्या दुर्दशा होती है? उसे कितने घोर पापों का कठोर दण्ड भोगना पड़ता है। स्त्रियों के लिए शील व्रत से श्रेष्ठ अन्य कौन-सी पवित्र मर्यादा है? इसके अभाव में नारी का जीवन निष्प्राण शव के समान हो जाता है। जिस स्त्री का शील धर्म नष्ट हो जाता है, उसे कितनी भयङ्कर-भयङ्कर विपदाओं का सामना करना पड़ता है। हे भद्रे! यह स्मरण रखो कि जिस स्त्री ने अपने शील रूपी अमूल्य आभूषण की रखवाली नहीं की, उसे नरक में निश्चित वास करना पड़ता है तथा भयङ्कर दु:खों व महान कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जिस स्त्री का शील व्रत भङ्ग हो जाता है, वह अज्ञानान्धकार में भटक-भटक कर असह्य वेदना सहती है। उसके कुल में कोई भी नामलेवा अथवा पानीदेवा नहीं रहता। सोचो तो भला जिस शील व्रत के

कारण नारी जाति गौरवास्पद समझी जाती है, उसके नष्ट हो जाने से संसार में उसका कितना अपयश फैलता है? क्या तुम नहीं जानती कि अपयश से मृत्यु उत्तम है? जिसका अपयश होता है उसके हृदय में कितनी तीव्र व्यथा होती है? अतः हे भद्रे! यदि तुम नारी-रत्न बनना चाहती हो, तो अपने मन से वासना कर्दम को निकाल फेंको। शील व्रत में अपनी भक्ति समर्पित कर सन्मार्ग की पथिक बन यशस्विनी होवो। बतलाओ तो भद्रे, क्या पतिव्रता नारी के समान पूज्य कोई अन्य स्त्री होती है? कदापि नहीं! जिस स्त्री ने पातिव्रत्य धर्म की रक्षा प्राणोत्सर्ग पर्यन्त भी की है, उसके लिए कोई भी असम्भव कार्य सम्भव हो सकता है। मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ? नारी का सर्वश्रेष्ठ आभूषण पतिव्रत धर्म ही है। एक पतिव्रत के सहारे नारी का स्थान संसार क्या त्रैलोक्य में भी ऊँचा रहता है। अनेकों पतिव्रता स्त्रियों ने अपने अखण्ड पातिव्रत्य के कारण इस भव-सम्बन्ध से मुक्ति प्राप्त कर ली है। अत तुम भी अपने चित्त की चचंलता को त्याग कर शील व्रत की अधिष्ठात्री देवी बनो। आज से प्रतिज्ञा कर लो कि अपने पवित्र मन-मन्दिर में वासना को फटकने तक नहीं दोगी। कुविचारों को जड़मूल से विनष्ट कर दो, तब तुम देखोगी कि संसार की कोई भी विपत्ति तुम्हारे पास आ नहीं सकती। संसार में आवागमन (भव-बन्धन) से मुक्त होकर तुम अक्षय सुख प्राप्त करोगी।'

महामुनि गुणसागर के अमृत समान उपदेश ने भद्रा के चित्त पर अपना अपूर्व चमत्कार दिखलाया। कुछ काल पूर्व जहाँ वह काम-वासना की प्रतिमूर्ति सदृश थी, वहाँ मुनिराज के दिव्य उपदेश के प्रभाव से उसके मन में पवित्रता के भाव का उदय हो गया। अब उसके हर्ष की सीमा नहीं रही। उसने नम्रता के साथ मुनि से जिज्ञासा की–'हे कृपासिन्धु! मेरे अन्तः स्थल की गुप्त आकांक्षाएँ आप ने कैसे जानीं? कुपा कर मेरा संशय निवारण कीजिये।' मुनिराज ने सहज स्वभाव से कहा–'हे भद्रे! इसमें आश्चर्य करने योग्य कोई वस्तु नहीं, यद्यपि किसी ने तुम्हारे सम्बन्ध में मुझ से कुछ नहीं कहा, किन्तु मैं ने अपने अवधिज्ञान से तुम्हारी समस्त मनोभावनायें ज्ञात कर ली हैं। ज्ञान में अनन्त बल है, उसके द्वारा मनुष्य क्या नहीं जान सकता?' मुनि के मुख से इस प्रकार ज्ञान की महिमा का उपदेश सुन कर भद्रा के हृदय में आनन्द की मन्दाकिनी बहने लगी। उसने मुनिराज के आदेशानुसार शील व्रत धारण कर लिया, जिसके पुण्य-प्रताप से सुरेन्द्र की पदवी तक प्राप्त होती है। व्रत धारण कर वह मुनिराज के पवित्र चरणों में नमस्कार कर प्रसन्नता के साथ अपनी दिनचर्या में लग गयी। जब से मुनिराज का सदुपदेश ग्रहण कर भद्रा अपने घर लौट आयी, तब से उसने पाप-मार्ग में प्रवृत्ति पूर्णतया त्याग दी। उसके हृदय की वासना पवित्रता में परिणत हो गयी। पहिले वासना के पङ्क में फँस कर उसने अपना लोक-परलोक नष्ट कर लिया था, लेकिन मुनिराज के उपदेश से जब सत्कर्म में ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया।

जिस वसन्त ने उसे अपनी पाप-वासना की कठपुतली बना लिया था, भद्रा उसकी तरफ देखने में भी पाप समझने लगी। उसने वसन्त से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। वह अब बड़ी निष्ठा के साथ अपने पति बलभद्र की सेवा करने लगी। थोड़े समय पहिले जिसे अपने नेत्रों से देखना भी पसन्द नहीं करती थी, आज उसे वह देखता के समान पूजने लगी। इस प्रकार भद्रा ने जैन-धर्म के ऊपर अपना अटूट श्रद्धान प्रकट कर अपने पति को भी जैनी बना लिया। उसके हृदय में यह दृढ़ श्रद्धान हो गया कि जैन-धर्म की शरण में ही उसका उद्धार होगा। यह दम्पति अब आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगा। पर वसन्त की क्या दशा हुई, इस पर ध्यान दें। जब भद्रा वसन्त के समीप नहीं गयी, तब उसने मन में विचार किया कि भद्रा अब आती ही होगी। प्रतीक्षा करते-करते उसकी व्याकुलता बढ़ने लगी। वह सोचने लगा कि सम्भव है वह अपने गृह-कार्य में फँस गयी हो, जिससे आयी नहीं। कल तो अवश्य ही आयेगी, तब मै उससे आज न आने का कारण पूछूँगा। वसन्त ने वह रात्रि इसी उहापोह में बितायी। करवटें बदलते-बदलते प्रातःकाल का सूर्योदय हो गया।

वह सोचने लगा—'भद्रा कल क्यों नही आयी? अभी तक तो वह एक दिन का भी वियोग नहीं सहती थी? उसके न आने का क्या कारण है? क्या उसके पति ने बाधा उपस्थित कर दी है या वह अस्वस्थ तो नहीं है? लेकिन आज तो वह अवश्य आयेगी।' इस प्रकार प्रतीक्षा करते-करते जब तीन-चार दिवस भी व्यतीत हो गए, तब उसका माथा ठनका। उसके हृदय में भाँति-भाँति की आशङ्कायें होने लगीं कि उसके न आने का कारण क्या है? मेरी ओर से तो उसकी किसी इच्छा पूर्त्ति में विलम्ब हुआ नहीं? उसने जो भी अभिलाषा प्रकट की, तत्काल मैं ने उसकी पूर्ति कर दी। फिर भी उसके नहीं आने का कारण अज्ञात है। इसी सोचविचार में पड़ कर उसने पुनः एक कुट्टनी को भद्रा का कुशलक्षेम ज्ञात करने के लिए भेजा। कुट्टनी जाकर बसन्त के सम्बन्ध में बाते करने लगी, किन्तु भद्रा ने उसकी बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब कुट्टनी वसन्त के पास आ कर भद्रा की विरिक्त का वर्णन कर अपने घर चली गयी।

अब वसन्त समझ गया कि दाल में कुछ काला अवश्य दुष्टिगोचर हो रहा है। जाल में फँसी हुई मछली निकल गयी। भद्रा के वियोग से उसके चित्त में पुनः व्याकुलता, असन्तोष एवं तपन उत्पन्न होने लगी। उसने निश्चय किया मैं भद्रा के पास जा कर क्षमा-याचना कर उसे मना लूँगां सम्भव है कि वह मुझ से रूठी हुई हो या किसी ने मेरी ओर से उसका मन फेर दिया हो। इस प्रकार सोचता हुआ वह निर्लज्ज भद्रा के घर पहुँच गया। वहाँ पर उसने अपना दुखड़ा गाना प्रारम्भ किया, किन्तु भद्रा के ऊपर अब उसका लेशमात्र प्रभाव नहीं पड़ा। वह हिमालय के समान अचल बनी रही। उसके बारम्बार अनुनय-विनय

करने पर भद्रा ने कहा— 'वसन्त! सावधान, यदि तू आज से फिर कभी मेरे घर आया तो तेरी कुशल नहीं। मैं तुझे बतला देना चाहती हूँ कि मैं ने शील व्रत धारण कर लिया है, अतः अब तुम्हारे साथ मैं पाप कर्म कदापि नहीं करूँगी। मैं अपने पति की निष्ठावान पत्नी बन गयी हूँ। तू भी अपनी अर्द्धाङ्गिनी के सङ्ग सन्तोष कर।'

भद्रा की स्पष्टोक्ति वसन्त के हृदय में तीर के समान लगी। इस प्रकार अनुनय-विनय से अपनी इच्छापूर्ण होती हुई न देख कर वह क्रोध में धमकी देने लगा। वह भद्रा तो कोई मिट्टी की माधो थी नहीं, जो धमकी के भय से अपने शील व्रत को त्याग दे। उसने गरज कर कहा— 'नराधम! पापिष्ठ! नरक के कीट! क्या अब भी नहीं चेता तू? स्मरण रख, मैं कभी तेरी धमकी से भयभीत होकर पाप-कर्म में पुनः फँसनेवाली नहीं हूँ। यह निश्चय रख कि मैं प्राण दे दूँगी, किन्तु अपना शील व्रत नहीं छोड़ूँगी। तू मेरे घर से तत्काल चला जा, क्योंकि मैं तेरे समान पापी का मुख तक देखना नहीं चाहती हूँ।' वसन्त हताश होकर चला आया। उसके चित्त में भद्रा के लिए तीव्र लालसा जाग उठी। वह सोचने लगा— 'न जाने किसने भद्रा को बहका कर शील व्रत दिलवा दिया है? अब धमकी से भी काम नहीं चलेगा? क्या करूँ, किस प्रकार उसे अपने वशीभूत करूँ?'

ऐसा विचार कर वह किसी तान्त्रिक की तलाश में उन्मत्त-सा घूमने लगा। संयोग से अयोध्या नगर में महाभीम नामक एक मन्त्रवेता का आगमन हुआ। अयोध्या भर में उसकी मन्त्र-शक्ति की धूम मच गयी। उस समय सब की जिह्वा पर एक ही नाम था, वह था सिद्ध मान्त्रिक महाभीम का। वसन्त भी उस समय मान्त्रिक की बढ़ाई सुन कर उसके पास गया। उसने मान्त्रिक की अहर्निश यथाशक्ति सेवा की। प्रतिदिन षटरस भोजन कराता रहा, जिससे वह मान्त्रिक वसन्त पर प्रसन्न हो गया। स्थिति अनुकूल देख कर वसन्त ने अपनी सारी व्यथा कह सुनायी तथा उससे बहुरूपिणी विद्या-दान की प्रार्थना की। वसन्त की नवधा-भक्ति से सन्तुष्ट हो मान्त्रिक ने उसे बुरूपिणी विद्या साधन का मन्त्र बतला दिया। प्रसन्न हो कर वसन्त एक वन में चला गया, वहाँ उसने कुतप द्वारा मन्त्र की सिद्धि कर ली। अब तो वसन्त के हर्ष का ओर-छोर न रहा। उसने भद्रा को फँसने की योजना बनायी।

एक दिन मध्य रात्रि के समय कुक्कट का रूप धर कर वह बलभद्र के निवास के पास उच्च स्वर में बाँग देने लगा। बलभद्र भी भोर समझ हल-बैल ले कर अपने खेत को चल पड़ा। कुक्कट रूपधरी वसन्त समझ गया कि अपनी अभिलाषा सिद्ध करने का योग्य अवसर आ गया है। वह कुक्कट का रूप त्याग कर बलभद्र का रूप धारण कर भद्रा के शयनागार में प्रविष्ट हुआ। कपटी बलभद्र के पहुँचते ही भद्रा ताड़ गयी कि वह उसका पति नहीं है, वरन् कोई दुष्ट उसके पति का रूप

धर कर उसका शील व्रत भंग करने के कुविचार से आया है। भद्रा उस कपटी को अपशब्द कहने लगी, किन्तु उसने अपशब्द की उपेक्षा कर अपनी विषय-वासना तृप्त करनी चाही। जब भद्रा ने देखा कि इस दुष्ट के चुंगल से रक्षा असम्भव है, तब उसने शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया।

भद्रा के घर में उपद्रव सुन कर पड़ोसी दौड़ कर पहुँच गये। उधर भद्रा का पति बलभद्र भी अपने घर में उपद्रव होने की सूचना पा कर शीघ्र चला आया। घर में आ कर वह क्या देखता है कि ठीक उसके रूप के समान एक अन्य बलभद्र वहाँ उपस्थिति है। इधर जब पड़ोसियों ने दो बलभद्र देखे, तब उनके आश्चर्य की सीमा न रही। सब-के-सब अवाक् रह गये—कैसे निर्णय करें कि इन दोनों में वास्तविक बलभद्र कौन है? बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो गयी। जब वहाँ के लोगों ने देखा कि यहाँ पर सत्यासत्य का निर्णय करना असम्भव है, तब उन लोगों ने राजगृह नगर ले जाकर दोनों बलभद्रों को युवराज अभयकुमार के सम्मुख न्यायार्थ प्रस्तुत किया। अभयकुमार ने दो पुरुषों को एक ही रूप-रङ्ग का देख कर वास्तविक बलभद्र का निर्णय करने की पूरी चेष्टा की, किन्तु सारी प्रक्रिया व्यर्थ रही।

अन्त में अभयकुमार के मस्तिष्क में एक अनोखा उपाय सूझ पड़ा। उसने दोनों बलभद्रों को एक कोठे में बन्दी बना कर उनके सामने एक तुम्बी रख दी। सामने भद्रा को बुला कर बैठाया तथा दोनों से कहा—'तुम दोनों में जो व्यक्ति कोठे के दरवाजे से न निकल कर इस तुम्बी के छेद से निकलेगा, वही वास्तविक बलभद्र माना जायेगा।' वास्तविक बलभद्र के मुख पर तो हवाईयाँ उड़ने लगीं। वह अपने मन में विचार करने लगा—'हाय! मेरी भद्रा हाथ से निकल गई। मैं कोई मन्त्र-तन्त्र तो जानता नहीं, जिससे इस तुम्बी से निकल जाऊँ। हे भगवन्! किस विपत्ति में आ फँसा हूँ। राजकुमार ने कैसी विकट परीक्षा लेने की ठानी है, जिससे मेरा बसा हुआ घर उजड़ना चाहता है। मेरी हरी-भरी फुलवारी नष्ट होना चाहती है। हाय!हाय!! अब मैं क्या करूँ, किससे कहूँ कि यह स्वाँग क्यों हो रहा है? मैं ही वास्तविक बलभद्र हूँ। किन्तु मेरी सच्ची बात कौन मानेगा, जब कि झूठी को प्रमाणित करने के लिए दूसरा बलभद्र उपस्थित है।' इस प्रकार सोच कर असली बलभद्र शीश नत किए हुए मन-मार कर अपने दुर्भाग्य को कोस रहा था। उधर कपटी बलभद्र ने जब अभयकुमार के मुख से यह सुना कि इस तुम्बी के छेद से निकल जानेवाले को ही वास्तविक बलभद्र समझा जायेगा तथा उसे ही भद्रा का पति स्वीकार किया जायेगा, तब भद्रा से पुनः संयोग की बात ने उसके मन में एक अपूर्व उत्साह का संचार कर दिया। प्रसन्न हो कर वह शीघ्रता के साथ तुम्बी के छेद से बाहर निकल आया। उसने अभयकुमार की प्रशंसा कर भद्रा के ऊपर अधिकार जतलाया। पर उपस्थित

समस्त दर्शकों ने एक स्वर से कोलाहल प्रारम्भ कर दिया— 'हे महाबली कुमार! यह कपटी बलभद्र है। वास्तविक बलभद्र तो कोठे के भीतर है।' अभयकुमार ने जिस बुद्धिमता के साथ बलभद्र का निर्णय किया, उससे उनकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। कुमार ने वास्तविक बलभद्र को उसकी पत्नी भद्रा सौंप दी। कपटी बलभद्र को प्रताड़ित कर राज्स से निष्कासित कर दियां इस प्रकार अभयकुमार की बुद्धिमानी से एक निर्दोष मनुष्य के मर्यादा की रक्षा हुई। राजकुमार अभयकुमार भी पूर्ववत सुख-चैन के साथ राजगृह नगर में आनन्दापूर्वक रहते हुए प्रजा-रंजन करते रहे।

अँगूठी कैसे निकली?

एक दिन महाराज श्रेणिक की अँगूठी किसी सूखे कुँए में गिर पड़ी। महाराज ने अभयकुमार को बुला कर उक्त कुँए से बिना किसी बाँस की सहायता से अपनी अँगूठी निकालने की आज्ञा दी। अपने पति की ऐसी कठिन आज्ञा सुन कर अभयकुमार रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। वे तत्काल कुँए के समीप चले आए, एवं उसमें गोबर डलवा दिया। गोबर के सूख जाने पर कुमार ने कुँए को जल से भरवा दिया। कुँआ जल से भरते ही सूख हुआ गोबर ऊपर आकर जल में उतराने लगा। उसी गोबर में महाराज की अँगूठी भी थी। कुमार ने गोबर से अँगूठी निकाल कर महाराज की सेवा में उपस्थित कर दी। कुमार की बुद्धिमता से प्रसन्न होकर महाराज उनकी प्रशंसा करने लगे। राजगृह नगर की समस्त प्रजा की जिह्वा पर कुमार की बुद्धिमता की चर्चा एक स्वर से विराजने लगी।

अब महाराज श्रेणिक भी अभयकुमार पर सदा प्रसन्न रहने लगे। वे जहाँ कहीं वार्तालाप करते, तो उसमें अभयकुमार की बुद्धिमता की चर्चा अवश्य रहती। कुमार के आश्चर्यजनक कार्यों से क्या छोटे एवं क्या बड़े सभी प्रसन्न होकर अपना समय आनन्द के साथ व्यतीत करते थे। अभयकुमार अपनी नीति-निपुणता, निश्छलता एवं सद्भावना के लिए सुविख्यात के वे सूर्य के समान तेजस्वी थे। इस प्रकार अपनी विलक्षण प्रतिभा से कुमार सब का चित्त हर्षित करते हुए सुख के साथ रहने लगे। सच है, उत्तम गुणों के कारण ही संसार में मनुष्य की पूजा होती है। संसार में जो बुद्धिमान होते हैं, उन्हीं का बोलबाला रहता है। बुद्धिमान पुरुष राजसभा में आदर के साथ स्थान पाते हैं, देश-विदेश में बुद्धिमान पुरुषों की कद्र होती है। बुद्धिमान पुरुषों में ही उत्तम-उत्तम गुण, न्याय-नीति एवं सत्य का निवास है। अपने बुद्धिरूपी प्रचण्ड बल से ऐसा मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। नीति वाक्य भी है कि बुद्धिमान ही बलवान होते हैं तथा मूर्खों के समान संसार में कोई निर्बल नहीं। मूर्ख जहाँ जाते हैं, वहाँ दर-दर धक्का खाते हैं। राजा की प्रतिष्ठा उसके राज्य में होती है; धन की प्रतिष्ठा वही तक होती है, जहाँ तक उसकी

पैठ है; किन्तु बुद्धिमान व्यक्ति सर्वत्र पूजे जाते हैं। उत्तम बुद्धि का होना ज्ञानावरणी कर्म का पूर्ण क्षय होने का भी शुभ फल है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य इस विश्व में विख्यात हो जाते हैं। अतः ज्ञान की जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह न्यून है।

अष्टम अध्याय

भरत की वर-प्राप्ति

उसी समय अयोध्या नगरी में भरत नामक एक चतुर चित्रकार निवास करता था। अपने कार्य में वह महारत रखता था। एक दिन भरत ने अपने मन में विचार किया कि यदि ऐसी कोई युक्ति निकले, जिससे तूलिका पकड़ते ही चित्रपट पर आप-से-आप चित्र अङ्कित हो जाए, तो इस प्रकार चित्र-अङ्कन का परिश्रम बचे। ऐसा सोच कर उसने पदमावती देवी की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। उसकी आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने उसके सामने आकर कहा—'वत्स! तेरी क्या अभिलाषा है? प्रसन्नता के साथ वर माँग ले। मैं तेरी मनोकमना पूर्ण करने आयी हूँ।' देवी के इस प्रकार वचन सुन कर भरत अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कहा—'हे माता! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो बस यही वरदान दें कि चित्रपट पर तूलिका लेकर मेरे हाथ रखते ही चित्र आप-से-आप अङ्कित हो जाए। मुझे चित्राङ्कन की आवश्यकता ही न पड़े।' देवी 'तथास्तु' कह कर अन्तर्ध्यान हो गयी। अब भरत ने अपने मन में निश्चय किया कि देवी के वरदान की परीक्षा लेनी चाहिए, जिससे सत्यासत्य का निर्णय हो जाए। उसने एक एकान्त स्थान में जा कर चित्रपट अपने सम्मुख रख लिया। जैसे ही उसने अपनी तूलिका उठा कर चित्रपट पर रखी, त्यों ही मनवांछित चित्र उस पर आप-से-बिना प्रयास के अङ्कित हो गया। अब तो उसके मन में यह दृढ़ धारणा हो गयी कि देवी का वरदान सत्य है। भरत की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसने देश-विदेश में घूम-घूम कर के अपने विलक्षण चित्र-कौशल से असम्भव-से-असम्भव चित्र अनायास अङ्कित कर विपुल यश एवं सम्मान प्राप्त किया है। इस प्रकार चित्रकार भरत अपनी चित्रकला के प्रताप से समस्त भूमण्डल में आनन्द के साथ भ्रमण करता हुआ यश-कीर्ति एवं वैभव का उपभोग करने लगा।

राजसभा में सम्मान

एक समय भ्रमण करता हुआ भरत सिन्धु देश में विशालापुरी नामक नगरी में जा पहुँचा। वहाँ के राजा का नाम चेटक था। उसकी सुभद्रा नाम की पटरानी थी। महारानी सुभद्रा अत्यन्त रूपवती थी। उसकी गजगामिनी-सी चाल, मृग के समान

लोचन, चन्द्रमा-सा मुखड़ा, कृश देहयष्टि तथा उत्तुङ्ग उरोज सभी प्रशंसनीय थे। महाराज चेटक की सात कन्याएँ थीं, जिनके नाम हैं—मनोहरा, मृगावती, वसुप्रभा, प्रभावती, ज्येष्ठा, चेलना एवं चन्दना। वे सभी बहिनें जैन-धर्म में दृढ़ आस्था रखती हुईं अपने उत्तम आचरण से माता-पिता को सदा प्रसन्न रखती थी। विशालापुरी में चित्रकार भरत के आते ही उसकी निपुणता की धूम मच गयी। बात फैलते-फैलते महाराज चेटक के कानों तक जा पहुँची। महाराज ने चित्रकार को अपने दरबार में बुला कर अपनी कन्याओं के चित्र बनाने की आज्ञा दी। महाराज की आज्ञा पाते ही भरत ने राजकुमारियों के सुन्दर चित्र अंकित कर चित्रकला में अपनी निपुणता का परिचय दिया। जिस समय भरत ने महाराज के सम्मुख राजकुमारियों के सुन्दर चित्र रखे, तब उन्हें देखते ही महाराज के मुख से प्रशंसा में साधुवाद निकल पड़ा। महाराज ने भरत के ऊपर अपनी प्रसन्नता प्रकट की तथा उसे यथोचित पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

इस प्रकार राजदरबार में सम्मान प्राप्त कर भरत की महत्वाकांक्षा बढ़ गईं। उसने राजकुमारियों का एक मनोरम समूह चित्र बना कर राजमहल के द्वार पर टाँग दिया। समस्त नागरिक उस चित्र को देखने के लिए राजद्वार पर टूट पड़े। सब की जिह्वा पर एक ही व्यक्ति का नाम था—'भरत'। उसकी चित्रकला में निपुणता पर सब-के-सब लट्टू हो रहे थे। अनेक व्यक्तियों ने उस चित्र की अनुकृति बनवा कर अपने-अपने द्वार पर टाँग ली। उसी समय से जन-सामान्य उस चित्र को 'सात माता' के नाम से पुकारने लगा। कालांतर में भ्रमवश लोग इस सप्त कन्याओं के नाम पर 'सात माता' की पूजा करने लगे। आज भी देश के कई स्थानों में 'सप्तमाता' पूजा की परिपाटी चली आती है। यद्यपि यह सत्य की विडम्बना मात्र ही है, किन्तु 'सात माता' के नाम पर मिथ्यावाद का प्रचार-कार्य एवं पूजा-आरती धड़ल्ले से हो रही है। इस प्रकार भरत द्वारा अङ्कित राजकुमारियों के चित्र से नगर-निवासियों का पर्याप्त मनोरंजन हुआ। इधर राज-दरबार, नगर-निवासियों तथा आस-पास के नगरों में अपनी कीर्ति सुन कर भरत फूला नहीं समाया। उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना था? वह बड़े उल्लास के साथ ऐश्वर्यपूर्व जीवन व्यतीत करने लगा।

महाराज चेटक की प्रथम कन्या मनोहरा का विवाह कुण्डलपुराधीश नाथवंशीय महाराज 'सिद्धार्थ' के साथ हुआ था। दूसरी कन्या मृगावती का विवाह कौशाम्बी के अधिपति नाथवंशीय नृपति 'नाथ' के साथ हुआ था। वसुप्रभा का विवाह हेरकच्छपुर के अधीश्वर सूर्यवंशीय राजा 'दशरथ' के साथ हुआ था तथा चौथी कन्या प्रभावती का विवाह कच्च देश के रोरुकपुरके नरेश 'महाचतुर' के साथ हुआ था। अन्य तीन कन्याओं का विवाह अभी तक नहीं हुआ था। वे अभी कुमारी ही थीं।

भरत के ऊपर महाराज का प्रकोप

एक समय वे तीनों कुमारी राजकन्याएँ अपनी बड़ी भगिनी ज्येष्ठा के नेतृत्व में भरत के पास गयीं। राजकन्या ज्येष्ठा ने चित्रकार भरत से कहा—'मैं तुझे उत्तम चित्रकार तभी मानूगी, जब तुम कुमारी चेलना का निरावरण निर्दोष चित्र अङ्कित कर मुझे दो।' भरत के लिए इस तरह का चित्राङ्कन कोई कठिन कार्य नहीं था, उसे तो देवी का वर प्राप्त था। उसने राजकुमारी की चुनौती सुन कर ज्यों ही चित्रपट पर अपनी तूलिका उठा कर रखी, त्यों ही कुमारी चेलना का निरावरण चित्र ज्यों-का-त्यों अङ्कित हो गया। उसके गुप्ताङ्गों के तिल तक चित्रित हो गए। भरत ने उस चित्र को योग्य रीति से सुसज्जित कर ज्येष्ठा को समर्पित किया। चेलना का सुन्दर चित्र देख कर राजकुमारी ज्येष्ठा अत्यन्त प्रसन्न हुई। चित्र की बारीकियाँ देखते-देखते उसकी दृष्टि चेलना के गुप्ताङ्गों के तिलों पर जा पड़ी, तब उसके होश उड़ गए। उसके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। वह सोचने लगी कि इस चित्रकार ने चेलना का चित्र तो निर्दोष बनाया, किन्तु इसने चेलना के गुप्ताङ्गों के चिन्हों का ज्ञान कैसे प्राप्त किया। इसने इतने गोपनीय रहस्यों को चित्रित कर आश्चर्य में डाल दिया है। किसी अनजान व्यक्ति द्वारा राजपरिवार का रहस्योद्घाटन इस प्रकार से करना गम्भीर अपराधजन्य कार्य है। इसी मध्य एक गुप्तचर ने महाराज के पास जाकर इस सम्बन्ध में समस्त वृत्तांत कह सुनाया। ऐसी लज्जाजनक सूचना प्राप्त कर महाराज चेटक क्रोध से काँपने लगे। वे अपने चित्त में सोचने लगे कि यह दुष्ट चित्रकार देखने में कितना भोलाभाला लगता था, किन्तु निकला बड़ा भरी मायावी। आश्चर्य की बात यह है कि उसने चेलना के गुप्त अङ्गों के चिन्ह बिना देखे कैसे चित्रित कर दिए? पर सच तो यह है कि चंचल स्त्रियों के चरित्र का ज्ञान तो देवता तक भी नहीं लगा सकते, तब मनुष्य कैसे कर सकता है? किसी ने उचित ही कहा है—'स्त्रियोः चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यं देवोनजानाति कुतो मनुष्यः'। उसने बड़ा निंदनीय अपराध किया है। सम्भव है कि उसने मेरी कन्या के साथ व्यभिचार किया हो, अन्यथा किसी भी अपरिचित के लिए कन्या के गुप्ताङ्गों के चिन्हों का ज्ञान होना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। ऐसे कुल में कलङ्क लगाने वाले दुष्ट मनुष्य को सिंधु देश से तत्काल निष्कासित कर देना आवश्यक है। ऐसे पापी को पलभर भी रहने देना पाप को प्रश्रय देना है। अतः उसे इसे नगर से ही नहीं अपने राज्य से भी निष्कासित कर उसके दुष्ट कर्म का दण्ड देना न्यायसंगत है। उधर चित्रकार भरत को भी महाराज के क्रोध का ज्ञान हो गया। अपमानित होने के भय से उसने वहाँ से पलायन में ही अपना हित समझा। इस प्रकार देवी के वरदान के प्रभाव से निर्दोष लेकिन प्रमादी चित्रकार को प्राणरक्षा हेतु पलायन करना पड़ा। तत्काल मार्ग में दीन-हीन अवस्था में अनेक कष्ट उठाते हुए अन्त में राजगृह नगर में पहुँच कर वह निश्चिंत हुआ।

महाराज की चिन्ता कैसे दूर हुई?

राजगृह आपने पर प्रतिशोध की भावना से भरत ने पुनः चेलना का एक मनोहारी चित्रपट बनाया। उसने महाराज श्रेणिक के दरबार में उपस्थित होकर उक्त चित्र भेंट किए। महाराज बड़े ध्यान के साथ उस सुन्दर चित्र को देखने लगे। वे चित्र देखते-देखते इतने तन्मय हो गए कि जिसका वर्णन करना भी सम्भव नहीं है। चित्र की सुन्दरता पर मुग्ध होकर महाराज श्रेणिक मन में विचार करने लगे कि यह अपूर्व रूपसी कौन है? इसकी सघन केशराशि कामी पुरुषों के फँसने के लिए जाल के समान है। रत्नभूषणों से अंलकृत इसका केशविन्यास कृष्णवर्णी भुजङ्गों के समूह के समान दीप्तिमान है। इस रमणी का उन्नत प्रशस्त ललाट नील गगन के समान शोभ पानेवाले चन्द्रमा से युक्त है। इसके सुन्दर भाल पर ॐकार के समान जो रेखा खिंच गयी है, वह कामदेव के तीक्ष्ण शर के समान प्रतीत होती है। इस रमणी की बाँकी चितवन मृग को मन्त्रमुग्ध करनेवाले गायन के समान कामीजनों को विक्षत कर देने की क्षमता रखती है। इसके कर्ण के दोनों कुण्डल इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, मानों सेवा करने के लिए सूर्य तथा चन्द्र उपस्थित हों। इस मृगलोचनी के कमल के समान प्रफुल्लित नेत्र ऐसे सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं, जैसे कामुकों को अपने वश में कर देने वाले मन्त्र हों। इसके आकाशरूपी मुख-गह्वर पर रक्तवर्णी जलद के समान ताम्बूल सेवन की ललाई है। चन्द्र किरण के समान इसकी दन्तावलियाँ हैं तथा जलप्रपात के समान इसकी ध्वनि मधुर प्रतीत होती है। इसकी मधुर वाणी कोयल की कूक को मात करनेवाली है। इसके नाभिरूपी सरोवर में कामरूपी हस्ती क्रीड़ा करने घुस पड़ा है। इसकी रोमावली भ्रमर की पंक्ति सदृश दिखलायी दे रही है। इसका कटि प्रदेश अत्यन्त कृश है। इसके कोमल कर कमल के सौन्दर्य को लज्जित कर रहे हैं। इसके चरणों के नूपुर अत्यन्त मनोहारी दीख रहे हैं। इसके समान भुवनमोहनी स्त्री इस संसार में कोई अन्य होना सम्भव नहीं।

यह देवबाला है या किन्नर कन्या? यह विद्याधर कन्या प्रतीत होती है या रोहिणी? यह सुन्दरी कौन है? कहीं यह कमलदल विहारिणी कमला तो नहीं? क्या यह इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी है या किसी नाग की रूपवती कन्या। क्या साक्षात् कामदेव की पत्नी रति तो नहीं है? मेरी समझ में नहीं आता कि यह सूर्य की स्त्री है, या कोई देवबाला है? इस प्रकार उस चित्र की सुन्दरता पर मुग्ध होकर महाराज श्रेणिक ने चित्रकार भरत को बुलवा कर जिज्ञासा प्रकट की—'हे चतुर चित्रकार! किस राजकन्या का यह चित्र है? उसके पिता कहाँ के नरेश हैं? उनका नाम क्या है? साथ ही यह भी तो बतलाओ कि क्या यह सुन्दरी मुझे प्राप्त हो सकती है? तुम इस सम्बन्ध में समस्त वर्णन निर्भय होकर करो।'

महाराज की इस प्रकार उत्सुकतापूर्ण लालसा देख कर भरत ने करबद्ध निवेदन किया–'हे पृथ्वीनाथ! सिन्धु देश में विशालापुरी नाम की एक समृद्ध नगरी है। वहाँ के राजा चेटक की चेलना नाम की पुत्री का यह सुन्दर चित्र है। उसने यह प्रण किया है कि वह अपनी कन्या का विवाह किसी जैन धर्मावलम्बी राजा के साथ करेगा। हे महाराज! वह जैन-धर्म में बड़ी श्रद्धा रखता है। यदि श्रीमान उसकी कन्या के साथ अपना विवाह करना चाहते हैं, तो स्वयं को उसके अनुकूल ढालने से ही सफलता प्राप्त होगी।' चित्रकार के इस प्रकार नैराश्यपूर्ण वचन सुन कर महाराज अपने चित्त में विचार करने लगे–'उस राजा की प्रतिज्ञा बड़ी कठिन है। जैन न होने के कारण इस सुन्दरी को प्राप्त करना मेरे लिए एक विषम समस्या है। यदि मैं चाहूँ तो युद्ध कर के इसके साथ अपना विवाह कर सकता हूँ। किन्तु मेरा ऐसा करना अन्यायपूर्ण कार्य समझा जायेगा, न्याय-नीति विरुद्ध ही माना जायेगा; किन्तु इसके साथ विवाह करना मेरे लिए अब अनिवार्य है। इस सुन्दरी के सदृश अन्य कोई नारी रत्न अब दृष्टिगोचर नहीं होता। मैं क्या करूँ, कौन-सा उपाय करूँ, जिससे इस सुन्दरी से संयोग हो। 'साँप मरे लाठी बचे', 'हर्र लगे न फिटकरी रङ्ग भी चोखा होय', युक्तियाँ चरितार्थ होनी चाहिए।' ऐसा चित्त में विचार कर महाराज संज्ञाहीन हो गए। उनके नेत्रों के सम्मूख अन्धकार छा गया। वे 'हाय! चेलना' कह कर मूर्च्छित हो गए। उनका जीवन उसके बिना भार-स्वरुप बन गया। इस प्रकार महाराज मन मसोस कर हताश हो गए। अपने पूज्य पिता की चिन्ताजनक अवस्था देख कर अभयकुमार तत्काल महाराज के पास जा पहुँचा। वह विनम्र शब्दों में कहने लगा–'हे पूज्य तात! आप के ललाट पर गहरी चिन्ता की स्पष्ट झलक दिखलायी पड़ रही है। मेरी समझ में नहीं आता कि आप क्यों द्विविधाग्रस्त हो रहे हैं? कृपा कर मुझसे अपनी चिन्ता का कारण कहिए। जब मैं अपना ध्यान आप की सेना, प्रजा, परिवार, कोष एवं शत्रुओं की तरफ केन्द्रित करता हूँ, तब मुझे यही ज्ञात होता है कि सर्वत्र शान्ति का निश्चिन्त वातावरण छाया हुआ है। कहीं से भी उपद्रव के लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। आप अजात-शत्रु हो रहे हैं, आप की छत्रछाया में चतुर्दिक शान्ति, सुशासन, न्याय-नीति एवं सुख-समृद्धि की स्थापना हो गई है। समस्त प्रजा आप के प्रति आदर के साथ राजभक्ति में संलग्न है। राजमहल से ले कर किसान की झोपड़ी तक में आप के प्रति अखण्ड प्रेम, श्रद्धा एवं आदर के भाव अनायास पाए जाते हैं। तब हे तात! मेरी तुच्छ बुद्धि में यह समझ नहीं आता कि आप क्यों चिन्ताग्रस्त होकर स्वयम् प्रजा तथा परिवार के लिए व्याकुलता का निमित्त बन रहे हैं? यदि हम लोगों के द्वारा आप की सेवा में किसी प्रकार की त्रुटि अथवा बाधा खड़ी हो गयी हो, तो आज्ञा दीजिए आप का यह पुत्र उसके निवारण हेतु बद्धपरिकर है। कारण आप के चिन्तामग्न होने से सर्वत्र उदासी व्याप्त हो रही है। साथ ही द्विविधाग्रस्तता के कारण आप के शरीर, मन तथा मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। अतः आप निःसंकोच मुझे से

अपने हृदय की व्यथा कहिए। मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि यथासाध्य आप की मनोव्यथा दूर करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर के भी आप को निश्चित बना देने के लिए प्रस्तुत हूँ।

महाराज श्रेणिक ने अभयकुमार की नम्रता, कार्य-तत्परता एवं आज्ञाकारिता देख कर उसके सामने चेलना का चित्र रखते हुए कहा–'प्रिय पुत्र इस चित्र ने मेरी ऐसी दुर्दशा की है। जब से यह चित्र मेरी दृष्टि में पड़ा है, तब से इस रूपसी के लिए मेरे हृदय में तीव्र व्याकुलता उत्पन्न हो गयी है। वस्तु-स्थिति तो यह है कि इसके वियोग में मेरा जीवन भी अब दुष्कर हो गया है। मेरा विस्तृत साम्राज्य इसके बिना तुच्छ है। इसके पिता ने जैन मतावलम्बी राजा के साथ विवाह का निश्चय किया है। अतः मेरी चिन्ता का कारण यही सुन्दरी बन रही है। यदि तुम से सम्भव हो सके तो प्रयास करो, अन्यथा इसके बिना मेरा जीवन निस्सार एवं प्राणरहित ही समझो।' पिता की नैराश्यपूर्ण कातर वाणी सुन कर अभयकुमार ने आश्वासन देते हुए कहा–'हे पूज्य तात! आप चिन्ता न करें। मैं आप का मनोरथ सिद्ध करने के लिए जा रहा हूँ। आप निश्चय समझे कि आप की मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।' अभयकुमार के इस प्रकार आश्वासन देने पर महाराज श्रेणिक कुछ शान्त हुए।

अभयकुमार का उद्योग

अभयकुमार ने नगर के समस्त जैन मतावलम्बी सेठों को बुला कर अपने साथ चलने की आज्ञा दी। सेठगण राजकुमार के साथ गमन हेतु तत्काल तप्पर हो गए। अभयकुमार ने राजकोष से बहुमूल्य रत्न, जवाहरात, मणि तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ लेकर सेठों के साथ सिन्धु देश के लिए प्रस्थान कर दिया। सच है वैभवशाली मनुष्य मायाचार के फेर में पड़ कर महान-से-महान अनर्थ कर बैठते हैं। संसार में आजकल जितने भी अनर्थ हो रहे हैं, उनका प्रधान कारण मायाचार ही है। इस प्रकार अपने साथ विपुल वैभव-सामग्री लेकर व्यापारी का वेष धर कर व्यवसाय करने का कपट करता हुआ, अभयकुमार अपने नगर के अग्रणी जैन-मतावलम्बी सेठों को लेकर मार्ग में पड़ने वाले प्रमुख नगरों में क्रय-विक्रय करते हुए बढ़ा चला।

शीघ्र ही अभयकुमार भी उन सेठों के साथ भगवान की पूजा करने लगा। वह तीनों काल सामायिक तथा पन्चपरमेष्ठी स्तोत्र का पाठ करने लगा। उसको इस प्रकार धर्म-कर्म में संलग्न देख कर उसके देशवासी सेठ भी उसके वास्तविक उद्देश्य से सर्वथा अनभिज्ञ रहे। इस प्रकार अभयकुमार जैनधर्म में आस्थावान के रूप में प्रसिद्ध होकर समस्त मार्ग में धर्म-प्रचार करते हुए विशाला नगरी पहुँच गया। उस नगरी के एक उद्यान में उसके सार्थवाह ने अपना शिविर स्थापित किया। वहाँ बड़ी धूमधाम से जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर वे सब जैन-धर्म का माहात्म्य प्रदर्शित करने लगे। उद्यान में कुछ दिवस पर्यन्त

विश्राम कर अभयकुमार बहुमूल्य रत्नों को उपहार में लेकर संगी जैनी सेठों के साथ महाराज चेटक की राजसभा में उपस्थित हुआ। कुमार ने विनम्रता के साथ महाराज चेटक को नमस्कार कर अमूल्य रत्न भेंट किए। स्वयं को जैन-धर्मावलम्बी प्रकट कर कुमार ने मधुर सम्भाषण करते हुए कहा—'हे पृथ्वीनाथ! हम लोग जौहरी हैं। अनेक देश-विदेशों में भ्रमण करते हुए आप के नगर में व्यापार-वाणिज्य हेतु आये हैं। अतः हे कृपालु! यदि आप अपने विशाल राजमहल के समीप में हमारे प्रवास के लिए कोई भवन का प्रबन्ध करा देते, तो हम वणिकों का बड़ा उपकार होता। हम यहाँ के लिए सर्वथा अनजान व्यापारी हैं, अतः आशा करते हैं कि आप हमारी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।'

कुमार की वाक्पटुता, बुद्धिमत्ता एवं प्रेमपूर्ण मिलनसारिता ने महाराज चेटक का मन मुग्ध कर लिया। महाराज ने कुमार के वाग्जाल में फँस कर प्रसन्न होकर बिना सोचे-समझे उसके रहने के लिए अपने राजमहल के पास एक भवन प्रदान किया। महाराज ने दरबार में भी उनका यथोचित सत्कार किया। इस प्रकार कुमार ने अपने निर्दिष्ट प्रयास के प्रथम चरण में सफलता प्राप्त कर महाराज के महल के समीप में निवास करना प्रारम्भ कर दिया।

अभयकुमार जब से उस भवन में रहने लगा, तब से उस स्थान की कायापलट ही हो गयी। कुमार ने उसी भवन में एक मनोहर चैत्यालय का निर्माण करा कर उसमें नियम के साथ प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की पूजास्तुति करनी आरम्भ कर दी। चैत्यालय में प्रतिदिन उत्तम-उत्तम वाद्यों की सुमधुर ध्वनि से वहाँ के समस्त वातावरण में मानो धर्मामृत की वर्षा होने लगी। जिनेन्द्र की अभयर्थना-स्तुति के लिए वहाँ प्रतिदिन नृत्य, भजन एवं त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्रों का वाचन होने लगा। इस पुण्य-कार्य में अभयकुमार स्वयं उत्साह के साथ भाग लेता था। सच पूछिये तो उस समय उनके जीवन का अधिकांश भाग धर्माराधन में ही व्यतीत होता था। कुमार के भवन के समीप ही राजमहल था। उनके वहाँ रहने का उद्देश्य यही था कि राजभवन की महिलाओं के ऊपर उनकी धार्मिकता का प्रभाव पड़े। राजमहल की महिलायें दैनिक पूजा-पाठ को भक्ति के साथ सुनती तथा कुमार की धर्मवत्सलता की प्रशंसा करती। फलतः महाराज चेटक की कन्याओं के हृदय में कुमार का चैत्यालय देखने की तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हुई। कुमार की भक्ति का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। वे समझने लगीं कि कुमार बड़े पहुँचे हुए भक्त प्रतीत होते हैं। एक दिन अपनी सखियों के साथ वे कुमार के चैत्यालय में दर्शनार्थ पहुँच गयीं। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि कुमार भगवान की भक्ति में बड़े मनोयोग से तल्लीन हैं। राजकन्या ज्येष्ठा ने उससे कहा—'देव-शास्त्र-गुरु में आप की अनन्य श्रद्धा की जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह स्वल्प है। सत्य तो यह है कि आप के समान ज्ञानी भक्त हमें इस भूमण्डल पर कोई अन्य दृष्टिगोचर नहीं होता। जिस प्रकार आप का रूप प्रशंसा के योग्य है, उसी प्रकार आप के ज्ञान

का चमत्कार अभिनन्दनीय है। क्या आप कृपा कर बतला सकते हैं कि आप किस देश के निवासी हैं? आप के देश में कौन राजा राज्य करता है? उसकी उम्र कितनी है? वह किस धर्म का पालन करनेवाला है? उसका कुल कैसा है? राज्य विभूति किस प्रकार है तथा उनमें क्या-क्या गुण हैं?' राजकुमारियों से इस प्रकार की जिज्ञासा सुन कर कुमार अपने मन में बहुत प्रसन्न हुआ। वह समझ गया कि अब उसका कार्य अवश्य सफलीभूत हो जायेगा।

इस प्रकार विचार कर अपनी स्वाभाविक मधुर वाणी में कुमार ने कहा—'हे महीषियों! जहाँ उपवनों एवं उद्यानों की अनुपम प्राकृतिक शोभा पर पथिकों का मन अनायास आकर्षित हो जाता है, जहाँ विशाल जिन-मन्दिरों का विशाल समूह स्थापित है, जो यति-मुनियों का अनुपमेय विहार-स्थान है, उसी मगध देश के राजगृह नामक सुप्रसिद्ध नगर के रहने वाले हम व्यापारी हैं। हे देवियों उस राजगृह नगर की शोभा का वर्णन करना असम्भव-सा है। किन्तु आप सब के अनुरोध पर मैं उसका यत्किन्चित वर्णन करता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनें—राजगृह नगर में ऐसे अनेक जगत्-विख्यात श्रेष्ठियों की गगनचुम्बी विशाल अट्टालिकाएँ हैं, जो सूर्य के प्रखर तेज के समान दीप्तमान हो रही हैं। उन विशाल भवनों के शिखर अपनी ऊँचाई में मानों आकाश से होड़ ले रहे हैं। जहाँ जिनेन्द्र भगवान के इतने भव्य-भव्य मन्दिर हैं कि उनकी टक्कर का अन्य इस संसार में ढूँढने से भी मिलने का नहीं है। वहाँ के नागरिक सदा प्रसन्न चित्त रहते हैं एवं भाँति-भाँति के भोगों में अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करते हैं। हम सभी वणिक उसी प्रसिद्ध राजगृह के नागरिक हैं। राजगृह नगराधिपति महाराज श्रेणिक हैं, जिनके न्यायपूर्ण शासन से प्रजा सदा प्रसन्न रहती है। वे महाराज जैन धर्मावलम्बी हैं। अभी उनकी आयु भी अधिक नहीं है। वे सकल गुणों के आगार हैं। हे राजकुमारियों! हम ने वाणिज्य-व्यपार हेतु समस्त भूमण्डल का भ्रमण किया है, किन्तु महाराज श्रेणिक के समान धर्मवत्सल, गुणग्राही, तेजस्वी, रूपवान तथा ऐश्वर्यशाली संसार के किसी स्थान पर नहीं देखा। वे अजातशत्रु हैं। उनके समान धन-वैभव किसी के पास नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि उनका राजकोष कुबेर के समान अक्षय है। उनके सैन्यबल की संख्या, शक्ति एवं बल-विक्रम का हम कहाँ तक वर्णन करें? वे समस्त भूमण्डल में अद्वितीय, अनुपमेय एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न हैं। अतः उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह स्वल्प है।'

इस कुशलता से अभयकुमार ने अपने पूज्य पिता महाराज श्रेणिक के विषय में वर्णन किया कि वे सभी राजकन्यायें उनके गुणों पर मोहित होकर अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए उद्यत हो गयीं। उनके यशो वर्णन से राजकन्याओं के हृदय में उनको अपने वर के रूप में प्राप्त करने के लिए तीव्र उत्कण्ठा होने लगी। उन्होंने विनीत शब्दों में कहा—'हे वणिक! कोई ऐसा प्रयत्न कीजिए, जिसके फलस्वरूप आपके नृपति ही हमारे पति बने? न जाने हमारा विवाह किसके साथ होगा? यदि आप

कृपा कर हमें मगधाधिपति के पास ले चलें, तो वे हमारा वरण कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनको पति रूप में प्राप्त करने की कल्पना तक करना हमारे लिए कठिन है। हम आप को विश्वास दिलाती हैं कि उनके वियोग में अब संसार में हमारा जीवन भार-स्वरूप अर्थात् कष्टमय बन जायेगा। यदि महाराज श्रेणिक पति-रूप में हमे प्राप्त नही होंगे, तो यह जीवन हमारे लिए घोर दु:खमय बन जायेगा। हमें आप के ऊपर पूर्ण विश्वास है। हम आशा करती हैं कि आप के द्वारा हमारी मनोकामना अवश्य सफलीभूत होगी। इस प्रकार आप के उद्योग से हमारा जीवन आनन्दमय बन जायेगा। आप भी इसके लिए महान यश के भागी बनेंगे।' आत्म-निवेदन करने के पश्चात् वे राजकुमारियाँ प्रतिक्रिया निरीक्षण हेतु अभयकुमार की ओर देखने लगीं। फलस्वरूप अभयकुमार के हृदय में भी दृढ़ निश्चय हो गया कि उसे सफलता अवश्य मिलेगी। अब तो उसके हर्ष की कोई सीमा नहीं रही। उसने राजकुमारियों को कौशलपूर्वक धीरज बँधाया तथा उन्हें आश्वासन दिया—'हे राजकन्याओं! आप धीरज रखें। मैं आप की मनोकामना पूर्ति के लिए तत्काल उद्योग प्रारम्भ करता हूँ।' कुमार के मधुर आश्वाशन से राजकन्याओं को हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ। वे अपने मन में फूली नहीं समायीं।

चेलना कैसे आयी?

अभयकुमार ने अपने भवन में राजमहल तक भूमि के गर्भ में एक सुरङ्ग तैयार करवायी। फिर उसने राजकन्याओं को इसी सुरङ्ग द्वारा आने के लिए गुप्त रीति से सूचना दी। राजकुमारियाँ उसकी योजना सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं, क्योंकि उनकी प्रबल इच्छा थी कि येन-केन-प्रकारेण उनका मनोरथ सिद्ध हो जाए। अतः वे तीनों सुरङ्ग के समीप प्रवेश करने के लिए पहुँच गयीं। सुरङ्ग में वे ज्यों ही प्रविष्ट हुई, त्यों ही घोर अन्धकार के कारण ज्येष्ठा तथा चन्दना आगे बढ़ने से ठिठक गयी। इस राह से जाने में वे हिचकिचाहट करने लगीं। शीघ्र ही उनकी विचाारधारा भी परिवर्तित हो गयी एवं वे बहाना कर राजमहल की ओर लौट पड़ी। अब शेष रह गई चेलना। अब अभयकुमार ने देखा कि तीन राजकन्याओं में से दो तो लौट गई हैं, तब उसने चेलना का हाथ पकड़ कर अपने रथ पर बैठा कर द्रुतगति से प्रस्थान कर दिया। इधर राजकुमारी चेलना के हृदय में माता-पिता के वियोग की आशङ्का से गम्भीर दु:ख हुआ। वह फूट-फूट कर विलाप करने लगी। अभयकुमार ने उसे सांत्वना बँधा कर शान्त किया। इस प्रकार अल्पावधि में अभयकुमार चेलना के साथ मगध देश में पहुँच गए।

जब महाराज श्रेणिक को दूत के द्वारा अभयकुमार तथा चेलना के आगमन का समाचार मिला, तब बड़ी धूमधाम से आगे बढ़ कर वे कुमार से मिले। अभयकुमार के मुख से इस अभियान का समस्त समाचार सुन कर महाराज फूले नहीं समाये।

उन्होंने बड़े प्रेम के साथ कुमार को गले लगाया तथा उनके सार्थवाह के अन्य सेठों का आत्मीयतापूर्वक सत्कार किया। चेलना के रूप-लावण्य को देख कर महाराज श्रेणिक दरिद्र की निधि के समान अपूर्व आनन्द का अनुभव किया। अब उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। चेलना के प्रथम दर्शन से ही उनके हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द का उद्रेक हुआ? उस समय महाराज के आनन्द का वर्णन करना किसी भी लेखक की उपयुक्त क्षमता से परे है अर्थात् महाराज के मानसिक उल्लास का उल्लेख करना कठिन ही नहीं असम्भव कार्य तुल्य है। इस प्रकार वाद्य-वादन के साथ चेलना राजगृह नगर में प्रविष्ट हुई। सेठ इन्द्रदत्त के निवास में उसका प्रवेश कराया गया।

शुभ मुहुर्त्त पर बड़ी धूमधाम से महाराज श्रेणिक के साथ चेलना का विवाह सम्पन्न हुआ। महाराज ने चेलना के साथ विवाह कर अपना जीवन सार्थक माना। उन्होंने पट्टरानी का पद दे कर उसके साथ भोग-विलासमय जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। सच है जिसके द्वारा मनुष्य की मनोकामना पूर्ण होती है, उसके लिए वह आराध्य देवी बन जाती है। चेलना को पा कर महाराज धन्य हो गए। उनके लिए चेलना ही सब कुछ थी। उसकी गजगामिनी-सी चाल, चन्द्रमा के समान मुखड़ा तथा उसके चातुर्यपूर्ण वाग्जाल अब महाराज के लिए मनोरंजन का एकमेव साधन बन गए। इस प्रकार रानी चेलना के साथ अहर्निश सहवास ने महाराज को मदमस्त बना दिया। वे अपने जीवन के श्वास-प्रतिश्वास में चेलना की छवि की झलक पाने लगे। महाराज श्रेणिक का प्रत्येक कार्य चेलना को प्रसन्न करने की दृष्टि से होने लगा। वे दोनों इन्द्र-इन्द्राणी के सदृश समस्त लौकिक सुखों का अनुभव करने लगे। सच पूछिए तो यही लगता था कि उनकी देह भले ही पृथक् हों, पर आत्मा उनमें एक ही निवास कर रही है। अर्थात् परस्पर उनके मन एवं मस्तिष्क इस प्रकार एकरस हो गए थे कि जिसे देख कर लोग अपने दाँतों तले अँगुली दबा कर कहते थे कि यह युगल दम्पत्ति संसार में अनुपम हैं।

नव-दम्पति का अखण्ड प्रेम देख कर सब के मुख से उनके पुण्य कार्यों की प्रशंसा होने लगती थी। प्रजा से लेकर सामन्त तक सभी एक स्वर में कहते हैं कि महाराज श्रेणिक तथा महारानी चेलना का भाग्य स्तुत्य है। लेकिन पाठकों भाग्य-चक्र के आगे किसी की नहीं चलती। उसके आगे सभी को निरूपाय होकर अपना मस्तक झुकाना पड़ता है। विधि का अपूर्व संयोग देखिए, उसके कारण ही चेलना के साथ महाराज का विवाह हुआ। राजगृह नगर से राजा चेटक की नगरी में व्यापारी का वेश बना कर अभयकुमार का चेलना के लिए जाना उसी भाग्य-चक्र का ज्वलन्त प्रमाण है। उसके द्वारा इस सृष्टि में अहर्निश उलट-फेर मचा-सा रहता है। उसके इङ्गित मात्र से इस धरातल पर महान्-से-महान् घटनायें होती रहती हैं, उसके द्वारा ही अभूतपूर्व घटित होता है। उसकी महिमा का वर्णन करना असम्भव है। अतः मनुष्य के लिए उचित है कि वह कर्मवादी बन कर

भी अपने भाग्य देवता की अवश्य पूजा करें। भाग्य से सफलता तथा असफलता दोनों मिलती हैं। यदि भाग्य को ही सृष्टि का प्रधान आधारभूत स्तम्भ मान लिए जाए, तो इसमें तनिक भी अतिश्योक्ति नहीं। भाग्य की शक्ति अनन्त एवं अतुलनीय है। सौभाग्य एवं दुर्भाग्य उसके दो पहलू हैं। एक के उदित होने पर जीवन में मानो सुख-आनन्द की बहार बहती है, तो दूसरे के आगमन के नरकादि तुल्य कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अतः सुख-शान्ति प्रदायक भाग्य देवता की आराधना करना प्रत्येक मानव का प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए।

नवम् अध्याय

सकल कर्म से रहित धन्य वे पूजनीय कहलाते हैं। सम्यग्दर्शनादि रत्नों से, महाभाग बन जाते हैं।।
सिद्धश्री भगवान हमारी रक्षा करें यही विनय है। जिनकी कृपा कोर रहने से, सदा स्वतन्त्र हमारी जय है।।

महारानी चेलना का विषाद

प्रिय पाठकों! महारानी चेलना के आनन्दपूर्ण विलासमय जीवन में एक महा परिवर्तन घटित हो गया। जब उसने देखा कि राजमहल में पवित्र जैन-धर्म की पूजा की तो कौन कहे, कोई नाम तक लेनेवाला तक नहीं है; तब उसका ह्रदय विषाद से भर उठा। उसकी अन्तरात्मा तक हाहाकार कर उठी। उसकी निर्मल विवेक बुद्धि काँप उठी। वह इसी शोक मे चिन्ताग्रस्त रहने लगी। फलस्वरूप उसके विषाद की प्रगाढ़ कालिमा से उसका स्वाङ्ग तक मलीन प्रतीत होने लगा। वह सोचने लगी– 'हाय! जिस स्थान में हिंसा-युक्त तीन मूढ़ता के साथ मिथ्याज्ञान की पूजा हो रही है, आठ प्रकार के अभिमान सहित लोक-परलोक में दु:ख प्रदान करने वाले बौर्द्ध-धर्म का बोलबाला है, वहाँ सुख-शान्ति की छाया की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। हाय! मैं ने अभयकुमार का क्या बिगाड़ा था, जिसने छल-प्रपन्च द्वारा धर्माचरण की मृग' मरीचिका दिखला कर मेरे समान निष्कपट ह्रदय को अपने वाग्जाल में फँसाया। जहाँ जैन-धर्म का स्मरण तक नहीं होता, वहीं उसकी पूजा कैसी? जहाँ जैन-धर्म का वास नहीं, भला उसे उत्तम स्थान कैसे कहेंगे? वह तो पक्षियों के नीड़ के समान है। महाराज श्रेणिक के अपार धन-वैभव की चकाचौंध में अपना जीवन गँवाने से तो परलोक में अन्त में घोर दु:ख की सहना पड़ेगा। सच है कि इस राजमहल में मुझे समस्त सुख भोगने को मिलते हैं, किन्तु इस विलासिता का अन्तिम परिणाम भयङ्कर सर्प के दंश के समान घातक सिद्ध होगा। भोग का जीवन क्षणिक सुखदायी होता है, किन्तु अन्त में उससे नरकादि की प्राप्ति की होती है। तब वहाँ अनेक विपत्तियों तथा भयङ्कर वेदनाओं को सहन करना पड़ेगा।

संसार में निर्धन होना अच्छा है, किन्तु चक्रवर्ती का विशाल साम्राज्य पा कर भी यदि धर्म रहित जीवन व्यतीत करना पड़े तो सर्वथा हेय है। लोग कहते हैं कि संसार में वैधव्य का जीवन व्यतीत करना सब से कठोर दण्ड है। किन्तु सच पूछा जाए, तो वैधव्य उतना दु:खदायी नहीं है, जितना लोग समझते हैं। इसका कारण यह है कि सन्मार्ग पर जानेवाले पति की यदि मृत्यु हो जाए, तो उस दशा में स्त्री का वैधव्य-जीवन अवश्य ही शोकप्रद है, किन्तु यदि पति का जीवन कुमार्ग में व्यतीत होता हो तथा वह कदाचित मर भी जाए, तो उसकी स्त्री का वैधव्य-जीवन हर प्रकार से हेय कैसे हो सकता है? हाय! भयङ्कर-से भयङ्कर कष्ट सहन करना उत्तम है, संसार में सन्तान-रहित होकर बाँझ के नाम से सम्बोधित होना भी श्रेष्ठ है, जलती ज्वाला में विदग्ध होकर भस्मीभूत हो जाना श्रेयस्कर है, विष का पान कर प्राणत्याग भी हितकर है, भयङ्कर विषैले सर्प के दंशाघात से मृत्यु वरण कर लेना श्रलाघनीय है, परन्तु जैन-धर्म रहित जीवन क्षण-मात्र भी कदापि व्यतीत नहीं करना चाहिए। जैन-धर्म रहित जीवन-यापन की अपेक्षा तो पहाड़ की ऊँची चोटी से कूद कर अथवा लहराते हुए समुद्र के गर्भ में डूब कर अथवा खड्ग के भीषण आघात से मृत्यु हो जाना मैं श्रेयस्कर समझती हूँ। मुझे जैन-धर्म से रहित जीवन कदापि स्वीकार नहीं। यद्यपि स्त्री के लिए पति का पद देव के तुल्य माना जाता है, फिर भी वह कितनी भी गुणज्ञ हो, यदि जैन-धर्म में दीक्षित न हो, तो उसके साथ रहने में स्त्री को पाप का भागी बनना पड़ता है। हाय, हाय! मैं ने अपने पूर्व जन्म में कौन-सा पाप किया था, जिसके कारण इस जन्म में मुझे जैन धर्म रहित जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है। हे भगवन्! यहाँ आ कर मैं ने अपना लोक-परलोक दोनों नष्ट कर लिया। परम हितकारी जैन-धर्म से मेरा सम्बन्ध ही विलग हो गया है। हे प्रभो! यह मुझे किस जन्म के पाप का दण्ड दिया है। हे अभयकुमार! तुम ने वास्तव में मुझे सरीखी भोलीभाली नारी के साथ घोर विश्वासघात किया है। हाय! मेरा शेष जीवन नारकीय बना दिया है। स्वर्गलोक तुल्य जन्मभूमि से लाकर मुझे कहाँ इस नरक के कुंड में ला पटका है? क्या तुम्हारे लिए इस प्रकार का गर्हित कार्य करना उचित था? ग्रथों में स्त्रियों को 'अबला' कहा गया है। आज मेरे सामने उस कथन की सत्यता स्वयंसिद्ध हो गयी। हे भगवन्! यथार्थ में हम स्त्रियाँ अबला ही हैं, जो दूसरे लोगों की दिखलाई मृग-मरीचिका से सहज में ही भटक जाती हैं एवं अन्त में ठोकर खा कर पछताती हैं। लेकिन 'अब पछताए होता क्या, जब चिड़िया चुग गयी खेत' वाली लोकोक्ति मेरे साथ भी लागू होती है। मैं समझ नहीं पाती हूँ कि जो व्यक्ति अपने कपट आचरण से किसी निर्दोष को अपने चंगुल में फँसा लेते हैं, उनका इस भवसागर में कैसे उद्धार हो सकेगा? किसी अनजान व्यक्ति को पथभ्रष्ट करने वाले की गणना महापापी के ही रूप में होगी।'

इस प्रकार सोच-विचार में निमग्न होकर वह शोकसागर में डूबने-उतराने लगी। उसके ह्रदय का धैर्य-रूपी बाँध भग्न

हो गया। उनके अन्तस्तल में असीम वेदना की अनुभूति होने लगी। फलस्वरूप उसने करुण क्रन्दन प्रारम्भ कर दिया। महारानी चेलना की ऐसी शोचनीय अवस्था देख कर उसकी समस्त सखियाँ एकदम भयभीत हो गयीं। उनकी समझ में यह रहस्य नहीं आया कि महारानी ने क्यों एकाएक मौन धारण कर लिया है? वस्तुतः महारानी चेलना ने सब से सम्भाषण त्याग कर के जिनेन्द्र भगवान के नाम का स्मरण करना प्रारम्भ कर अपने गहन शोक को शान्त करने का उद्योग किया था, किन्तु इस प्रयास में अनायास ही माता-पिता की स्नेहमयी स्मृति उसके मानस-पटल पर अङ्कित हो आयी।

जब महाराज श्रेणिक ने चेलना के शोकमग्न होने का समाचार सुना, तब उनका धीरज समाप्त हो गया। वे यथाशीघ्र रानी चेलना के महल में आए। उसकी ऐसी शोकपूर्ण अवस्था देखकर महाराज ने मधुर स्वर में जिज्ञासा व्यक्त की—'हे प्रियतमे! तुम्हारी ऐसी शोकपूर्ण देशा देख कर मेरे हृदय में अपार चिन्ता हो रही है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी व्याकुलता का कारण क्या है? आज तक तुम्हारे मुखमण्डल पर कभी उदासी का चिन्ह तक नहीं देखा था, किन्तु अब तुम्हे क्या हो गया है? प्रिये! तुम ने सामान्य शिष्टाचार पालन तक विस्मृत कर किया है। मेरे आगमन पर तुम सदा प्रसन्न चित्त से मेरा स्वागत-सत्कार करती थीं। आज मैं उल्टी गङ्गा बहती देख रहा हूँ। प्रिये! अब विलम्ब न करो—शीघ्र बताओ। किसी ने तुम्हारी अवज्ञा अथवा उपेक्षा तो नहीं की, असावधीनवश कोई अपराध तो नहीं घट गया? मैंने आज तक तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया है। यदि अनजान में मूझ से तुम्हारा उपहास हो गया हो, तो प्राणप्रिये उसे विस्मृत कर क्षमादान दो। तुम मौन क्यों हो? यदि इस राजमहल के किसी सदस्य ने तुम्हारा अपमान किया हो, तो तत्काल इङ्गित मात्र कर दो कि उसे क्या दण्ड दूँ? तुम्हारी ऐसी मलीन अवस्था देख कर मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ। वल्लभे! यथार्थ में तुझे मैं अपना आधा अङ्ग ही समझता हूँ, तुम्हारे शोक के कारण मैं अधमरा हो रहा हूँ। मेरे जीवन की एकमात्र अधिष्ठात्री देवी तुम ही हो। आज तुम्हारी ऐसी कतार अवस्था देख कर मैं व्याकुल हो रहा हूँ। यह विशाल राज्य-वैभव मुझे निष्फल लग रहे हैं। तुम ही मेरे जीवन की आधार हो। हे चन्द्रमुखी! मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपने हृदय के शोक-सन्ताप को त्याग कर मेरी उद्विग्नता मिटाओ। हे महादेवी! अपनी प्रसन्नता का वरदान प्रदान कर इस याचक को सन्तुष्ट करो।'

महाराज का बारम्बार आग्रह तथा व्याकुल वाणी सुन कर चेलना ने कहा—'प्राणनाथ! मेरे शोक ग्रस्त होने में न तो आप दोषी हैं, न ही आप के राजप्रसाद का अन्य कोई सदस्य। सच पूछिए तो मेरे सन्ताप का एकमात्र कारण जैन-धर्म से मेरा सम्बन्ध विच्छेद हो जाना है। जब से मैं इस विशाल राजमहल में आयी हूँ, तब से ही यहाँ की सत्य धर्म से विपरीत दशा देख कर क्षुब्ध हूँ। मैं ने तो सुाना था कि आप जैन-धर्म में दृढ़े आस्थावान हैं। आप की नगरी में निर्ग्रंथ मुनियों की नवधा भक्ति

से सदा सेवा होती है। किन्तु यहाँ के समस्त लोग बौद्ध-धर्म के प्रभाव में आकर अहितकारी मिथ्या मार्ग के पथिक बने हुए हैं। मेरी आत्मा काँप उठी है। हे महाराज! बौद्ध-धर्म के प्रति मेरे चित्त में अनादर तो नही है, परन्तु उससे जीवन में सुख-शान्ति नहीं मिलती तथा भवसागर से उद्धार नहीं होता।' चेलना के वचन सुन कर महाराज श्रेणिक ने अपने गुरु-गम्भीर स्वर में कहा—'प्राणवल्लभे! मैं तुम्हारे मुख से क्या सुन रहा हूँ? भला मेरे राजमहल में अधर्म कार्य होना सम्भव है? यहाँ दिन-रात्रि सद्धर्म का पालन होता है। बौद्ध-धर्म के समान संसार में कोई सच्चा धर्म नहीं है। इसी के द्वारा मनुष्य को जीवन में सुख-शान्ति एवं सन्तोष की प्राप्ति हो सकती है। मैं उसी भगवान बुद्ध का सच्चा अनुयायी हूँ, जो संसार के समस्त ज्ञान के एकमात्र दृष्टा हैं। संसार में भला उनसे बढ़ कर अन्य कौन उपासना के योग्य उत्तम देव हैं, जिनकी पूजा-स्तुति की जाए? संसार के जितने सर्वश्रेष्ठ उत्तम पुरुष हैं, उन्हें चाहिए कि वे भगवान बुद्ध के पवित्र संघ में शरणागत हो कर अपनी आत्मा का कल्याण करें। भगवान बुद्ध की कृपा से संसारी जीवन सुख, सम्पदा तथा स्वर्ग मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। अतः हे सुमुखि! बुद्ध की शरण में जाने से ही हम लोगों का यथार्थ कल्याण सम्भव है।'

बौर्द्ध-धर्म के सम्बन्ध में महाराज के इस प्रकार प्रशंसात्मक वचन सुन कर चेलना ने उत्तर दिया—'पृथ्वीनाथ! आप ने बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में जितने भी तर्क दिए हैं, वे युक्तियुक्त नहीं हैं। मैं आप को विश्वास दिलाती हूँ कि संसार में तो क्या त्रिभुवन में जैन-धर्म के समान समस्त जीवों पर दया रखने का पवित्र उपदेश देनेवाला कोई अन्य महान् सार्वभौमिक धर्म नहीं है। जैन-धर्म का सिद्धान्त प्राणि-मात्र की रक्षा करने का है। जिनेन्द्र भगवान ने अपने केवलज्ञान के उपदेश द्वारा इसे प्रकट किया है। हे महाराज! संसार में जितने भव्य जीव हैं, वे सब जैन-धर्म की आराधना कर उत्तमोत्तम गति प्राप्त करते हैं। जैन-धर्म के सच्चे अनुयासी क्षुधा-पिपासा आदि संसार के कष्टों से रहित होकर अठारह प्रकार के दोषों से मुक्त होकर त्रिभुवन में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त करते हैं। तब वे लोक कल्याण की भावना से मुक्ति पथ के मार्ग का प्रचार करने से 'आप्त' कहे जाते हैं। जैन शास्त्रों में प्रमाण सहित परीक्षित जीव, अजीव, आस्त्रव आदि सात तत्वों का आख्यान है। केवली भगवान की दिव्य वाणी के रूप में प्रमाण, नय, निक्षेप आदि सात प्रकार के ज्ञानरूपी रत्नों का वर्णन उद्भासित होता है। सातों तत्वों में कथाचित नित्यत्व एवं कथचिंत् अनित्यत्व नामक धर्म के अङ्ग हैं। यदि इन्हें नित्य एवं अनित्य समझ लिया जाए, तो सम्यक् प्रकार से इनके रूप का ज्ञान नहीं हो सकता। हे धरणीपति! जो नग्न रूप में दिगम्बर वेशधारी निर्ग्रंथ हैं, उत्तम क्षमादान तथा उत्तम मार्दव गुण धारण करनेवाले हैं, संसार के मिथ्या अन्धकार को मिटा देनेवाले हैं, राग-द्वेष-मत्सर-क्रोध-मोह पर विजय पाकर अजातशत्रु बन कर अन्तर एवं बाह्य से पूर्ण तपस्वी हैं—वे ही जैन-धर्म में उत्तम साधु माने जाते हैं। हमारे

जैन-धर्म के सिद्धान्त में प्राणि-मात्र के ऊपर दया भाव रख कर अहिंसा ही श्रेष्ठ धर्म माना गया है। हे जीवन सर्वस्व! मैं ने आप के सामने संक्षेप में जैन-धर्म के मूल सिद्धान्त प्रकट किए हैं, क्योंकि इनका विशद वर्णन केवली भगवान के अतिरिक्त भला अन्य कौन साधिकार कर सकता है? हे कृपासिन्धु! क्या मैं आप से सानुरोध जिज्ञासा कर सकती हूँ कि ऐसे परम हितकारी पवित्र धर्म का त्याग करना क्या मेरे लिए कदापि उचित है? जैन-धर्म से ईर्ष्या-भाव रखनेवाले बड़े भाग्यहीन होते हैं।'

रानी चेलना से जैन-सिद्धान्त के तत्व-वचन सुन कर महाराज ने कहा—'हे हृदयेश्वरी! मैं तुम से अनुरोध करता हूँ कि जिस धर्म में तुम्हारी श्रद्धा हो, उसी की आराधना प्रसन्नता के साथ करो। अपने मन में किसी प्रकार का शोक-सन्ताप न करो।' महाराज की इस प्रकार की धार्मिक सहिष्णुता देख कर चेलना के आनन्द की कोई सीमा न रही। उसने नियमानुसार प्रतिदिन जैन धर्म-शास्त्रों का स्वाध्याय करना प्रारम्भ कर दिया। वह जिनेन्द्र भगवान की पूजा श्रद्धा-भक्ति के साथ करने लगी। अष्टमी-चतुर्दशी के पर्व दिवसों पर उपवास रख कर रात्रि जागरण करने लगी। प्रतिदिन भगवान की स्तुति में नृत्य-स्तुति आदि उसके कार्यों ने समस्त अन्तःपुर की रानियों में जैन धर्म के प्रति श्रद्धा, प्रेम तथा भक्ति का अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया। अल्प काल में ही चेलना के भक्तिभाव से समस्त राजप्रासाद में जैन धर्म का प्रभाव गहरा फैल गया।

बौद्ध साधुओं का पराभव

जब बौद्ध-मतावलम्बी साधुओं को महाराज श्रेणिक के राजमहल में रानी चेलना द्वारा जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने क्रोध के वशीभूत होकर महाराज से निवेदन किया—'पृथ्वीनाथ! क्या आपको अभी तक ज्ञात नहीं कि आपके राजमहल में एक ऐसी भ्रान्त मस्तिष्क की नारी है जिसने जैन-धर्म का प्रचार कर बौद्ध मत के ऊपर कुठाराघात किया है? उसके इस कार्य से पवित्र बौद्ध सम्प्रदाय के ऊपर सङ्कट के घनघोर मेघ घिर आये हैं? पवित्र, दयामय एवं इस भूतल पर सर्वश्रेष्ठ धर्म अर्थात् बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के कारण क्या हम महाराज से आशा करें कि आप उस पथभ्रान्त नारी पर कठिन निगरानी रख कर सद्धर्म के प्रति अपनी दृढ़ आस्था का परिचय देंगे। महाराज! विडम्बना तो यह है कि वह नारी कोई अन्य नहीं, वरन् आप की पटरानी चेलना है। उसकी गतिविधि से महान् अनर्थ होने जा रहा है।'

बौद्ध साधुओं के इस प्रकार निवेदन करने पर महाराज ने विनम्र शब्दों में कहा—'हे गुरुवर! मेरे प्रतिबोध का रानी के

ऊपर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। मैं उससे तर्क कर परास्त हो गया हूँ। यदि आप सदृश ज्ञानीजन चाहते हैं कि बौद्ध धर्म के ऊपर तनिक भी आँच न आये, उसे जा कर समझाइये। कदाचित् उसके ऊपर आप के उपदेश का कुछ प्रभाव पड़ सके, अन्यथा वह बौद्ध धर्म को समूल निष्प्रभ करने के कार्य में संलग्न रहेगी। बौद्ध साधुओं ने महाराज को धैर्य बँधा कर आश्वासन दिया—'हे महाराज! आप के आत्म-निवेदन से हमारे हृदय में शान्ति का प्रादुर्भाव हुआ है। आप निश्चित रहें। हम अभी जाकर रानी चेलना को समझाते हैं। वह हमारा परामर्श अवश्य मान जायेगी। हे पृथ्वीपति! हम त्रिपिटक आदि ग्रन्थों के पूर्ण ज्ञाता आचार्य हैं। हमारी जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती विराजमान हैं। हम अनेक विद्याओं में पारङ्गत हैं। हे धर्मनिष्ठ राजन्! हम शीघ्र आपकी पटरानी चेलना को सद्धर्म में दीक्षित कर लेंगे।'

ऐसी दम्भपूर्ण घोषणा कर वे बौद्ध साधु रानी चेलना के महल में जाकर उसे समझाने लगे—'हे अबोध रानी! तुम यह क्या अनर्थ कर रही हो? हम ने सुना है कि तुम ने बौद्ध धर्म के प्रति अपनी अवज्ञा व अज्ञान महाराज श्रेणिक के सामने प्रकट किया है। साथ ही तुम उसे हेय दृष्टि से भी देखती हो। यह सब तुम्हारी नितांत भूल है। संसार के समस्त धर्मों में यदि जीवों का वास्तव में कल्याण करनेवाला कोई धर्म है, तो वह बौद्ध धर्म ही है। अज्ञानवश जैन धर्म ग्रहण कर तुम ने स्वयं का अकल्पनीय अपकार किया है। कारण इस मत के अनुयायी समस्त मुनि पशु के समान नग्न रह कर दिगम्बर (निर्ग्रंथ) कहलाते हैं। सर्वदा आहार नहीं पाने के कारण विवश होकर उपवास रख कर ज्ञान-विज्ञान हीन अविचारी बने रहते हैं। देखो, उन दिगम्बर साधुओं की दुर्दशा तो लोक-परलोक दोनों स्थान में ही होती है। यहाँ तो वे वस्त्र-भोजन के अभाव में भिक्षुक बन कर दर-दर ठोकर खाते फिरते हैं, साथ ही परलोक में जाकर भी याचक ही बने रहते हैं। तुम यह निश्चय जानो कि वे जब इस जन्म में भोजन-वस्त्र के लिए लालायति रहते हैं, तब दुसरे जन्म में तो द्विगुणित कष्ट अवश्य भोगते होंगे। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—जैसी करनी होती है, वैसी भरनी होती है। किसी ने कहा भी है—

करि अधर्म चाहे अगर सुख सम्पत्ति ही होय। रोपे पेड़ बबूल के, आम कहाँ से होय?

अतः हे रानी! उन दरिद्र भिक्षुओं की भक्ति करने से तुम्हें भी उनके सामने अपने दूसरे जन्म में दरिद्र एवं याचक बनना पड़ेगा। अतएव तू बौद्ध-धर्म की शरण में आकर संसार के वैभव-सुख की प्राप्ति कर एवं जैन-धर्म में आस्था का भाव अपने हृदय से शीघ्र निकाल बाहर कर। बौद्ध-धर्म ही तुम्हारा कल्याण करेगा, जैन-धर्म नहीं। इस संसार के समस्त उत्तम मनुष्य इसी कल्याणकारी धर्म की सेवा करते हैं, अतः तू भी तत्काल भगवान बुद्ध की शरण ग्रहण कर तथा स्वर्ग-मोक्ष की

अधिकारिणी बन।'

बौद्ध साधुओं के उपदेश सुन कर चेलना का हृदय क्षोभ से भर गया। उसने सागर के समान गम्भीरता से कहा—'हे साधुओं! मेरी समझ में आप लोगों की यह बात नहीं आयी कि कैसे दिगम्बर मुनियों की सेवा से अगले जन्म में हमें क्लेश सहन करना पड़ता है तथा बौद्ध गुरुओं की भक्ति से परलोक में सुख की प्राप्ति होती है? कृपया विस्तारपूर्वक स्पष्ट करें।' बौद्ध साधुओं ने कहा—'हम त्रिकालदर्शी साधुओं को परकलोक सम्बन्धी ज्ञान सर्वदा ही स्पष्ट रहता है। तुम हमारे कथन पर दृढ़ श्रद्धान रखो।'

बौद्ध गुरुओं के मुख से त्रिकालदर्शी होने की गर्वोक्ति सुन कर चेलना ने कहा—'हे साधुओं! कल मेरे यहाँ आप लोगों को आहार ग्रहण करने का निमन्त्रण है। अब आप सदृश सर्वज्ञ महापुरुषों को भोजन करा कर मैं कल ही आप लोगों से बौद्ध धर्म ग्रहण कर लूँगी।' रानी से बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेने की अभिलाषा सुन कर बौद्ध गुरुओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर महाराज के पास आकर यह शुभ सम्वाद कर सुनाया। महाराज श्रेणिक भी बौद्ध गुरुओं के मुख से रानी चेलना द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने का शुभ निश्चय सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे अविलम्ब रानी के पास पहुँच गए तथा मधुर शब्दों में कहने लगे—'हे प्राणवल्लभे! आज मैं तुम्हारी धर्म-परिवर्तन की अभिलाषा सुन कर आशातीत प्रसन्नता से भर उठा हूँ। प्रिये! आज ही तुम ने बौद्ध धर्म की विशेषता समझी, उसकी महत्ता-गुणवत्ता जानी। यथार्थ में आज ही तुम्हारा मानव जन्म सार्थक हुआ है। हे रूपसी! बौद्ध धर्म के सदृश अन्य कोई उपकारी धर्म नहीं है। तुम अपनी जो मनोकामना हो सो कहो, मैं तत्काल पूर्ण करने के लिए प्रस्तुत हूँ। यह सावधानी रखना कि बौद्ध गुरुओं के भोजन के लिए उत्तम-उत्तम व्याजन बनने चाहिए।' इस प्रकार कह कर महाराज चले गये।

साधुओं की परीक्षा

महाराज की आज्ञा के अनुसार रानी चेलना ने साधुओं के भोजन करने के लिए उत्तम-उत्तम व्यज्जन बनवाए। बौद्ध गुरुओं को भोजनार्थ आमन्त्रित किया गया। उधर बौद्ध गुरु भी राजमहल में स्वादिष्ट भोजन करने की प्रतीक्षा में बैठे ही थे, वे अविलम्ब अङ्गवस्त्र धारण कर भोजनार्थ चल दिए।

बौद्ध गुरुओं के राजमहल में प्रवेश करते ही रानी चेलना ने उनकी अभ्यर्थना की, नम्रता के सङ्गथ उनके चरण प्रक्षालित किए तथा बैठने के लिए उचित आसन प्रदान किया। चेलना ने सुवर्ण थालों में उत्तम-उत्तम व्यज्जन परोस कर उनके समक्ष

रख दिए। बौद्ध गुरु सुवर्ण थालों में भाँति-भाँति की भोजन-सामग्रियों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। रानी ने भी उनकी स्तुति कर उनसे भोजन ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। षटरस भोज्य व्यज्जनों को देख कर बौद्ध गुरुओं के मुख से लार टपकने लगी। वे स्वाद के साथ भोजन करने लगे तथा बीच-बीच में रानी की प्रशंसा करते जा रहे थे। इधर बौद्ध गुरु भोजन करने में दत्तचित थे, उधर रानी चेलना ने बौद्ध गुरुओं के बायें पैर की पादुकायें (जूते) किसी चतुर दासी से मँगवा लिए तथा उनके छोटे-छोटे महीने टुकड़े करवा कर छाँछ में मसाले के साथ डाल कर सब को स्वादिष्ट जायकेदार रायते के रूप में प्रस्तुत कर अभ्यागत बौद्ध गुरुओं के थालों में परोसना प्रारम्भ कर दिया। बौद्ध गुरु भी लड्डू, पेडे इत्यादि उत्तम पदार्थ के भोजन के साथ थाली में कोई चटपटी चीज देख कर दही में पड़े हुए उन टुकड़ों को भी उदरस्थ करते गए। उन्हें इस रहस्य की तनिक भी आशङ्का नहीं हुई कि उनके सामने पादुकाओं के टुकड़ों से युक्त कोई सामग्री परोसी गई है। इस प्रकार भोजन से निपट कर बौद्ध गुरु ताम्बूल, इलायची इत्यादि सुगन्धित मुखरोचक खा कर रानी की प्रशंसा करने लगे—'हे रानी! तुम्हारा विनम्र निमन्त्रण स्वीकार कर अब हमने तुम्हारे यहाँ भोजन ग्रहण कर लिया है। अब तुम भी बौद्ध धर्म को ग्रहण कर अपनी आत्मा को पवित्र करो तथा अनुपयोगी जैन धर्म को तत्काल त्याग दो।'

पादुकाओं का रहस्य

रानी ने नम्रता के साथ उत्तर दिया—'हे गुरुओं! आप लोग कृपा कर अपने-अपने स्थान पर जाइए। आप लोगों को विश्वास दिलाती हूँ कि मैं स्वयं आपके निकट आकर बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाऊँगी।' रानी की स्वीकृति पाकर बौद्ध गुरु प्रसन्न होकर चलने लगे। उस समय उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही, जब उन सब ने अपने-अपने बाएँ पैर की पदाुकायें लुप्त पायीं, वे इधर-उधर अपनी-अपनी पादुकायें ढूँढने लगे। किन्तु कहीं पर भी उन्हें न पाकर वे कहने लगे—'अरे! सब की वाम-पादुकायें कहाँ चली गयीं? किसने हम साधुओं से ऐसी ठिठोली की है?' फिर साधुओं ने रानी पर अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहा—'इसी ने हमारे साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार किया है।' चेलना ने बौद्ध गुरुओं की उद्विग्नता देख कर कहा—'हे साधु वेशधारी ढोंगियों! क्यों अब आप लोगों का त्रिकालदर्शी ज्ञान कहाँ चला गया है, जिसकी डींग हाँकते नहीं अघाते थे? भला, आप लोग सर्वज्ञ हैं, तब चिन्ता की क्या बात है? अपने ज्ञान से पदुकायें ले जाने वाले का पता लगा लें।'

रानी के इस प्रकार पूछने पर समस्त बौद्ध गुरु लज्जित होकर किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे। उनके होश हिरण हो गए। वे उत्तर दें तो क्या दें? एक ही वार में अपना भण्डाफोड़ हो जाने से वे अपना धैर्य खो बैठे। बड़ी कठिनाई से उन्होंने कहा—'हे

रानी! हम त्रिकालदर्शी नहीं हैं। अतः तुम कृपा कर हमारी पादुआकें के सम्बन्ध में बतलाओ।' बौद्ध गुरुओं के इस प्रकार गिड़गिड़ा कर अनुनय-विनय करने पर रानी चेलना का हृदय क्रोध से धधक उठा। थोड़ी देर पहिले उसने दु:ख का कड़वा घूँट पी कर अपने प्राणप्रिय जैन धर्म की निन्दा इन रंगे हुए ढोंगियों के मुख से सुनी थी। उस समय अपने धर्म की निन्दा सुन कर उसने गहन पीड़ा के साथ अपमान को सहन किया था, किन्तु इनकी कलई खुल जाने पर उसके हृदय की दबी हुई क्रोधरूपी चिगगारी एकाएक भभक उठी। उसने गरज कर कहा—'ढोंगी गुरुओं! तुम ने किस आधार पर बिना सोचे-समझे जैन धर्म की निन्दा की थी? क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि बिना सोचे-समझे बोलनेवाले पागल कहे जाते हैं? तुम लोग गुरु पद को अपमानित करनेवाले तथा सीधे-सीधे लोगों के नेत्रों में धूल झोंक कर अपना उल्लू सीधा करने वाले बगुला भगत, कपटी, पापी, दुष्टात्मा हो। तुम्हारी जितनी भी निन्दा की जाए वह स्वल्प है।' बौद्ध गुरु रानी की प्रताड़ना सुन कर भी कोई उत्तर देने में असमर्थ रहे। बस उन्होंने अपनी पादुकायें लौटा देने के लिए रानी से प्रार्थना की। वे कहने लगे—'हे रानी! कृपा कर हमारी पादुकायें दिलवाइए। हम अत्यन्त चिन्तित हैं। हमारे हृदय का सन्ताप दूर करिए।' रानी ने कहा—'साधुओं! तुम्हारी पादुकायें तुम्हारे पास ही हैं, किसी अन्य द्वारा नहीं ली गयी हैं।' रानी का कथन सुन कर बौद्ध गुरु कहने लगे—'अरे! हमारे पास पादुकायें कहाँ हैं? यदि तुम्हें ज्ञात है, तो हमारे पास से निकाल दो। क्या हम ने पादुकाओं का भक्षण कर लिया है या कहीं रख दिया है? स्मरण रखो कि हम साधुओं के साथ तुम्हारा ऐसा द्वेषपूर्ण व्यवहार अनुचित ही नहीं पाप का बंध भी है। हे निष्ठुर रानी! शीघ्र बतला कि हमारी पादुकायें कहाँ हैं?' बौद्ध साधुओं को इस प्रकार क्रोधित देख कर चेलना ने उत्तर दिया—'साधुओं! तुम लोग तनिक धीरज धरो। मैं अभी तुम्हारे पास से तुम्हारी पादुकायें निकलवा देती हूँ। तब सिद्ध हो जाएगा कि पादुकायें तो स्वयं तुम्हारे ही पास हैं, किसी अन्य के पास नहीं।'

बौद्ध गुरुओं के उदर में पादुकाओं के टुकड़े

अब बौद्ध गुरुओं का माथा ठनका। रानी के कथन से घबड़ा कर वे सोचने लगे—'ऐसा प्रतीत होता है कि इसने हमें भोजन में पादुकायें खिला दी हैं, नहीं तो यह इस प्रकार कैसी कहती। हाय! हमने इसके यहाँ भोजन क्या किया, सर्वथा अभक्ष्य पादुकाओं के भक्षण को विवश हो गए। अब हम क्या करें? यह रानी कितनी निर्दयी है?' इस प्रकार सोचते हुए वे सब प्रचण्ड क्रोधावेश में आकर वमन करने लगे। उनके उदर से भोजन के साथ पादुकाओं के टुकड़े निकलने लगे। अपने उदर से पादुकाओं के टुकड़े निकलते देख बौद्ध गुरु अपनी सारी हेकड़ी भूल गए अर्थात् उनके होश हिरन हो गए। वे क्रोध

में आकर रानी की निन्दा करने लगे। इस प्रकार खिसयाये हुए वे बौद्ध गुरु सीधे महाराज श्रेणिक के पास गए तथा उनसे रानी चेलना का तथाकथित कुकृत्य कह सुनाया। इस प्रकार अपमान के कटु अनुभव का पान कर वे सभी बौद्ध साधु क्रोधित हो कर चले गए। उनके मिथ्या ज्ञान की कलई रानी ने सब के सामने खोल दी।

कुछ समय पश्चात् राजगृह नगर में बौद्ध साधुओं का एक विशाल संघ आ पहुँचा। सारे नगर में साधुओं के आगमन से चहल-पहल मच गयी। जब महाराज श्रेणिक ने बौद्ध गुरुओं के शुभागमन का संवाद सुना, तब वे फूले नहीं समाए। वे तत्काल रानी चेलना के निकट आकर कहने लगे– 'हे सुमुखि! हमारे गुरु के ज्ञान का चमत्कार अनुपमेय है। वे प्रकांड ज्ञानी हैं। अपने पवित्र ज्ञान के उज्जवल प्रकाश में उन्हें सकल संसार स्पष्ट दिखलायी देता है। वे सर्वदा ध्यानस्थ रहा करते हैं। बड़ी कठिनता से वे किसी के प्रश्न का उत्तर देते हैं। उग्र तप के कारण उनका सारा शरीर सुवर्ण के सदृश उद्भासित होता है। ध्यानस्थ अवस्था में वे साक्षत् मोक्षधाम में पहुँच जाते हैं। फलतः वे समस्त जीव-अजीव आदि तत्वों के सम्यक् प्रकाशक हैं।' महाराज ने साधुओं के सम्बन्ध में जैसी प्रशंसा की, उसे सुन कर रानी चेलना ने कहा–'हे नाथ! यदि बौद्ध गुरुओं में इस प्रकार के अपूर्व गुण हैं, तो मैं भी उनके दर्शन कर अपना जीवन सफल बनाऊँगी। मैं आप को विश्वास दिलाती हूँ कि यदि उनकी सर्वज्ञता सत्य प्रमाणित हुई तो मैं बौद्ध धर्म को अवश्य ग्रहण कर लूँगी। यथार्थ तो यह है कि आप ने कहा है केवल इसलिए ही मैं जैन धर्म को नहीं त्याग सकती तथा न हठी हो कर उसमें बनी रहूँगी। जो व्यक्ति हेय-उपादेय के ज्ञाता हैं, वे बिना समीक्षा एवं परीक्षा लिए केवल दूसरों के कह देने से उत्तम पथ से विमुख हो किसी अन्य मार्ग से नहीं चलते। जो बिना सोच-समझे अज्ञान के पथ में अपना पग आगे बढ़ाते हैं, वे महामूर्ख शक्तिहीन तथा आत्मघाती कहलाते हैं।'

रानी चेलना का युक्तियुक्त कथन सुन कर महाराज ने समझा कि रानी का विचार बौद्ध धर्म की महानता से प्रेरित होकर शनैः-शनैः परिवर्तित हो रहा है। अतः उन्होंने प्रसन्न होकर रानी के परामर्शानुसार नगर से बाहर एक विशाल मण्डप बनवाने की आज्ञा दी। मण्डप अल्पकाल में ही बन कर तैयार हो गया। मण्डप में जाकर बौद्ध गुरुओं का विशाल संघ डट गया। उन सब ने दीर्घ अवधि तक समाधि लगा कर अपनी महानता प्रमाणित करनी चाही। इधर रानी चेलना भी पालकी पर आरूढ़ होकर वहाँ पहुँच गयी। उसने बौद्ध गुरुओं से बौद्ध धर्म के विषय में कुछ प्रश्न किए। उपस्थित समस्त बौद्ध गुरुओं में किसी ने रानी के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। वे सब-के-सब मौनावलम्बन किए बैठे रहे। इतने में एक ब्रह्मचारी ने बात बनाते हुए कहा–'हे माता! इस समय समस्त साधु-मंडली अखंड समाधि में इतनी तल्लीन है कि जिससे उनकी आत्मा सिद्धालय में

विराजमान है। उनकी देह केवल यहाँ पर है। अतः इन्होंने आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया है।' रानी समझ गयी कि ये सब-के-सब पहुँचे हुए धुर्त्तराज हैं तथा अपने मायाचार का आडम्बर फैला कर राजा तथा प्रजा को दिग्भ्रांत कर रहे हैं।

रानी चेलना ने उनका भण्डाफोड़ करने के उद्देश्य से उस मण्डप में स्वयम् आग लगा दी। कुछ समय तक पृथक् खड़ी रहकर तमाशा देखती रही तथा फिर वहाँ से सीधे राजमहल के लिए प्रस्थान किया। मण्डप में आग लगते ही चारों ओर भगदड़ मच गयी। समस्त बगुला भगत (अर्थात् बौद्ध साधु) अपनी समाधि त्याग कर प्राणरक्षा हेतु पलायन कर उठे। पाठकगण! आप विचार करें कि जहाँ अग्नि संयोग से कुछ क्षण पूर्व उस मण्डप में वे बौद्ध गुरु ध्यानस्थ हो कर अपनी अखण्ड समाधि द्वारा अपूर्व चमत्कार प्रकट कर रहे थे—जिनकी आत्मायें सिद्धलोक को चली गयी थीं, पर अग्नि ज्वालाओं के प्रबल होते ही वे अनायास कैसे लौट आयीं? बौद्ध गुरुओं ने महाराज श्रेणिक के सम्मुख उपस्थित होकर रानी चेलना का उत्पात कह सुनाया।

फलस्वरूप रानी चेलना के ऊपर अत्यन्त क्रोधित होकर राजा श्रेणिक उसके महल में आक पूछने लगे—'चेलना! यह तुमने क्या अनर्थ कर डाला? मंडप में जाकर आग क्यों लगाई? यहा कहाँ का नीति-मार्ग है? किसी धर्म के ऊपर श्रद्धा अथवा भक्ति न होने के कारण मंडप में आग लगा कर निर्दोष साधुओं के प्राण हरने का उद्योग क्यों किया तुमने? यदि तुम उन्हें योग्य नहीं समझतीं, तो अधिक-से-अधिक उनके ऊपर अपनी श्रद्धा नहीं रखती, किन्तु तुम्हारे इस प्रकार के गर्हित कार्य से हिंसा स्पष्टतः झलक पड़ती है। उस दिन तुमने अपने जैन सिद्धान्त की प्रशंसा की थी। उसे दया, अहिंसा तथा प्रेम का आधार भूत सिद्धान्त बतलाया था। आज तुम्हारे हाथों से उसकी क्या दशा हो गयी है? हे रानी! दया यह नहीं सिखलाती कि किसी का प्राण हर लिया जाए। वह एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों की प्राणरक्षा की शिक्षा देती है। किन्तु तुमने तो आज अपनी नीचता की पराकष्ठा कर दी। अपने ही हाथों अपने प्रिय जैन सिद्धान्त का श्राद्ध कर दिया। आज तुम्हारी सिद्धान्तप्रियता कहाँ चल गयी? क्या कोई इस दुष्टतापूर्ण कार्य के पश्चात् स्वप्न में भी तुझे जैन-मतावलम्बी कहने का साहस करेगा? रानी, तुम अपने क्रूर हृदय पर हाथ रख कर मुझे उत्तर दो कि क्या तुम्हारा यह काम निन्दनीय नहीं है?'

महाराज को अपने ऊपर इस प्रकार क्रोधित देख कर रानी चेलना ने शांतिपूर्वक मधुर स्वर में निवेदन किया—'हे कृपासिंधु! मेरा अपराध क्षमा हो। आप को मैं एक कथा सुना कर यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि मेरे इस कार्य का औचित्य-अनौचित्य क्या है? अतः आशा है आप मेरी कथा को ध्यान से सुन कर समुचित विचार कर अपना निर्णय सुनायेंगे।'

ऐसा कह कर रानी चेलना ने अपना कथा वर्णन प्रारम्भ कर दिया।

नाग देहधारी वसुमित्र की कथा

चेलना बोली—'हे महाराज! इसी जम्बू द्वीप के वत्स देश में कौशांबी नामक एक नगरी थी। उसकी शोभा के समक्ष स्वर्गलोक का वैभव हेय प्रतीत होता था। सुन्दर उद्यानों एवं उपवनों ने उसकी शोभा को द्विगुणित कर दिया था। एक समय उक्त नगरी में वसुपाल नामक एक राजा शासन करता था। वह प्रजा-पालन में सदैव दत्तचित रहता था। उसकी न्यायप्रियता अपनी पराकष्ठा पर थी। दान देने में मानो वह कल्पवृक्ष की समता करता था। उसके राज्य-शासन में प्रजा सदा सुख-चैन की बंशी बजाती थी। उसकी रानी का नाम अश्विनी था। जिस प्रकार राजा अमितगुण का भंडार था, उसी प्रकार रानी अश्विनी रूपवती होने के साथ अपने गुणों से समस्त नारियों की चूड़ामणि थी। उसकी सुन्दरता का वर्णन असम्भव है। हे महाराज! उसी नगरी में सागरदत्त नामक एक सेठ रहता था। उस सेठ की स्त्री का नाम वसुमती के निष्कलुष सौन्दर्य की अपूर्व शोभा देख कर यही मानना पड़ता था कि वह अनिंद्य सुन्दरी है। रूपवती होने के साथ ही वह बुद्धिमती भी थी। सेठ सागरदत्त नगर के प्रसद्धि धनिक थे, जिससे राजसभा में उसे आदर का स्थान प्राप्त था। उसके विद्वान तथा गुणज्ञ होने के कारण राजा भी उसका सम्मान करते थे। उसी नगरी में सेठ सुभद्रदत्त नामक एक अन्य धनवान, गुणज्ञ तथा बुद्धिमान सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था। वह भी परम सुन्दरी थी।

एक दिन दोनों सेठ परस्पर पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने के विचार से किसी स्थान पर जाकर बैठ गए एवं स्नेहपूर्वक वार्तालाप करने लगे। सर्वप्रथम सुभद्रदत्त ने प्रस्ताव रखते हुए कहा—'प्रिय बन्धु! मेरी आन्तरिक अभिलाषा यह है कि यदि हम दोनों में किसी एक के पुत्र एवं अन्य के कन्या उत्पन्न हो, तो उन दोनों को परस्पर दाम्पत्य-सूत्र में आबद्ध कर हम सम्बन्धी बन जाएं। इस विषय में आपका क्या मन्तव्य है?' सेठ सागरदत्त ने हँस कर कहा—'भाई! मैं आपके इस प्रस्ताव से क्यों पीछे हटूँगा। मुझे यह सहर्ष स्वीकार है।' दोनों सेठ इस प्रकार भविष्य के लिए स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से वचनबद्ध होकर अपने-अपने निवास को लौट गए। कुछ समय उपरान्त सेठ सागरदत्त के एक पुत्र हुआ। नवजात शिशु का आकार नाग के सदृश था, अतः उसका नामकरण वसुमित्र किया गया। उधर सेठ सुभद्रदत्त के यहाँ एक अत्यन्त रूपवती कन्या हुई, जिसका नाम नागदत्ता रखा गया। अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार सेठ सुभद्रदत्त ने वसुमित्र के संग नागदत्ता का विवाह बड़ी धूमधाम से कर दिया। इस प्रकार नव-विवाहित दम्पति प्रबल अनुराग-सूत्र में बँध कर आनन्द के साथ सांसारिक

सुख भोगने लगे।

हे महाराज! एक दिन नागदत्ता की माता अपनी प्रिय पुत्री को विविध आभूषणों से अलंकृत देख कर दु:ख के साथ विचार करने लगी—'हाय! सुर-सुन्दरियों को भी अपनी सुन्दरता से लज्जित करनेवाली मेरी प्राणप्यारी कन्या नाग के समान देहधारी करूप व्यक्ति के हाथ सौंप दी गयी। हे भगवन्! यह आपने क्या किया? कर्मों की विचित्रता ने कैसी बेमेल जोड़ी मिलायी। हा भाग्यचक्र! तेरे सामने किसी की विद्वता काम नहीं आयी। हाय, हमारे मन की बात मन में ही रह गयी। विधि का विधान कुछ अन्य ही था। सच है, भाग्य के सामने बड़े-बड़े देवों की शक्ति सफल नही हो सकती, तब भला हम असहाय प्राणी क्या कर सकते हैं?' इस प्रकार विचार कर वह शीश पटक-पटक कर विलाप करने लगी। अपनी माता को इस प्रकार शोकाकुल होकर रुदन करता देख कर नागदत्ता ने धैर्यपूर्वक जिज्ञासा की—'प्रिय माता! हठात् तुम्हारे रुदन का क्या कारण है। क्या तुम मुझे देख कर शोकाकुल हो? कृपया स्पष्ट कहों।

पुत्री के प्रश्न ने माता के शोकपूर्व हृदय में करुणा की प्रबल धारा प्रवाहित कर दी। वह बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी। उत्तर देना तो दूर रहा, उसके हृदय में सन्ताप की मात्रा तीव्रतर होकर अश्रुधारा के रूप में प्रकट होने लगी। कन्या के पुनः अनुरोध पर उसकी माता सागरदत्ता ने करुण-स्वर में कहना प्रारम्भ किया—'पुत्री! आज तुझे देख कर मेरे हृदय में अथाह शोक का सागर उमड़ पड़ा है। तुम बड़ी अभागिन हो। मेरे शोक करने का कारण यह है कि तुम्हारा पति नाग के समान देहधारी है। उसके साथ विवाह हो जाने से तुम्हारे लिए तो सुख का द्वार ही रुद्ध हो गया है। हे पुत्री! यदि वह कुरूप होने पर भी मनुष्य सदृश होता, तो मैं शोक नहीं करती। कम-से-कम उससे तुम्हे दाम्पत्य सुख की प्राप्ति तो होती। किन्तु हाय, तू निरपराध उस सुख से वंचित कर दी गयी। मेरे हृदय में रह-रह कर यही शुल के समान बिंध रहा है? प्रिय पुत्री! तुम्हारे दु:खद भविष्य की कल्पना का भयावह चित्र मेरे मानस-पटल पर अङ्कित होकर मेरे हृदय में अनर्विचनीय शोक उत्पन्न कर रहा है। क्या करूँ, विवश हूँ, माँ की ममता जो ठहरी। हाय, किस प्रकार मैं तुम्हारे कष्ट का निवारण कर सकूँगी।'

माता के इस प्रकार शोकपूर्ण उद्गार सुन कर नागदत्ता ने कहा—'हे माता तू वृथा शोक क्यों करती है? मेरे शयन कक्ष में एक सन्दूक रखा है। उसमें मेरा पति सूर्योदय पर्यंत नाग के रूप में बन्दी रहता है। संध्या के होते ही वह परम रूपवान मनुष्य बन कर मेरे साथ सुख भोगता है।' स्वयं अपनी कन्या के मुख से ऐसी आश्चर्यजनक कथा सुन कर माता ने कहा—'पुत्री! मैं तेरी कथा तभी सत्य समझूँगी, यदि तू किसी अन्य स्थान में अपने कथन की सत्यता सिद्ध कर दे अन्यथा

मैं उस कपोल-कल्पित कथा को तेरे कहने मात्र से सत्य स्वीकार नहीं कर सकती।' फलतः कन्या एक परिचित स्थान पर सन्दूक को ले गयी। संध्या होते ही नाग मनुष्य का रूप धारण कर नागदत्ता के साथ भोग-विलास करने लगा। इतने में नागदत्ता की माता सागरदत्ता ने उस सन्दूक में आग लगा दी। सन्दूक के जल जाने से वसुमित्र सर्वदा के लिए अपने मनुष्य रूप में ही रह गया।

इस प्रकार बड़ी रोचक एवं सारगर्भित कथा सुना कर रानी चेलना ने महाराज श्रेणिक से प्रश्न किया—'मेरे प्रश्नों के उत्तर में जब समस्त बौद्ध संघ मौन रहा, तब मंडप के एक ब्रह्मचारी ने स्पष्ट किया कि इस समय समस्त बौद्ध गुरुओं की आत्मा मोक्षधाम में विराजमान है। तब मैं ने अपनी सहज बुद्धि से विचार किया कि भविष्य में ऐसे ज्ञानी महात्मा अपनी इस जीर्ण देह में आ कर पुनः सांसारिक कष्ट न भोगें, ऐसा कोई उपाय करना चाहिए। हे राजन्! यही सोच कर मैं ने आग लगा दी, जिससे उनकी आत्मा सदा के लिए मोक्षधाम में विराजमान रहे। हे प्राणनाथ! आप इस सत्य से भलीभाँति अवगत हैं कि जब तक इस देह में आत्मा का निवास है, तब तक मनुष्य विविध प्रकार से कष्ट सहन करता है। देह के साथ आत्मा का संबंध विलग होते ही देह के समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं। फिर भला आत्मा पुनः दुःख उठाने के लिए अपनी इस पुरातन देह में क्यों आने लगी?

मंडप में विदग्ध होकर समस्त बौद्ध गुरु तो मोक्षधाम चले गए, फिर चिन्ता करने का क्या कारण है? हे महाराज! इस तरह वे महाज्ञानी बौद्ध साधुगण भवसागर में आवागमन से सहज ही मुक्त हो गए। हे नाथ! संसार में सब प्रकार के कर्मों के बन्ध का कारण ये इन्द्रियाँ ही हैं, जिससे नरकादि के घोर दुःख भोगने पड़ते हैं एवं बारम्बार जन्म-मरण के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। मैं ने कष्टों से रक्षा कर उनका तो महान् उपकार किया है। हे नीति विशारद! मैं ने इस कार्य द्वारा अपने जैन धर्म के पवित्र सिद्धांतों के विपरीत कोई निंद्य कार्य नहीं किया है। हे महाराज! मैं ने आपके समक्ष सप्रमाण स्पष्ट कर दिया है कि मंडप में समस्त बौद्ध संघ धर्म के नाम पर ध्यान का ढोंग रच रहा था। वे अपने मायाचार के द्वारा भोलेभाले लोगों की आँखों में धूल झोंक रहे थे। हे दीनबन्धु! क्या आप विश्वास करते हैं कि मोक्ष सदृश दुष्प्राप्य वस्तु इतने सहज में प्राप्त हो सकती है? यदि सहज में ही प्रत्येक व्यक्ति को मोक्षगमन का अनुमति पत्र मिल जाता, तो वहाँ जानेवालो का जमघट लग जाता? फिर कोई यहाँ क्यों रहे? सभी मनुष्य धड़ल्ले के साथ बिना परिश्रम के ही वहाँ पहुँच जायेंगे। मोक्ष प्राप्ति के जितने भी साधन जिनागम में वर्णित हैं, मात्र वे ही प्रमाणिक हैं एवं उनसे ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है—किसी अन्य धर्म-मार्ग से नहीं। अतः

हे प्राणनाथ! आप अपने क्रोध का शमन कर धैर्यपूर्वक विचार कर कहिए कि वे समस्त बौद्ध गुरु मिथ्याचारी, कपटी एवं बगुला भगत हैं अथवा नहीं?'

यद्यपि रानी चेलना का युक्तियुक्त एवं न्यायसंगत उत्तर सुन कर महाराज प्रतिवाद करने में असमर्थ सिद्ध हुए तथापि उनके हृदय में बौद्ध गुरुओं की करारी पराजय देख कर रानी के प्रति क्रोध का भाव ज्यों-का-त्यों विद्यमान रहा। वे अपने मन में विचार करने लगे कि इस उछङ्खल रानी ने बौद्ध गुरुओं के साथ निर्दयता का व्यवहार कर के अक्षम्य अपराध किया है। सच तो यह है कि मेरी शिथिलता एवं अवशता के कारण रानी अभी तक बौद्ध-धर्मावलम्बिनी नहीं बन सकती है। यदि मैं उद्योगशील रहता, तो वह आज तक जैन धर्म की आराधना नहीं करती। पर यदि मैं ने उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित न करा दिया, तो मेरा श्रेणिक नाम रखना सार्थक नहीं।

महाराज श्रेणिक का मुनि से दुर्व्यवहार

कुछ काल उपरान्त एक दिवस महाराज श्रेणिक ने आखेट क्रीड़ार्थ वन-प्रान्तर की ओर गमन किया। उनके संग यथेष्ट अङ्गरक्षक सैन्य बल भी था। जिस वन में महाराज आखेट क्रीड़ा के निमित्त से गए थे, उसी में महामुनि यशोधर अपने अखण्ड ध्यान में खड़गासन धारण किए हुए कठिन तपस्या कर रहे थे। वे उत्तम कोटि के प्रकाण्ड ज्ञानी थे, आत्मा के स्वरूप के सम्यक् रूप से ज्ञाता थे। उनका जीवन ध्यान, तपस्या एवं शुभ योग की साधना में सर्वदा व्यतीत होता था। वे जितेन्द्रिय थे अर्थात् उन्होंने अपने मन की चँचलता पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली थी, वे समदर्शी विचार के धारक थे। वे सब के ऊपर एक समान प्रेम का व्यवहार रखते थे। उनके लिए संसार में न कोई मित्र था एवं न कोई शत्रु। निंद्य विचार उनके निकट फटकने भी नहीं पाते थे। वे त्रिकाल योग साधना में लीन रहते थे। उनका पद समस्त मुनियों में हर प्रकार से श्रेष्ठ था। सच पूछिए तो वे अनन्त गुणों के आगार थे। वे असंख्यात पर्यायों में युगपत जानकारी रखते थे। उनका ज्ञान निर्मल एवं अगाध था। वे सदा अपने उत्तम-उत्तम उपदेशामृतों से संसार के जीवों का उद्धार करते रहते थे। उनके ज्ञान के प्रकाश में स्यादिस्त, स्यात्रास्ति रूप सप्ततत्व, जीवादि धर्म-स्वरूप में सदा प्रकाशित होते रहते थे। उक्त मुनि के चरणों में इन्द्र से ले कर अन्य देव तक आ कर नमस्कार करते थे। उनके माहात्म्य से प्रभावित होकर उनके चतुर्दिक के प्राणी असीम शान्ति, मानसिक सन्तोष तथा आनन्द का अनुभव करते थे। इस प्रकार मुनिराज यशोधर अपनी त्याग-तपस्या में सतत् तीन होकर परम साधन कर रहे थे।

जिस समय महाराज श्रेणिक ने उन मुनिराज को दुर्गम वन में कठोर तपस्या करते हुए देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही, क्योंकि इससे पूर्व उन्होंने किसी दिगम्बर मुनि को इस प्रकार ध्यानस्थ हुए नहीं देखा था। महाराज ने अपने किसी अनुचर से मुनि के सम्बन्ध में पूछा– 'यह कौन मूँड-मुडाये नग्नावस्था में सर्वाङ्ग मलीन होकर खड़ा हुआ है?' अनुकूल अवसर समझ कर उस दम्भी अनुचर ने राजा को उत्तेजित करते हुए समझाया– 'हे पृथ्वीनाथ! क्या आप नहीं जानते कि यह कौन है? हे दीनबन्धु! यह वही मिथ्याभिमानी पाखंडी है, जिसके वाग्जाल से दिग्भ्रमित होकर रानी चेलना जैन बनी हुई हैं। हे अन्नदाता! यही उनका गुरु है।' वस्तुतः वह दम्भी अनुचर बौद्ध धर्म का कट्टर अनुयायी था, अतः उसने ईर्ष्यावश मिथ्या आरोप लगाया। महाराज भी चाहते थे कि येन-केन-प्रकारेण रानी चेलना के अपराध का प्रतिशोध उसके गुरु से लें। धार्मिक असहिष्णुता से बौद्ध गुरुओं की पराजय का दारुण शल्य उनके हृदय में उत्पन्न हो चुका था। अतः महाराज ने अपने मन में निश्चय कर लिया कि आज अपने गुरुओं के अपमान का प्रतिशोध अवश्य लूँगा। ऐसा विचार मन में आते ही उनका सर्वाङ्ग क्रोध से काँपने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि रानी चेलना ने जिस वंचकता एवं निर्दयता के सहारे मेरे पूज्य गुरुओं का अपमान किया था, आज भाग्योदय से जब सुअवसर मिल गया है, तो मैं भी उसके गुरु को अपमानिता कर अपने मान-मर्दन का सन्ताप मिटाऊँगा। जब वह मेरे द्वारा अपने गुरु के अपमानित होने की सूचना पायेगी, तब उसकी हठवादिता स्वयमेव निरस्त हो जायेगी। अभी तक तो सदैव वह अपनी मनमानी करती आ रही थी, आज उसे भी ज्ञात हो जायेगा कि किसी की धार्मिक आस्था पर आघात करने का भयङ्कर परिणाम कैसे चुकाया जाता है। इस प्रकार सोचते हुए महाराज ने अपने पाँच सौ प्रशिक्षित एवं भयावह श्वान (कुत्ते) महामुनि के ऊपर छोड़ दिए। वे श्वान क्या थे–मानो यमराज के भयङ्कर कालदूत। महाराज ने अपने मन में विचार किया कि मेरे श्वान मुनि के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। किन्तु उस समय उनके आश्चर्य का कोई छोर नहीं रहा, जब उनके व्याघ्र सदृश नृशंस श्वान मुनिराज के समीप जाकर भेड़ के समान शान्त हो गए। वे मन्त्र-मुग्ध होकर मुनिराज के चरणों में शान्त होकर दुम हिलाते हुए बैठ गए। पाठक! आप सोच सकते हैं कि जिस प्रकार भयङ्कर विषधर मंत्र के प्रभाव से विवश हो कर एक स्थान पर निस्तेज हो बैठ जाता है, उसी प्रकार मुनिराज की शान्तमुद्रा देख कर महाराज श्रेणिक के प्रशिक्षित आखेटक श्वान पूर्णत शान्त-चित्त हो गए। मुनिराज तपस्या में इतने तल्लीन थे कि उन्हें किसी भी भावी दुर्घटना की लेशमात्र आशङ्का या चिन्ता नहीं थी। जब राजा श्रेणिक ने देखा कि उनका प्रशिक्षित श्वान दल जो व्याघ्र की चपलता एवं क्रूरता से आखेट करने में दक्ष था–वह भी इस प्रकार शान्त हो गया तथा मुनिराज की प्रदक्षिणा दे रहा है, तो वह सोचने लगा इस धूर्त्त ने मेरे श्वानों के ऊपर मंत्रबल का प्रयोग कर उन्हें अवश बना दिया है। उनका क्रोध इतना प्रचण्ड

हो गया कि उन्होंने स्वयं शर-सन्धान द्वारा मुनि को प्राणदण्ड देने का निश्चय कर लिया। जिस समय महाराज ने क्रोध के वशीभूत होकर मुनि को मारने का उद्यम किया, उसी समय एक भयावह नागराज अपना विकराल फण उठाये साक्षात् काल रूप धारण कर प्रकट हो गया। श्रेणिक समझ गए कि वह नाग उनके लिए प्राणघातक सिद्ध हो सकता है, अतः उसका वध करना ही श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर उन्होंने तत्काल उसे यमलोक पठा दिया तथा उसका मृत कलेवर मुनिराज की ग्रीवा में डाल दिया।

पाठक! क्या आप जानते हैं कि महाराज श्रेणिक ने राजदर्प में किस प्रकार घोर अनर्थ किया, वह कितना घातक सिद्ध होगा? जो मनुष्य अपने राज्य-वैभव के बल पर निर्दोष मुनियों को सताता है, उसे नरकादि के अकल्पनीय दुःख सहन करने पड़ते हैं। घमण्डी अपने घमण्ड के बल पर अनीति के मार्ग पर निशङ्क हो बढ़ता जाता है, पर उसे इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि उसके इस कुमार्ग पथ पर जाने का दुष्परिणाम क्या होगा? इसी प्रकार महाराज श्रेणिक ने अपने राजमद के वशीभूत होकर महामुनि के ऊपर अपना क्रोध प्रकट किया था। उनके ऊपर अपने भयङ्कर श्वान दल को उकसाया तथा फिर मृत नाग को उनकी ग्रीवा में डाल दिया था। इस अधर्माचरण के द्वारा जैन धर्म के सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने अपने लिए 'महाप्रभा' नामक नरक का दुःख भोगने का पूर्णरुपेण निश्चित प्रबन्ध कर लिया। 'जैसी करनी वैसी भरनी' के अनुसार उन्हें सप्तम नरक में तैंतीस सागर की आयु पर्यन्त घोर कष्ट भोगना पड़ेगा एवं वहाँ उनका शरीर पाँच सौ धनुष का होगा। इधर महामुनि यशोधर ने जब देखा कि उनके गले में किसी ने मृत नाग का कलेवर डाल दिया है, तब उनका ध्यान अधिक गहराई तक पहुँच गया। अपने दुष्कृत्य से प्रसन्न हो कर महाराज अपने राजमहल लौट आए। उन्होंने अपने बौद्ध गुरुओं से सब समाचार कह सुनाया। बौद्ध गुरुओं की प्रसन्नता का पारावार न रहा। वे मुक्त कंठ से महाराज की प्रशंसा करने लगे। वे समर्थन करते हुए बोले— 'हे महाराज! आपने योग्य निर्णय कर के दोषी को उचित दण्ड दिया है।' इस प्रकार कह कर वे फूले नहीं समाए। वे सब नाम मात्र के साधु थे। क्या साधु का यही धर्म है कि वह राग-द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर की आराधना करे? साधु उसे नहीं कहते, तो प्रतिशोध की भावना रखता है। साधु अपने कष्ट सहने से भयभीत नहीं होता एवं न ही अन्य के कष्ट देख कर प्रसन्न होता है। जब उनके हृदय में समदर्शिता का भाव ही नहीं रहा, सुख-दुःख के लिए समानता नहीं रही, तो वे साधु के बाने में भयङ्कर भेड़िए हैं, जिनका काम हिंसा द्वारा अपनी उदर पूर्ति होता है। दो-तीन दिवस पर्यंत महाराज की रानी चेलना से भेंट नहीं हो पायी। चौथे दिन वे चेलना के महल में गए। मुनि के साथ किए हुए अपने दुष्कर्म का वर्णन करने में महाराज फूले नहीं समाए। जब चेलना ने महाराज द्वारा अपने गुरु के अपमान की सूचना पायी, तब उसकी सारी देह पत्रवत्

प्रकम्पित होने लगी। उसकी वाणी शिथिल हो गयी। उसने बड़े कष्ट से रुँधी हुई वाणी में कहा– 'हे महाराज! आपने यह क्या अनर्थ कर डाला? आप ने अपने लिए घोर नरक का मार्ग प्रशस्त कर लिया। हाय! मेरा जन्म लेना निरर्थक हो गया। हे भगवान! मैं कैसे इस पाप के गर्त राजमहल में भोग-विलास करूँ? हे ईश्वर! जन्म लेते ही क्यों नहीं मेरी मृत्यु हो गयी। कम से कम इस विधर्मी राजा के संसर्ग से तो बची रहती? हाय! हाय!! अब यहाँ एक क्षणभर भी श्वास लेना मेरे लिए महापाप का भागी बनना है? हे परमात्मा! मैं इस धरातल पर क्यों जीवित हूँ? क्यों नहीं मेरा प्राण विसर्जन हो जाता? हे भगवान! मैं कितनी अभागिनी स्त्री हूँ, जो इस प्रकार महापाप की गर्हित गाथा सुन कर भी जीवित हूँ। हे भगवन्! मेरा उद्धार कैसे होगा? विकराल वन-प्रान्तर में निवास उत्तम है, व्याघ्र-सिंहादिक हिंसक जीवों की निकटता श्रेयस्कर है, किन्तु धर्म रहित इस वैभवशाली राजमहल में एक क्षण भी निवास करना उचित नहीं है। हाय! अब मैं कहाँ जा कर अपने प्रिय धर्म की रक्षा कर सकूँगी। हे ईश्वर! केवल तेरा ही सम्बल है।'

इस प्रकार बिलखते हुए रानी चेलना करुण क्रन्दन करने लगी। महाराज के मुख पर गहन अशान्ति छा गई। उन्होंने रानी को समझाना शुरू किया– 'हे प्रिये! व्यर्थ में क्यों विलाप कर रही हो? उस कपटी मुनि के लिए क्यों अपनी अधीरता प्रकट कर रही हो? तुम निश्चय जानो कि मैं ने तो मात्र नाग का मृत कलेवर उसकी ग्रीवा में डाला था, तब इतनी तुच्छ-सी घटना के लिए तुम्हारा शोक करना उचित नहीं। उसने अपनी ग्रीवा से मृत नाग कब का निकाल कर फेंक दिया होगा? अब इसमें विह्वलता की क्या बात है? मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि वह उस स्थान पर भी नहीं होगा, उसने किसी अन्य स्थान हेतु पलायन कर दिया होगा।' महाराज के इस प्रकार आश्वासन देने पर भी रानी का हृदय अशान्त बना रहा। उसने कहा– 'हे प्राणनाथ! आप इस समय भ्रमजाल में फँसे हुए हैं। आप निश्चय जानिए कि जैन साधु सामान्य व्यक्ति नहीं होते हैं, जो आपत्तियों से विचलित हो जायें। वे अपनी समाधि से एक तिल भी तब तक नहीं टलेंगे, जब तक उन पर उपद्रव का शमन न हो जाए। वे उसी स्थान पर अपनी अखण्ड समाधि लगाए बैठे होंगे। हे स्वामी! आप यह घ्रुव सत्य मानिए–

चन्द्र टले सूरज टले, टले सिन्धु व्यापार पर मेरे गुरुदेव का, टले न घ्यान विचार।।

हे नाथ! हिमालय पर्वत कदाचित् चलायमान हो जाए, महासागर की मर्यादा भले ही भङ्ग हो जाए, अग्नि संयोगवश शीतल हो जाए अथवा सूर्य पूर्व के स्थान पर पश्चिम में उदित होना प्रारम्भ कर दे, किन्तु निर्ग्रन्थ जैन यति का ध्यान अटल है। किसी भी विघ्न-बाधा के उपस्थित होने पर दिगम्बर मुनि का तप-ध्यान कदापि भङ्ग नहीं हो सकता। आप समझते हैं कि

आपके द्वारा प्रताड़ना से वे विचलित होकर पलायन कर गए होंगे, पर मेरी धारणा है कि उनकी देह में जब तक प्राण है, तब तक वे दृढ़ता के साथ ध्यान में लीन रहेंगे। हे महाराज! आप मेरे गुरुवर को साधारण कोटि का मनुष्य न समझें। क्षमा धारण करने में उनकी तुलना स्वयं पृथ्वी से की जा सकती है। वे गम्भीरता में महासागर से भी बढ़े-चढ़े हैं। कर्मनाश करने में वे अग्नि की प्रचण्डता की समता करते हैं। उनकी निस्पृहता आकाश से अधिक है। उनका चित्त स्वच्छ जल के समान है। वे मेघ के समान प्राणियों का उपकार करने वाले हैं। आप नि:सन्देह स्मरण रखिए, यदि वे मेरे सच्चे गुरु होंगे; तो अपने ज्ञान, ध्यान एवं वैराग्य में दृढ़ता से तल्लीन होंगे। इसके विपरीत अपने तप-व्रत, ध्यान-योग एवं कष्ट से भयभीत होने वाले, मधु-माँस-मदिरादि के सेवन करने वाले महापापी, नीच, ढोंगी मेरे गुरु नहीं हो सकते। हे महाराज! आप के बौद्ध गुरु साक्षत् धर्म-विरोधी, सदाचार-हीन एवं बगुला-भक्ति की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। मैं नही समझती कि जो व्यक्ति अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं, वे अपना लोक-परलोक बिगाड़ कर भी ऐसे ढोंगियों की पोप-लीला का आदर क्यों करते हैं? सच तो यह है कि अन्याय, ढोंग एवं अनाचार को प्रश्रय देने के समान कोई अन्य गर्हित पाप नहीं।'

रानी चेलना के इस प्रकार युक्तियुक्त कथन से महाराज श्रेणिक को वाणी अवश्य हो गयी। उन्होंने बड़ी कठिनाई से कहा—'हे रानी! शान्त हो जाओ। तुम्हारा कथन यदि सोलहों आने सच है, तब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। चलो, वहाँ चल कर देखें कि मुनिराज क्या करते हैं?' मुनि के निकट जाने को अनुमोदना सुन कर रानी चेलना फूली नहीं समायी। इधर रानी चेलना मुनि के दर्शन के लिए व्यग्र होने लगी, उधर महाराज ने प्रमुख नागरिकों को भी संग चलने के लिए आज्ञा दे दी। रानी पालकी में बैठ कर महाराज, नागरिकों एव अङ्गरक्षक सेना रहित अल्पकाल में तपस्वी मुनिराज यशोधर के निकट पहुँच गयी।

पाठकगण! मुनिराज का समाचार जानने के लिए आप सब अधीर होंगे। अत: अब वहाँ का वर्णन कर रहे हैं। जिस समय महाराज श्रेणिक मुनि की ग्रीवा में मृत नाग को डाल कर अपने राजमहल लौट आये, तब उसी समय से यशोधर मुनि बाहर प्रकार की अनित्य भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। ऐसा नियम है कि जब तपस्वी मुनियों के ऊपर किसी प्रकार का उपसर्ग आ पड़ता है, तब वे चिन्तवन करने लगते हैं। अतएव उपरोक्त मुनि अपने मन में विचार करने लगे—'राजा ने मेरी ग्रीवा में नाग डाल कर मेरे साथ अनन्त उपकार किया है। जो तपस्वी मुनि चाहते हैं कि उनकी आत्मा कर्म रहित हो जाए, उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने कर्मनाश के लिए कठिन से कठिन उपसर्ग सहें अन्यथा समूल कर्मनाश सम्भव नहीं।

अतः इस राजा ने मुझे कष्टप्रद अवस्था में डाल कर मेरा परम उपकार किया है। देह से आत्मा भिन्न है। मेरी आत्मा मेरी देह से भिन्न रहती हुई पवित्र एवं चैतन्य-स्वरूप बन गयी है। निश्चय ही देह के कष्ट, दुःख, हर्ष एवं चिन्ताग्रस्त होने पर आत्मा के ऊपर उनका लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। मेरी समझ में यह नहीं आता कि इस देह को अधम, नाशवान, अपवित्र एवं पापों की जड़ जानते हुए भी संसार के बड़े-बड़े विद्वान इस पर अपना प्रेम प्रकट करने में क्यों नहीं हिचकते? जब कि इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। संसार मं प्रतिदिन ऐसी घटनायें होती हैं कि जब देह से आत्मा निकल जाती है तथा मृत कलेवर जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। देह आत्मा के साथ-साथ चली नहीं जाती। इस अहर्निश नश्वर देह के लिए 'हाय, हाय' करना मूर्खता नहीं तो भला क्या है? लोग अज्ञानवश कहा करते हैं कि इस देह में सुख-दुःख के होने से आत्मा के ऊपर भी उसका प्रभाव पड़ता है; किन्तु वे भूल कर रहे हैं। यह नश्वर देह एक पर्णकुटी के सदृश है एवं आत्मा गगन के तुल्य। भला पर्णकुटी में आग लगने से गगन तो विदग्ध होता नहीं है? अतः देह के सुख-दुःख से पवित्र आत्मा का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। आत्मा तो अजर-अमर है। मेरी नाशवान देह के सुख-दुःख मेरी आत्मा का कुछ भी बना या बिगाड़ नहीं सकते। मैं जानता हूँ कि आत्मा का स्वरूप चैतन्य एवं दोष रहित है। यह देह मल-मूत्र का आगार, अशुद्ध कर्मों का भंडार एवं कष्टों की साक्षात् आकर (खान) है। अतः ऐसी नाशवास देह से अनुराग नहीं रखना चाहिए।'

इस प्रकार द्वादश भावनाओं का चिन्तवन करते हुए यशोधर मुनि अपनी काया पर कठिन से कठिन उपसर्ग को झेलते हुए दृढ़ता के साथ तपस्या में संलग्न हो गए। सच है, अपने सत्य-सिद्धान्त पर अटल रहने से मनुष्य किसी प्रकार की परवशता का अनुभव नहीं करते।

चेलना की स्तुति का वर्णन

सुधी पाठकगण! जिस समय महाराज श्रेणिक एवं रानी चेलना सदल-बल तपस्वी मुनिराज यशोधर के समीप पहुँचे, तब उन्होंने मुनिराज को गहन समाधि में रत होकर प्रचण्ड तप करते हुए पाया। राजा-रानी ने भक्तिवश गद्‌गद् हो कर उनकी प्रदक्षिण देकर नमस्कार किया। वे दोनों मुनि पर उपसर्ग देख कर अत्यन्त दुःखित हुए, किन्तु उसी क्षण उनके उग्र तपश्चरण को विलोक कर वे फूले नहीं समाए।

रानी चेलना ने मुनिराज की ग्रीवा से मृत नाग के कलेवर को विलग किया। उस मृत नाग के कलेवर का भक्षण करने हेतु सहस्त्रों चींटियाँ मुनिराज की देह पर चढ़ आई थीं। चीनी के द्वारा चींटियों को पृथक् किया। चींटियों ने मुरिराज यशोधर

की काया को अपने दंश से खोखला कर दिया था। रानी चेलना ने मुलायम वस्त्र के द्वारा चींटियों को सावधानी से हटाया तथा उष्ण जल में भिगो कर महामुनि के घाव धोए। पीड़ा का शमन करने के लिए चन्दन का लेप कर दिया, जिससे घाव से उत्पन्न दाह दूर हो जाए। इसके पश्चात् वह राज-दम्पति मुनिराज के चरणों में श्रद्धा के साथ नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया। पाठकगण! उस समय रात्रिकाल था। रात्रिकाल में निर्ग्रंथ जैन मुनि वार्तालाप नहीं करते। सारी रात्रि महाराज श्रेणिक तथा उनके साथ आये हुए समस्त परिजन एवं अनुचर मुनिराज के उद्‌बोधन की प्रतीक्षा में वहाँ ठहरे रहे। जिस समय प्रातःकाल हुआ, पूर्व दिशा में भानु (सूर्य) पदार्पण हुआ, तब रानी चेलना ने मुनीश्वर यशोधर के चरणों को प्रक्षालित कर पुनः उनकी तीन बार प्रदक्षिणा दी। तत्पश्चात परम ज्ञानी, ध्यानी एवं कठिन तपस्वी उन मुनिराज के चरणों में नमस्कार कर मधुर शब्दों में प्रार्थना करते हुए वह बोली—

'हे भगवान्! समस्त संसार आप की पूजा करता है। आप अपने साथ शत्रुता अथवा मित्रता रखने वाले सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं। आपके लिए नाग अथवा पुष्पहार दोनों समतुल्य है। आप संसार सागर से पार लगाने में समर्थ हैं। हे प्रभो! दुखी संसारी जीवों की रक्षा करने वाले आप ही हैं। हे कृपालु! आप हमारे अपराध क्षमा कीजिए। हमने अज्ञानवश जो आपके साथ अक्षम्य धृष्टता की है, अब आपके अतिरिक्त उसे भला कौन क्षमा कर सकता है? मैं जानती हूँ तथा पूर्णविश्वास के साथ मानती हूँ कि आप सब के साथ वीतराग भाव रखते हैं। आप किसी के साथ राग-द्वेष का व्यवहार नहीं करते हैं। किन्तु आप का अपमान करने का जो शल्य हमारे हृदय में भरा हुआ है, उसे क्षमा कर अपनी महानता, सहृदयता तथा सदाशयता का परिचय दीजिए। सच तो यह है कि त्यागी मुनियों द्वारा किसी प्राणी का अपकार हो ही नहीं सकता। हे भगवन्! आपके समान हितैषी संसार में अन्य कोई नहीं है। मेघ के सदृश आप संसारी जीवों का उपकार करते हैं। वीरता, धीरता एवं धर्म भावना में आप अनुपमेय हैं। हम आपके किन-किन गुणों को प्रशंसा करें? हे प्रभु! आप क्षमा की साक्षात् मुर्त्ति हैं। आप के चरणों में हमारा बारम्बार नमस्कार है।' रानी द्वारा इस प्रकार अपनी स्तुति किए जाने के पश्चात् उन धीर-वीर परम वीतराग मुनिराज ने राजा-रानी दोनों पर समान भाव से अपना वात्सल्य भाव प्रकट किया तथा परम उपकारी उपदेश दिया।

महामुनि का उपदेशामृत

वे बोले—'हे राजन्! मनुष्य के लिए इस संसार में धर्म के समान कोई अन्य मित्र नहीं है। धर्म के द्वारा ही मनुष्य धन,

ऐश्वर्य, मान-मर्यादा, उत्तम कुल में जन्म का अधिकारी बनता है तथा कर्मों का नाश करता है। अतः संसार के समस्त श्रेष्ठ पुरुष निरन्तर धर्म की सेवा किया करते हैं।' प्रिय पाठक! सभी घटनाओं का एक विचित्र संयोग होता है। भाग्यचक्र के सम्मुख सब को नतमस्तक होना पड़ता है। आप विचारिये तो सही, महाराज श्रेणिक एक कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी थे। वे जैन धर्म के कट्टर शत्रु थे। देखिए, भाग्यचक्र से वे मुनि के दर्शन हेतु गए। इसी भाग्यचक्र के वशीभूत हो रानी ने बौद्ध गुरुओं की कठिन परीक्षा ली, जिससे महाराज की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो गयी। इसी भाग्यचक्र के फेर में क्रोध के आवेश में आ कर मगधाधिपति ने जैन मुनि का अपमान किया था। महामुनि की ग्रीवा में नाग डाल दिया था। तब रानी ने राजा को सन्मार्ग बतलाया। भाग्य से ही राजा-रानी रात्रिकाल में महामुनि के दर्शन करने के लिए गए। वहाँ जा कर दोनों ने समान रूप से धर्मोपदेश सुने। प्रिय पाठकों! ये समस्त बातें शुभाशुभ कर्मोदय से ही हुईं। यशोधर मुनि ने जो धर्मोपदेश दिया था, उससे स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति निश्चित हो सकती है। उस उपदेश में लोक तथा परलोक सुधारने का स्पष्ट मार्ग दर्शाया गया था। वह उपदेश तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, इन्द्र, अहमिन्द्र इत्यादि पद प्राप्त करवाने की क्षमता रखता था। इससे यह तथ्य भी प्रकट होता था कि महाराज श्रेणिक भविष्य में एक महान तीर्थङ्कर होंगे। इस प्रकार धर्म-विरोधी मनोभाव रखनेवाले महाराज श्रेणिक को वह उपदेश धर्म-भावना में अग्रसर कराने वाला था।

दशम् अध्याय

सकल सिद्ध मुनियों के स्वामी कर्म रहित कहलाते हैं। आत्मा-विवेचन के ज्ञाता वे ध्यान अखण्ड लगाते हैं।।
महाराज श्रेणिक को मुनि-पग शीश झुकाते पाता हूँ। उन्हीं यशोधर-मुनि चरणों में नमस्कार कर जाता हूँ।।

महाराज की आत्म-ग्लानि

महाराज ने देखा कि महामुनि यशोधर ने समान भाव से दोनों को आशीष दी है, किसी के साथ भेदभाव नहीं किया है। उनकी समदर्शिता का भाव देख कर महाराज ने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि ये कोई साधारण पुरुष नहीं हैं, किन्तु उच्च कोटि के महामुनि हैं। साधारण पुरुष से ऐसी आशा रखना बालू से तेल निकालने के समान है। इनके ऊपर राग-द्वेष का रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा है। इन्होंने उनके सदृश अपराधी के संग अपनी विशाल हृदयता, वीतरागता तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार का परिचय देकर अपनी महानता दर्शायी है। इस प्रकार सोचते हुए महाराज अपने मन में विचार करने लगे—'ये मुनिराज धन्य हैं, इनकी ग्रीवा में मैं ने जान-बूझ कर क्रोध में आ कर मृत नाग को डाल दिया था, किन्तु इन्होंने मेरे समान

अधम अपराधी के ऊपर क्रोध के स्थान पर अपना स्नेह प्रकट किया। इन्होंने कठिन पीड़ा सही, किन्तु मेरे ऊपर रंचमात्र भी क्रोध प्रकट नहीं किया। अपने क्षमादान से अपनी सहृदयता ही प्रकट करते रहे। इनकी दृष्टि में हम दोनों समतुल्य रहे। जहाँ मैं ने इनकी ग्रीवा में मृत नाग डाला, इनकी घोर निन्दा की, इनके ऊपर अपने भयङ्कर श्वाव उकसाये; वहाँ चेलना ने श्रद्धा-भक्ति के साथ सेवा की, इनकी ग्रीवा से नाग को पृथक् कर दिया, पर फिर भी निर्विकार भावी महामुनि ने समान रूप से हम दोनों को अपना आशीर्वाद प्रदान किया, एक समान दोनों पर स्नेह दर्शाया। हे ईश्वर! मेरे सदृश इस संसार में अन्य कोई पापी नहीं है। मेरा उद्धार कैसे होगा? हाय! हाय!! मैं ने घोर दुष्कर्म किया है। ऐसे परम ज्ञान महामुनि के साथ घोर अन्याय किया है। हे भगवन! जब मैं ने अपने दुष्कर्म की ओर देखता हूँ, तब मेरी आत्मा काँप उठती है। सच तो यह है कि अपने दुष्कर्म से मुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। मैं जानता हूँ कि मेरे दुष्कर्म इतने प्रबल हैं कि जिनसे मुझे सप्तम नरक के घोर कष्ट सहन करने पड़ेंगे, तिस पर भी मेरा उद्धार नहीं होगा। सच है, निंद्य कर्मों का फल भी वैसा ही होता है। हे परमात्मन्! मैं किस प्रकार अपने भीषण पाप का प्रायश्चित करूँ। अब एक ही उपाय मेरे लिए शेष है, जिससे मेरे चित्त में कुछ सन्तोष हो सकता है। वह यह कि मैं अपने ही हाथों से अपने खड्ग द्वारा अपना पापी मस्तक विछिन्न कर डालूँ। हा! अब इसके अतिरिक्त मैं भला क्या करूँ। अथवा किसी उपाय से मुनिराज के चरणों में नमन कर अपने गुरूतर अपराध के लिये क्षमा याचना करूँ। मुनिराज का स्वभाव अत्यन्त उदार है। वे अवश्य ही मुझे क्षमा कर देंगे।' इस प्रकार सोचते हुए महाराज श्रेणिक का हृदय अपने घोर दुष्कर्म का स्मरण करने के कारण शोक-संतप्त हो गया। उनके नेत्रों से अवरिल अश्रु-धारा प्रवाहित हो चली। उसका शीश लज्जा के कारण अवनत हो गया। हाठत् उनके मुख से शब्द निकल पड़े—'हे प्रभो! त्राहिमाम् मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। मैं घोर पापी हूँ।'

श्रेणिक के पूर्व जन्म की कथा

महाराज श्रेणिक से ऐसे आत्म-अवज्ञा के शब्द सुन कर मुनिराज ने उन्हें शान्त करते हुए कहा—'हे राजन्! तुम्हारे हृदय में इस समय पापपूर्ण विचार उठ रहा है। तुम आत्महत्या करना चाहते हो। जरा अपने हृदय में सोचो तो क्या आत्महत्या से हेय संसार में कोई पाप है? क्या तुम समझते हो कि आत्मघात के द्वारा अपने पाप का शमन कर लोगे? यह तुम्हारी सर्वथा भूल है। हे राजन्! कहीं पाप के द्वारा पाप का शमन होता है? संसार में ऐसे बहुत से अज्ञानी मनुष्य हैं, जिनकी धारणा होती है कि आत्महत्या के द्वारा आत्मा का उद्धार होता है, परलोक में सुख-वैभव की प्राप्ति होती है। किन्तु हे नरपति! उनकी यह

धारणा एकदम भ्रान्तिपूर्ण है, पापयुक्त है एवं है लोक-परलोक की विनाशक दुर्बुद्धि। सुख की आशा में आत्मघात करना क्लेश को निमन्त्रण देना है। क्लेश के कारण अशुभ का बन्ध होता है, जिससे भयङ्कर नरकादि के घोर दु:ख सहन करने पड़ते हैं। अतः यदि तुम अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हो, अथवा अपने पाप-कर्मों का उन्मूलन चाहते हो एवं चाहते हो शान्ति पाना, तो अपने हृदय में आत्मघात करने का कलुषित विचार कदापि न लाना। निश्चय समझो कि आत्मघात से तुम्हारे पापों का कभी उन्मूलन नहीं हो सकता। यदि तुम शान्ति के इच्छुक हो, तो अपनी आत्मा का उद्धार करो। अपने पाप कर्म के लिए शास्त्रानुसार प्रायश्चित कर शांति प्राप्त करने का उद्योग करो, तभी तुम्हारा कल्याण है। अन्यथा तुम्हारे आत्मघात करने से तुम्हारा हितसाधन कभी नहीं हो सकता।'

महामुनि का उपदेश सुन कर महाराज श्रेणिक के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। उन्होंने रानी चेलना से कहा–'हे चेलने! मैं घोर आश्चर्य में पड़ा हुआ हूँ। इसका कारण यह है कि मुनिराज ने मेरे हृदय की भावना कैसे जान ली? रानी, अब मेरी समझ में यह बात आ गयी कि ये सामान्य पुरुष नहीं हैं, वरन् परम सिद्ध महामुनि हैं।' चेलना ने गम्भीरता के साथ उत्तर दिया–'हे प्राणनाथ! वे महामुनि ज्ञान के अनन्त भंडार हैं। उनके ज्ञान में चराचर की घटनायें हस्त-रेखाओं के सदृश स्पष्ट हैं। हे नाथ! मुनिराज ने अपने परम पवित्र अनन्त ज्ञान-भण्डार के द्वारा आप की समस्त मनोभावनायें ज्ञात कर ली हैं। इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। आप पूर्ण रूप से विश्वास रखें कि मुनिराज आपके पूर्व जन्म का वृतान्त भी कह सकते हैं। यदि आपको जिज्ञासा हो, तो प्रश्न कर सकते हैं? हे नाथ! महामुनि के ज्ञान की महिमा अपरम्पार है।' रानी के मुख से महामुनि की ज्ञान-महिमा सुन कर महाराज के नयनों से अजस्त्र अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। उनके हर्ष का पारावार नहीं रहा। राजा श्रेणिक ने मुनिराज के करबद्ध विनती की–'हे महामुनि! आप कृपा कर मेरे पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहिए। मैं अपने पूर्व-जन्म में क्या था, कहाँ था एवं इस जन्म में कैसे आया हूँ?'

यशोधर मुनि ने महाराज से मधुर शब्दों में कहा–'हे राजन्! यदि तुम अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त मुझसे सुनना चाहते हो, तो ध्यानपूर्वक सुनो। इसी लोक में जम्बूद्वीप नामक एक महाद्वीप है, जिसकी चौड़ाई एक लक्ष योजना है। वह समस्त संसार के महाद्वीपों में अपनी सानी नहीं रखता। वह द्वीप गोलाकार में चन्द्रमा को भी परास्त करता है। उसी द्वीप में सुमेरु नामक एक पर्वत है। सुमेरु पर्वत से पश्चिम की ओर भरत क्षेत्र है। हे राजन्! कुछ की तो धारणा है कि स्वर्ग के निरावलम्ब स्थित होने के कारण उसका एक अङ्ग भरतक्षेत्र में गिर कर आर्यखण्ड नामक एक रमणीय सुन्दर स्थान बन गया है। इसी

आर्यखण्ड में सूर्यकान्त नामक एक देश है, जिसकी तुलना विश्व के किसी भी देश से नहीं की जा सकती। उसकी शोभा का वर्णन असम्भव है। उसकी प्राकृतिक सुषमा को निहार कर प्रचण्ड मार्तण्ड भी निस्तेज हो जाता है। उसी सूर्यकान्त देश में कुक्कुट सम्पात्य नामक एक ग्राम है। वहाँ की उत्तम नारियाँ अपने पुरुषों के चित्त सदा प्रसन्न रखनेवाली हैं। हे राजन्! उस सूर्यकान्त देश में सर्वदा धन-धान्यों की प्रचुरता रहती है। वहाँ पर अपार धनवानों के भव्य प्रासाद निर्मित हैं। उसी देश में सूरपुर नामक एक सुन्दर नगर भी है, जो अनेक उत्तम-उत्तम सरोवर, कुएँ एवं धन-धान्य से परिपूर्ण है। सूरपुर नगर की हाट में रत्नों की ढेरी इस प्रकार से लगी रहती है, जिसे देख कर कहना पड़ता है कि जल रहित समुद्र वहाँ साक्षात् आकर सेवा कर रहा है। उक्त नगर की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के शिखर पर स्थापित सुवर्ण कलश मनोहरता में चन्द्रमा की समता करते हैं। वहाँ के भव्य जिनालयों में श्रद्धालु भक्तों की भीड़ लगी रहती है। वे जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर अपना लोक तथा परलोक सँवारा करते हैं। हे मगधेश्वर! जिस प्रकार गवाक्षों से निकलता हुआ धुँआ देख कर मोर मेघ के भ्रम में आनन्द के साथ नाचने लगते हैं, उसी प्रकार वहाँ के कई श्रद्धालु भक्त सांसारिक भोगों को त्याग कर कर्मनाश कर भव-बन्धन से मुक्त हो जाते है।

एक समय उसी नगरी में राजामित्र नामक नृपति था। उसके प्रजा पालन, न्याय-नीति एवं सद्-व्यवहार से उसके शत्रु सदा ही उससे भयभीत रहते थे। उसकी पत्नी का नाम श्रीमती था। उनके सुमित्र नामक एक पुत्र था। सुमित्र की प्रतिभा विलक्षण थी। वह नीति-शास्त्र में निपुण था, उसका चरित्र उज्जवल था। वह विचारवान था एवं था अत्यन्त रूपवान। राजामित्र के मतिसागर नामक मंत्री था, जो राज्य-कार्य सँभालने में बड़ा चतुर था। नीतिमार्ग पर चलने के कारण प्रजा सुख की नींद सोती थी। मंत्री की पत्नी का नाम रूपिणी था, जो अत्यन्त रूपवती थी। उनके सुषेण नामक एक पुत्र था। वह अपने माता-पिता का आज्ञाकारी, सदाचारी एवं विचारवान था। राजकुमार तथा मंत्रीपुत्र एक साथ क्रीड़ा करते थे। पर राजपुत्र होने के कारण सुमित्र का स्वभाव बहुत उग्र था। उसे इस पर बड़ा अभिमान था कि वह राजा का पुत्र है। अपने राजमद के अभिमान में चूर होकर वह सुषेण के साथ अवहेलनापूर्वक व्यवहार किया करता था। सुषेण भला क्या करता? वह धैर्य का घूँट पीकर उसका अपमानजनक व्यवहार सह लेता था। इस प्रकार राजपुत्र सुमित्र मंत्रीपुत्र सुषेण को सदा सताया करता था। उसके अत्याचार के चलते मंत्रीपुत्र के नाकोंदम आ गया था। एक दिन ऐसी घटना हुई कि दोनों एक सरोवर में स्नान करने गये। सुमित्र का स्वभाव तो उद्धत था ही, जिस समय दोनों नेत्र मूँद कर जल के नीचे डुबकी लगाते, तब सुमित्र सुषेण को बारम्बार डुबोता। मंत्रीपुत्र को बहुत कष्ट होता रहा, किन्तु वह सब कुछ सहता गया। समयानुसार राजामित्र की मृत्यु हो गयी।

सुमित्र ही अपने पिता के स्थान पर राजगद्दी पर बैठा। सुमित्र का राजा होना सुषेण के लिए तो एक महान दु:खद घटना थी। उसने अपने मन में विचार किया कि सुमित्र तो मेरे प्राणों का ग्राहक है। वह बड़ा क्रोधी, ईष्यालु एवं उग्र स्वभाव का है। उसने बाल्यावस्था में मुझे सताया है। जब उसकी निष्ठुरता के कृत्य स्मरण हो आते हैं, तब मेरी देह रोमान्चित हो उठती है। उस समय तो वह राजगद्दी पर आसीन नहीं था, तब उसकी ऐसी दशा थी। अब राजा होने पर वह मेरे साथ अधिक कठोरता के साथ व्यवहार करेगा? सच है, एक तो करेला यों ही कटु होता है, फिर जब उसकी लता नीम पर चढ़ जाती है—तब क्या पूछना? उसके राज्य-शासन में मेरा निर्वाह कहाँ सम्भव होगा? इस प्रकार अपने मन में विचार कर सुषेण ने अपने घरद्वार एवं प्रिय परिवार की मोह-ममता त्याग कर जैन धर्म में दीक्षित होकर वन में जाकर कठिन तपस्या करना प्रारम्भ की। अपने उग्र तप के प्रभाव से सुषेण महामुनि हो गये। उधर राजा सुमित्र अपने राज-कार्य में अत्यन्त व्यस्थ रहने के कारण अपने परम मित्र सुषेण का विस्मरण कर बैठे।

एक दिवस राजा सुमित्र को बालसखा सुषेण का स्मरण हो आया। वह चिन्तित होकर विचार करने लगा कि अहो, चिरसंगी बालसखा से सुदीर्घ काल पर्यंत सम्भाषण तक नहीं हुआ? उसने अपने एक अनुचर से सुषेण के सम्बन्ध में जिज्ञासा की—'अरे! बहुत दिनों से मेरा मित्र सुषेण नहीं आया? वह कुशल से तो है न?' महाराज के इस प्रकार प्रश्न करने पर सेवक ने करबद्ध निवेदन किया—'हे पृथ्वीनाथ! आपके मित्र सुषेण ने निर्ग्रंथ दीक्षा ले ली है! वे दिगम्बर मुनि हो कर संसार की मोह-ममता को त्याग कर वन में जाकर तपस्या कर रहे हैं। हे अन्नदाता! अतः इधर उनका राजमहल में आगमन नहीं हुआ।' सच है, हम किसी व्यक्ति के अभाव में ही उसकी गुण-गरिमा का मूल्याङ्कन करते हैं। जब तक वह अपने सम्मुख है, तब तक हम सदा उसकी अवहेलना किया करते है, तिस्कार एवं घृणित व्यवहार से उसका अपमान करते हैं। किंतु जब वहीं मनुष्य हमारे नेत्रों के सम्मुख से ओझल हो जाता है अथवा कहीं अन्यत्र चला जाता है, तब हमारे चित्त में अपमानित, तिरस्कृत एवं पीड़ित व्यक्ति के अभाव का अनुभव होने लगता है। उसी समय हम उसका स्मरण कर गुणगान करने लगते हैं। उसकी प्रशंसा कर अपने वियोगी हृदय को शान्त करना चाहते हैं।

सेवक के मुख से इस प्रकार सुन कर राजा सुमित्र के हृदय में बहुत ग्लानि हुई। वे अपने मित्र सुषेण के लिए दु:ख का अनुभव करने लगे। अन्त में राजा को सूचना मिली कि महामुनि सुषेण उनके नगर के बाह्यवर्ती उद्यान में आये हुए हैं। ऐसा शुभ सम्वाद सुन कर राजा की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। राजा का कमलरूपी हृदय अपने प्रिय मित्र के शुभागमन का

सुसम्वाद पा कर प्रफुल्लित हो उठा। राजा ने अपने नगर में मुनि के दर्शनार्थ चलने के लिए घोषणा करवा दी। वह स्वयं गजराज पर आरूढ़ हो कर महामुनि सुषेण के निकट दर्शनार्थ चलने गये। उसने श्रद्धा के साथ मुनि के समीप जा कर उनको तीन प्रदक्षिणा दीं, उनके पवित्र चरणों में नम्रता के साथ नमस्कार किया। उनकी ध्यानस्थ अवस्था पर बिना विचार किये ही उसने कहना प्रारम्भ किया—'प्रिय सुषेण! यह क्या कर लिया? क्या मेरे इतने बड़े राज्य में कोई स्थान नहीं था कि समस्त सुख वैभव को ठोकर मार कर बिना मुझे सूचति किये ही मुनि बन जाने का निश्चय कर लिया। मित्र! अब भी सुयोग है, मैं अपना आधा राज्य बाँटने को प्रस्तुत हूँ, आनन्द के साथ सुखभोग करो। तत्काल इस सन्यासी वेश को त्याग दो। मैं नहीं समझता कि संसार में जो बुद्धिमान व्यक्ति होता है, वह इस प्रकार सहज में ही प्राप्त राज्य-वैभव को त्याग कर वन में जाकर क्यों उग्र तपस्या करेगा?'

राजा के इस प्रकार कहने पर महामुनि सुषेण ने कहा—'हे राजन्! मैं चाहता हूँ कि मेरी आत्मा अपने आगामी भव में अविनाशी शान्ति सुख की प्राप्ति करे, इसलिए तपस्या कर रहा हूँ। मैं सच्ची शान्ति का इच्छुक हूँ। मनुष्य अपने कठिन तप के द्वारा मोक्ष का अक्षय सुख प्राप्त कर सकता है। हे राजन्! तपस्या के द्वारा संसार के सुख, ऐश्वर्य, राज्य एवं विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। अतः तपस्या ही मानव का कर्त्तव्य है।' महामुनि के निस्पृह वचन सुन कर राजा सुमित्र ने पुनः करबद्ध निवेदन किया—'हे मुनिराज! यदि आप तपस्या करने से विमुख नहीं होंगे, तो मेरा एक अनुरोध अवश्य स्वीकार करें। आप कृपा कर मेरे राजप्रासाद में आहार लेने के लिए अवश्य आयें।' महामुनि सुषेण ने राजा के मोहयुक्त वचन सुन कर कहा—'हे राजन्! मैं आप के यहाँ आहार ग्रहण करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। इसका कारण यह है कि दिगम्बर वेशधारी मुनियों के लिए संकेतपूर्वक आहार ग्रहण करना सर्वथा वर्जित है। जिस आहार के बनाने में स्वयं या किसी अन्य के द्वारा मन-वचन-काया से 'उत्तम है' इत्यादि अनुमोदना अथवा सहायता ली गयी हो, उसे दिगम्बर वेशधारी मुनि कदापि ग्रहण नहीं कर सकते। उनके लिए प्रासुक आहार ही योग्य होता है। किसी मुनि के उद्देश्य से बनाया हुआ आहार ग्रहण करने योग्य नहीं रहता। दिगम्बर वेशधारी मुनि सदा अतिथि होते हैं अर्थात् उनके आहार ग्रहण करने की कोई निश्चित तिथि नहीं होती। तभी वे सच्चे दिगम्बर मुनि कहलाने के योग्य हो सकते हैं। उनके लिए निमन्त्रण की आवश्यकता नही रहती। हे राजन्! जो मुनि नियमानुसार नहीं चलते, जो निश्चित समय अथवा स्थान में आहार लेते हैं, वे अज्ञानी एवं स्वाद-लोलुप हैं। जैन-सिद्धान्त के अनुसार आचरण में मैं सदैव अत्पर हूँ। हे राजन्! मैं उसके नियमों के विरुद्ध अन्य कुछ भी नहीं कर सकता।' राजा समझ गये कि अब सुषेण कोई सामान्य मनुष्य नहीं रहा, वह संसारी वैभव-सुख से सर्वदा निस्पृह महामुनि बन गया है।

राजा ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह मुनि के चरणों में नमस्कार कर नगर में लौट आया। राजमहल में आ कर राजा ने विचार किया कि यदि मेरे नगर में मुनिराज सुषेण को कहीं आहार नहीं मिलेगा, तब वे मेरे यहाँ आ कर अवश्य आहार ग्रहण करेंगे। ऐसा विचार कर उसने समस्त नगर में मुनि को आहार न देने की कठोर राजाज्ञा प्रसारित कर दी तथा स्वयं मुनि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिनों के बाद महामुनि सुषेण ने अपने दो पक्ष के उपवास की पारणा के लिए नगर में प्रवेश किया। वे कई गृहस्थों के घर विधिवत् आहार ग्रहण करने के लिए गये, किन्तु कठोर राजदण्ड के भय के कारण किसी ने उन्हें आहार हेतु नहीं पड़गाहा। इस प्रकार किसी के यहाँ विधिवत् आहार के नहीं मिलने के कारण महामुनि प्रसन्न हृदय से चार हाथ प्रमाण भूमि को देखते हुए राजमहल में आहारार्थ पहुँचे। किंतु दुर्भाग्य से राजमहल में भी किसी ने महामुनि सुषेण को आहार हेतु नहीं पड़गाहा, क्योंकि उसी समय राजा सुमित्र एक शत्रुपक्ष के दूत से कुछ आपत्तिजनक सम्वाद पाकर चिन्तित होने के कारण उन्हें देख नहीं पाये। राजदण्ड के भय से राजमहल के अन्य लोगों ने मुनि को आहार हेतु नहीं पड़गाहा। अपना प्रबल अन्तराय समझ कर महामुनि ने राजमहल से वन की ओर प्रस्थान किया। वन में जाकर महामुनि सुषेण ने पुनः दो पक्ष का प्रोषध-व्रत धारण कर लिया। इस बार भी दो पक्ष के बीत जाने पर मुनिराज आहार लेने के लिए नगर में आये। राजाज्ञा के कारण समस्त नगर में किसी ने मुनिराज को आहार नहीं दिया। विचरण करते हुए मुनिराज राजमहल की ओर आये। उसी समय राजा के एक हस्ती ने बन्धन तोड़ कर समस्त नगर में आतङ्क उत्पन्न कर दिया था। फलतः राजा सुमित्र उसके शमन हेतु उद्योग में व्यस्त थे। अतः इस बार भी महामुनि ने अपना भोजनांतराय समझ वन में जा कर पुनः दो पक्ष का प्रोषध व्रत धारण कर लिया। इस बार भी महामुनि अपने व्रत के पूर्व होने पर आहार ग्रहण करने के लिए नगर में आये, पर आहार न देने की राज्याज्ञा से किसी गृहस्थ ने उन्हें आहार नहीं दिया। इस बार जिस समय वे आहार लेने के लिए राजमहल की ओर आ रहे थे, उसी समय राजमहल में भीषण अग्निकाण्ड हो जाने से राजा सुमित्र उसे शमित करने (बुझाने) में व्यस्त थे तथा महामुनि का आगमन न जान पाए। अतः पुनः बिना आहार लिए महामुनि वन में लौट आये। जिस समय नगर-निवासियों ने महामुनि सुषेण को बिना आहार ग्रहण किए वन की ओर जाते हुए देखा, उस समय अत्यन्त दुखी होकर उन्होंने कहा– 'देखो! ये महामुनि आहार नहीं मिलने के कारण कितने दुर्बल हो गए हैं, इनकी देह सूख कर काँटा हो गयी है। यहाँ का राजा इतना दुष्ट है, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। अब तो उसकी नीचता की परकाष्ठा हो गयी है। वह महामुनि के आहार में प्रत्यक्ष अन्तराय करवा रहा है। उसने मुनिराज को आहार नहीं देने की कठोर आज्ञा प्रसारित करवा रखी है। हम लोग क्या करें, इन्हें कैसे आहार दें? राजा न तो स्वयं आहार देता है एवं न ही अन्य किसी को देने देता है।'

'न देने की हमें आज्ञा, न आहार स्वयं देता है। सता कर यति-मुनिन्द्रों को, निरर्थक बन्ध लेता है।।'

जब महामुनि सुषेण ने मार्ग में लोगों का यह वार्तालाप सुना, तब वे आहार नहीं मिलने के कारण अपने ईर्यापथ ध्यान से चलायमान हो गए। वे अत्यन्त क्रोधित हो कर अपने मन में विचार करने लगे—'राजा सुमित्र कितना अनाचारी है। अभी तक उसकी दुष्ट प्रकृति परिवर्तित नहीं हुई। देखो, उस दिन कितना मायाचरण कर रहा था। उसने मुझे बालपन में तो सताया ही तथा जब उसके अत्याचार से विरक्त होकर मैं ने उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर तपस्या करना प्रारम्भ किया, तब भी उसकी क्रूरता में कोई अन्तर नहीं आया। संसार भर में उसके समकक्ष दुष्ट कोई अन्य राजा दिखलायी नहीं देता।' राजा के दुर्व्यवहार पर महामुनि के क्रोध का पारावार न रहा। क्रोध से वे प्रचण्ड अङ्गार हो रहे थे। उन्होंने क्रोधावेश में ही एक पत्थर में ठोकर मारी। ठोकर लगते ही महामुनि सुषेण धड़ाम से पृथ्वी पर गिर कर स्वर्ग सिधारे। अशुभ निदान से इस प्रकार मृत्यु होने से मुनिराज सुषेण को व्यन्तर देव की योनि मिली।

महामुनि सुषेण के स्वर्गारोहण का दु:खद समाचार सुन कर राजा सुमित्र को हार्दिक सन्ताप हुआ। उनको शोक-सागर में निमग्न देख कर मंत्रीगण शोक प्रकाश करने लगे। राजा के हृदय में महामुनि सुषेण के लिए इतना शोक उत्पन्न हुआ कि वे राज्य-सुख से विरक्त होकर तपस्या करने चले गए। पर कुतप (मिथ्याज्ञानवश) करने के कारण वे भी मरणोपरान्त व्यन्तर देव ही हुए। हे राजन्! वहाँ अपनी आयु पूर्ण कर अब राजा सुमित्र का जीव तेरे रूप में उत्पन्न हुआ है। महामुनि सुषेण का जीव तुम्हारी रानी चेलना के गर्भ से उत्पन्न होकर तुम्हारे साथ सदैव शत्रुता का भाव रखेगा। उसका नाम कुणक होगा।' जब महाराज ने यशोधर महामुनि के मुख से अपने पूर्व जन्म (भव) की कथा सुनी, तब उसे अपने पूर्व जन्म की समस्त घटनाओं का चलचित्रवत् स्मरण हो आया।

महामुनि की प्रशंसा

महामुनि की प्रशंसा करते हुए महाराज श्रेणिक अपने मन में विचार करने लगे—'अहो! यशोधर महामुनि का ज्ञान अनन्त है। ये मोक्ष-मार्ग के प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। इनकी धीरता, सहृदयता एवम् सहनशीलता अनुपमेय है। इनके समान संसार में कोई ध्यानी एवं क्षमाशील साधु दिखलाई नहीं देता। श्री जिनेन्द्र भगवान के प्रखर प्रभाव की अखण्ड ज्योति त्रिभुवन में निराली है। जिनागम में वर्णित सभी सिद्धान्त सत्य की प्रत्यक्ष प्रतिमा हैं। इनके उपदेश में जो जीवादि तत्वों का वर्णन है, उससे परे समस्त मिथ्या तत्व हैं। ये अपने व्रत में इतने दृढ़ हैं कि इनकी स्पर्द्धा त्रैलोक्य में असम्भव है। यशोधर मुनिराज साधकों के

योग्य समस्त आदर्श लक्षणें से युक्त है।' अब महाराज श्रेणिक की विचारधरा अन्य दिशा की ओर मूड़ गयी वे सोचने लगे कि बहुत-से पाखण्डी साधु भोलेभाले लोगों की आँखों में धूल झोक कर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। संसार में जितने ऐश्वर्य एवं सुख-वैभव के लिए लालायित विषयी, लम्पट, साधु वेशधारी, ढोंगी रंगे हुए श्रृगाल हैं, वे गुरु होने के योग्य कदापि नहीं हैं। उनके सहारे भवसागर में बेड़ा पार नहीं हो सकता। इस प्रकार विचार करते-करते उनके हृदय में आत्मा की वस्तु-स्थिति प्रकट हो गयी। उन्होंने श्रावक के व्रत ग्रहण कर महामुनि के चरणों में श्रद्धा एवं भक्ति के साथ नमस्कार किया। महाराज श्रेणिक ने रानी चेलना के साथ महामुनि की स्तुति कर प्रसन्नता का अनुभव किया। इस प्रकार राजदम्पति राजमहल में लौट आये। तभी से महाराज श्रेणिक जिनेन्द्र भगवान की पूजा-अर्चना में अपना अधिक समय देने लगे। परिणामस्वरूप महाराज की धवल कीर्ति ध्वाज दिग्-दिगान्तर में फहराने लगी। महाराज श्रेणिक भी पूर्ववत् शांति के साथ सुचारु रूप से अपना राज्य-शासन कार्य करते रहे।

बौद्ध गुरुओं की शिक्षा

उधर बौद्ध गुरुओं को जब यह सूचना मिली कि महाराज श्रेणिक ने किसी जैन मुनिराज के उपदेश से प्रभावित होकर जैनधर्म ग्रहण कर लिया है, तब उनके होश हिरण हो गए। उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। वे अविलम्ब महाराज के निकट आये एवं उपदेश देने लगे—'हे महाराज! आप ने यह क्या अनर्थ कर डाला। आप तो बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु एक महान स्तम्भ थे। उसके ऊपर आपकी जैसी दृढ़ श्रद्धा थी, उसे देख कर हम सभी आपकी प्रशंसा करते थे। किन्तु आपके जैन धर्म में दीक्षित हो जाने से आज हम इतने आश्चर्यचकित हो रहे हैं कि उसका वर्णन शब्दों द्वारा असम्भव है। आपने बौद्ध धर्म के सदृश उत्तम धर्म त्याग कर जैन धर्म कैसे स्वीकार कर लिया? अभी तक तो पुरुषों ने नारियों के ऊपर शासन किया है, किन्तु हम तो यहाँ उल्टी गङ्गा बहती देख रहे हैं। वास्तव में आपने एक नारी के कथन मात्र से बौद्ध धर्म के समान सर्वश्रेष्ठ हितैषी मार्ग से विमुख हो कर जैन धर्म को ग्रहण कर अपनी पराजय ही स्वीकार कर ली है। अभी तक कुपथगामिनी नारियों को पुरुष सन्मार्ग पर लाते रहे हैं, पर त्रिया-चरित्र के वशीभूत होकर वे स्वयं धर्म भ्रष्ट नहीं हुए हैं। हे राजन्! जो पुरुष बिना सोचे-समझे केवल रूपवती पत्नी की वाक्पटुता पर मुग्ध हो कर अपने परम्परिक धर्म का परित्याग कर अन्य धर्म को स्वीकार करता है, उसकी गणना बुद्धिमानों में नहीं की जाती। नारी की इच्छा के अनुकूल चलनेवाले मनुष्य की सर्वत्र निन्दा होती है। आपके समान न्यायनिपुण, बुद्धिमान एवं सद्विचार रखनेवाला मनुष्य अपने प्राणप्रिय धर्म का परित्याग कर अन्य धर्म को कैसे

स्वीकार कर सकता है—यह हमारी समझ के परे है। हे महाराज! यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि आप बौद्ध रहें या जैन? विडम्बना तो यह है कि आपने बौद्ध साधुओं को जैन मुनियों के सामने अल्प-ज्ञानी समझ लिया है, जिसकी उचित परीक्षा होनी चाहिए। यदि शास्त्रार्थ में हम उनसे अल्प-ज्ञानी हो जायें, तो आप निःशक होकर जैन धर्म में बने रहें। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हमारे सम्मुख उनकी क्षमता नहीं कि वाद-विवाद कर सकें। भला शास्त्रोक्त एवं पांडित्यपूर्ण बौद्ध धर्म, जिसे स्वयं तथागत ने बतलाया है, के सामने निर्ग्रंथ दीन-हीन जैन धर्म की क्या तुलना हो सकती है? यदि परीक्षा किए बिना आप बौद्ध धर्म का परित्याग कर जैन धर्म में दीक्षा लेंगे, तो याद रखिए कि इस असावधानी के लिए बाद में हाथ मल-मल कर पछतायेंगे।'

जिस प्रकार वृक्ष के नये पौधे जल के अभाव में सूख जाते हैं, उसी प्रकार महाराज श्रेणिक की जैन धर्म के प्रति आस्था बौद्ध गुरुओं के भ्रान्त उपदेश से डँवाडोल होने लगी। उनके हृदय में अभी तक जैन धर्म के प्रति सद्भावना नहीं थी। वे संयोगवश उसमें अनुरक्त हुए थे। इसी से वे बौद्ध गुरुओं के वाग्जाल में फँस कर जैन मुनियों की परीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गए। महाराज ने गुप्त रीति से रसोई (चौके) के सम्मुख राजमहल में एक गहरा गड्डा खुदवाया। उसमें हड्डी-चर्म इत्यादि अपवित्र पदार्थ भरवा दिए तथा अनुकूल अवसर समझ कर रानी चेलना से बोले—'हे प्रिये! तुम तो जानती हो कि मैं इस समय जैन धर्म में कितना श्रद्धालु हूँ। यदि कोई जैन मुनिराज आहार के लिए आवें तो श्रद्धा के साथ पड़गाह कर उन्हें अपने राजमहल में आहार देना।' लेकिन रानी चेलना भी कोई सामान्य नारी नहीं थी, उस विदुषी ने ताड़ लिया कि महाराज के हृदय से अभी जैन धर्म के प्रति कटुता दूर नहीं हुई है। उसने समझ लिया कि इधर महाराज का झुकाव जैन धर्म के प्रतिकूल हो रहा है, फलतः उन्होंने जैन मुनियों की परीक्षा के लिए कोई षडयन्त्र रचा है।

तीन मुनियों का आगमन

कुछ दिवसों के उपरान्त ईर्या समिति का पालन करने वाले तीन महामुनि आहार लेने के लिए राजमहल में आये। महाराज श्रेणिक तो कब से उत्कण्ठित थे कि उन्हें जैन मुनियों की परीक्षा लेने का सुयोग मिले। उन्होंने मुनियों को अपने राजमहल में आते देख कर रानी चेलना को सूचित किया एवं मुनियों के निकट पहुँच गए। जब रानी चेलना ने मुनियों के आगमन का समाचार सुना, तब उसके आनन्द का पारावार न रहा। वह शीघ्रता के साथ मुनियों के निकट चली आयी। परन्तु रानी के हृदय में निरन्तर आशङ्का थी कि कहीं महाराज की परीक्षा से जैन धर्म पर आघात न पहुँच जाए। इस प्रकार सोचती

हुई रानी ने उक्त मुनियों से विनम्र शब्दों में प्रार्थना की– 'हे मनोगुप्ति आदि त्रिगुप्ति के पालन करने वाले महामुनिगण! आप लोग कृपा कर आहार ग्रहण करने के लिए राजमहल में पधारें।' जिस समय मुनियों ने त्रिगुप्ति पालन करने की उक्ति सुनी, तब उन्होंने अपनी दो अँगुली उठा कर इङ्गित मात्र से रानी को बता दिया कि वे दो गुप्तियों के ज्ञाता हैं–तीन के नहीं। इस प्रकार संकेत कर के लौट गए। तीनों मुनिराज निराहार जाने पर रानी समझ गयी कि किसी विशेष कारणवश ही वे लौट गए हैं। ठीक उसी समय उस नगर में श्रीगुणसागर नामक एक महामुनि आहार लेने के लिए पहुँच गए। वे अवधिज्ञानी थे। उन्होंने अपने अवधिज्ञान के बाल से महाराज श्रेणिक के मनोभाव ज्ञात कर लिए। वे तत्काल राजमहल पहुँच गए। रानी चेलना ने श्रीगुणसागर मुनिराज के पवित्र चरणों में नमस्कार कर विनम्र शब्दों में निवेदन किया– 'हे मुनिराज! आप त्रिगुप्तियों के पालन करने वाले हैं। अतः कृपा कर इस राजमहल में आहार ग्रहण कीजिए।'

रानी के इस प्रकार कहने पर श्रीगुणसागर मुनिराज ने अपनी तीनों अँगुलियाँ इङ्गित कर अपनी समर्थता सिद्ध कर दी। मुनिराज का संकेत पाते ही रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने मुनिराज को पड़गाहा। महाराज ने आकर मुनिराज को नमस्कार किया। रानी चेलना ने नवधा भक्ति के साथ मुनिराज के चरण पखारे तथा उन्हें काष्ठासन दिया। महाराज श्रेणिक ने भी मुनिराज से आहार ग्रहण करने के लिए करबद्ध निवेदन किया। आगे-आगे महाराज चौके की और चले। उनके पीछे मुनिराज जा रहे थे। चौके के द्वार पर पहुँचते ही महामुनि को अपने अवविज्ञान द्वारा महाराज का कुटिल कृत्य ज्ञात हो गया। फलतः यह कहते हुए वे पीछे लौट पड़े– 'हे राजन! तुम्हारे महल के एक गड्ढे में हाड़-माँस गड़ा हुआ है। अतः तुम्हारा निवास अपवित्र है तथा मुनियों के आहार ग्रहण करने योग्य स्थान नहीं है। वे ईर्या पथ से गमन करते हुए (जीवों की प्राण-रक्षा करते हुए) सीधे वन की ओर लौट गए। इस प्रकार मुनियों के आहार ग्रहण किए बिना चले जाने पर महाराज ने भी हृदय में घोर सन्ताप हुआ। राजमहल के समस्त लोग मुनियों के निराहाल चले जाने पर दु:ख व्यक्त करने लगे। महाराज श्रेणिक ने रानी चेलना के निकट आकर कहा– 'मुनियों के बिना आहार लिए चले जाने का कोई भी कारण मेरी समझ में नहीं आता है। यदि तुम्हारी दृष्टि में कोई आशङ्का हो, तो मुझ से कहो।' महाराज के वचन सुन कर रानी विनम्र शब्दों में कहने लगी– 'हे प्राणनाथ! मैं भी नहीं जानती कि किस कारण से मुनिगण आहार ग्रहण किए बिना राजमहल से लौट गए हैं। अतः उनके निकट चल कर इसका कारण पूछना चाहिए।'

रानी के कथन की अनुमोदना कर महाराज मुनियों के दर्शर्ना वन में चल पड़े। उनके साथ रानी चेलना भी थी। दोनों ने वन में जाकर भक्तिभाव के साथ मुनियों के चरणों में नमस्कार किया। महाराज ने मुनिराज से जिज्ञासा की– 'हे प्रभो! मेरे

मन में एक शङ्का उत्पन्न हो गयी है। आशा है कि आप कृपा कर उसका निवारण करेंगे। आप आहार लेने के लिए राजमहल में तो आये, किन्तु बिना आहार ग्रहण किए क्यों लौट गए?' महाराज श्रेणिक की जिज्ञासा सुन कर धर्मघोष नामक मुनिराज ने कहा—'हे राजन्! हम लोग जिस समय आपके राजमहल में आहार ग्रहण करने गए, उसी समय आपकी रानी ने हमें देख कर 'त्रिगुप्ति-पालक' के सम्बोधन से पुकारा। किन्तु हम त्रिगुप्ति के पालन करने वाले थे नहीं, इस कारण आहार ग्रहण करने में असमर्थ हो कर लौट आये। हे राजन्! हम लोगों के लौटने का यही कारण है, अन्य कोई कारण नहीं।' महाराज उनके वचन सुन कर आश्चर्यचकित हो गए। अपने मन में विचार करने लगे कि ये मुनिराज किस गुप्ति के पालन करने वाले नहीं हैं? इस प्रकार विचार कर उन्होंने जिज्ञासा व्यक्त की—'हे कृपासिंधु! आपने तीन गुप्तियों के पालन के विषय में अपनी समर्थता क्यों प्रकट की है?'

मुनिराज की आत्म-कथा

इस प्रकार महाराज के कहने पर मुनिराज ने कहा—'हे राजन्! जिस कारण से मैं ने त्रिगुप्तियों के अभाव का संकेत किया है, वह ध्यानपूर्वक सुनिए—

इसी जम्बूद्वीप के कलिंग नामक देश में दन्तपुर नामक एक मनोज्ञ नगर है। वहाँ के हाट अत्यन्त रमणीक हैं। किसी समय मैं (धर्मघोष) उपरोक्त नगर का शासक था। मेरे राज्य-शासन में प्रजा सुख-चैन की बंशी बताजी थी। मेरा प्रताप सूर्य की किरणों से सदृश प्रखर था। मेरी पत्नी का नाम लक्ष्मीमती था। वह अत्यन्त रूपवती थी। उसके रूप-लावण्य के सम्मुख मेरी अन्य रानियाँ कुछ भी नहीं थी। अतः मैं ने उसे सम्मान देने के लिए पटरानी बनाया था। उसका मुखड़ा चन्द्रमा को भी लज्जित करने वाला था। हे राजन्! हम लोगों में इतना अनुराग था कि उसका वर्णन करना असम्भव है। हम सदैव प्रेम का ही सुख स्पप्न देखा करते थे। इस प्रकार आनन्द में काल व्यतीत हो रहा था। हम दोनों भोगमय जीवन को ही संसार में सर्वाधिक आनन्ददायक समझे हुए थे। हे धरणीपति! एक दिन संयोग से एक दिगम्बर गुरु से मेरी भेंट हो गयी। उन्होंने संसार की अनित्यता, विषयभोगों की निस्सारता एवं जैन धर्म की विशिष्टता का वर्णन किया, जिसे सुनते ही मेरे हृदय में वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। मेरा सर्वाङ्ग प्रकम्पित हो उठा। किसी अज्ञात भय से मैं अधीर हो उठा। अब तक मैं ने विषयभोग के जीवन को ही अपना ध्येय बना रखा था। उनके उपदेशामृत से मैं एकाएक जाग्रत हो उठा। अभी तक विषयवासना के संसार में विचरण करता था, पर अब ज्ञानोदय का सुप्रभात हो गया। मैं ने अपने मन मे विचार किया—'हाय! अब तक माहे'ममता में फँस कर

अपने जीवन की अमूल्य घड़ियाँ व्यर्थ बिता दी है।' इस प्रकार विचार कर मैं ने मुनिराज से जैन दीक्षा ग्रहण कर ली।

इसके बाद मुनिराज कहते ही गए—'हे नरनाथ! इसी भूमण्डल पर कौशाम्बी नामक एक नगरी है। वहाँ के राजमंत्री का नाम गरुड़वेग था। राजनीति में पूर्व विशारद था उसी रूपवती पत्नी का नाम गरूड़दता था। हे राजन्! विहार करते हुए मैं भी कौशाम्बी जा पहुँचा। संयोग से मैं मन्त्री के यहाँ आहार लेने चला गया। मंत्री की पत्नी ने श्रद्धा के साथ मेरा सत्कार किया। उसने मेरे चरण पखार कर अपनी आन्तरिक श्रद्धा निवेदित की तथा अन्तराय रहित आहार दे कर मुझे सन्तुष्ट किया। हे राजन्! संयोग से गुरुड़दत्ता के हाथ से एक चावल गिर जाने के कारण मेरी दृष्टि उसके पाद-अँगुष्ठ के ऊपर जा पड़ी, जिसे देखते ही मुझे अपनी प्रिय पत्नी लक्ष्मीमती के अंगुष्ठ का स्मरण को आया। मैं अपने मन में विचार करने लगा कि इस नारी का पाद-अँगुष्ठ मेरी प्रियतमा के पाद-अँगुष्ठ के सदृश है। मेरे आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। मैं सहसा चौंक उठा, मेरा हृदय एकाएक चन्चल हो गया। हे महाराज! इसी कारण मैं आज तक मनोगुप्ति को सिद्ध नहीं सका। इसलिए उस दिन मैं अपनी मनोगुप्ति रहित अवस्था की ओर संकेत किया था।' महामुनि धर्मघोष की आत्मकथा सुन कर महाराज श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके हृदय में जैन धर्म की महानता के प्रति आस्था दृढ़तर हो गयी। वे सोचने लगे कि जैन धर्म के समकक्ष त्रिभुवन में कोई अन्य धर्म नहीं है। इसमें सत्य की इतनी महिमा है कि उसके सम्मुख संसार का कोई धर्म टिक नहीं सकता। मुनिराज धर्मघोष ने अपनी आत्मकथा का वर्णन कर उसी महान् सत्य-भाषण का गौरवशाली परम्परा को अटूट रखा है, जिसके यशोगान से जैन धर्म का सिद्धान्त परिपूर्ण है। इस प्रकार सोच-विचार कर महाराज श्रेणिक ने श्रद्धा के साथ मुनिराज धर्मघोष के चरणों में नमस्कार किया। इसके पश्चात् वे मुनिवर जिनपाल के पास गए। उन्हें नमस्कार कर उन्होंने निवेदन किया—

'हे मुनिनाथ! आज हमारे राजमहल में आकर आप बिना आहार लिए क्यों लौट आये हैं? हे प्रभो! मुझ से क्या अपराध हुआ है, जिससे कि आपने आहार लेना स्वीकार नहीं किया? आपके आहार लेने से अस्वीकार करने पर मेरे हृदय में शङ्का उत्पन्न हो गयी है। अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी इस शङ्का का निवारण कर अपनी विशालहृदयता का परिचय दें।' महाराज के इस प्रकार से विनम्र वचन सुन कर महामुनि जिनपाल ने मुनिराज धर्मघोष की तरह उत्तर दिया कि वे भी त्रिगुप्ति के पालक नहीं थे, अतः आहार ग्रहण न कर सके। महामुनि जिनपाल के उत्तर से महाराज के हृदय में पुनः शङ्का हुई कि वे मुनिराज किस गुप्ति से रहित हैं? महाराज ने विनय के साथ प्रश्न किया—'हे मुनिराज! आपके उत्तर से मेरे हृदय में यह

जिज्ञासा हो रही है कि आप किस गुप्ति के ज्ञाता नहीं है? अतः आप कृपा कर मेरी शङ्का निर्मूल कीजिए।' महामुनि जिनपाल ने कहा—'हे महाराज! मैं वचन गुप्ति का ज्ञाता नहीं बन पाया हूँ। अब उसके निमित्त कारण का वर्णन करता हूँ। आप ध्यान से सुनें।'

मुनिराज जिनपाल की आत्म-कथा

इसी वसुन्धरा पर भूमितिलक नामक एक नगर है। उस नगर में वसुपाल नामक एक धर्मात्मा राजा था। वह प्रजा-वत्सल था एवं न्याय-निष्ठा के साथ राज्य करता था। उसकी रानी का नाम धारिणी था। वह रूप, गुण, शील, स्वभाव एवं व्यवहार में अत्यन्त प्रवीण थी। उसकी वसुकान्ता नामक एक कन्या थी। धारणी की कन्या अपने रूप, गुण, स्वभाव में अपनी माता के सदृश ही थी। उसके मुख का सौंदर्य चन्द्रमा को लज्जित कर देता था। उसके खन्जन नेत्र मृगी के सदृश थे तथा अपने रूप से वह कामदेव की पत्नी रति को भी परास्त करती थी। उसके सौंदर्य की उपमा असम्भव थी। हे राजन्! उन दिनों कौशाम्बीपुरी नामक नगरी में एक प्रतापी राजा राज्य करता था। उसका नाम था चण्डप्रद्योत। राजा चण्डप्रद्योत का यश चतुर्दिक व्याप्त हो रहा था। बल, पराक्रम, तेज में वह अद्वितीय था। साथ ही विशाल सेना का अधिपति भी था। इधर वसुकान्ता ने यौवनावस्था में पदार्पण किया। उसकी रूपराशि तो विस्मयजनक थी ही। उसको देखने से यही आभास होता था कि उसके यौवन का उन्माद उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में व्याप्त हो गया है। हे राजन्! वसुकान्ता की सुन्दरता की धूम चारों ओर मच गयी। उसके रूप की प्रशंसा सुन कर चण्डप्रद्योत ने वसुपाल से उसकी कन्या के लिए प्रार्थना की। किन्तु राजा चण्डप्रद्योत जैन धर्म का अनुयायी नहीं था, अतः उसकी प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। राजा वसुपाल ने उसे अपनी कन्या देने से स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दिया। क्रोध से उन्मत्त होकर राजा चण्डप्रद्योत ने अपनी विशाल सेना लेकर भूमितिलक नगर को चारों ओर से घेर लिया। राजा वसुपाल ने भी अपने सेना को युद्ध क्षेत्र में डट जाने की आज्ञा दी। बात-की-बात में दोनों ओर की सेनाओं में घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। वीर योद्धागण अपने प्राणों का मोह त्याग कर एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे। युद्ध-पिपासु रणचण्डी की मनोकांक्षा पूर्ण होने लगी। देखते ही देखते युद्धस्थल में रक्त की सरिता प्रवाहित हो चली। समरांगण आहत सैनिकों, मृत गजराजों, अश्वों आदि से वैसे ही पट गया, जैसे महासागर पर्वतों से भरा रहता है। जिस प्रकार समुद्र में तरङ्गाघात होता है, उसी तरह वहाँ प्रशिक्षित चपल अश्वों पर घमासान हो रहा था। जिस तरह समुद्र में बड़ी-बड़ी मछलियाँ रहती हैं, उसी तरह युद्ध में सैनिकों के कटे हुए शीश इधर-उधर फैले हुए थे। उस युद्ध में हुए अपार

रक्तपात ने मानो रक्त का महासागर ही प्रस्तुत कर दिया था। जिस प्रकार सागर में मणि-माणिक्य आदि रत्न मिलते हैं, वैसे ही युद्ध स्थल में निहत यौद्धाओं की दन्तावलियाँ यत्र-तंत्र दमक रही थीं।

लोग कहेंगे कि समुद्र में भयानक कोलाहल सुनाई देता है, तो युद्ध में घात-प्रतिघात का तुमुल भीमनाद था। समुद्र में यदि बालुका की अपार राशि पायी जाती है, तो उस युद्ध में मृत योद्धाओं की अस्थियाँ चूर्ण विचूर्ण होकर उसकी पूर्ति कर रही थीं। जहाँ समुद्र में कीचड़ की प्रधानता होती है, वहाँ उस युद्ध में रक्त-माँस रूपी कीचड़ की विशेषता थी। उस युद्ध में निहत अश्वों एवं गजराजों के पैर समुद्र में मेंढक-कछुओं की पूर्ति कर रहे थे। जहाँ समुद्र में सर्प पाये जाते हैं, वहाँ उस युद्ध-स्थल में गजराजों की पूँछे थी। यदि समुद्र में भीषण तूफान उठा करते हैं, तो उस युद्ध में सैनिकों की नासिका से निकली हुई श्वास ही उसकी समता कर रही थी। उस रणभूमि में दमकते हुए चक्र समुद्र के बड़वानल का कार्य कर रहे थे। समुद्र में विशाल जलपोत आवागमन करते हैं, अतः उस युद्ध में अश्व एवं गजराज उनकी पूर्ति कर रहे थे। हे राजन्! वह युद्ध इतना भीषण, लोमहर्षक एवं इतना घमासान हो गया था कि जिसका वर्णन असम्भव है। उस युद्ध में सैनिक कहीं खड्गों से, तो कहीं मुष्ठि से अथवा मल्ल युद्ध से शत्रु पक्ष को आक्रान्त कर रहे थे, तो कितने सैनिक गदायुक्त होकर अपने प्रतिद्वन्दियों से तुमुल संग्रम कर रहे थे। इस प्रकार पदाति, अश्वारोही, गजारूढ एवं रथी सभी यौद्धा परस्पर युद्धरत थे। युद्ध की विकरालता कई दिनों तक रही। दोनों ओर की सेनाओं का बलाबल देखने से किसी पक्ष की जय-पराजय का निर्णय करना कठिन था। इस प्रकार कई दिनों तक भयङ्कर युद्ध होते देखकर राजा वसुपाल ने अपने मन में विचार किया कि राजा चण्डप्रद्योत की सेना अजेय है। वह किसी प्रकार विजित नहीं की जा सकती। इस प्रकार चिन्तित होकर वह विजय प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। हे राजन्! उसी समय मैं विहार करता हुआ कौशाम्बीपुरी में युद्धस्थल के समीपस्थ वन में पहुँचा। वहाँ मैं ने ध्यान लगाने का निश्चय किया। मेरे आने का समाचार सुन कर राजा वसुपाल सहर्ष तत्काल आया। उसके साथ कई सामान्त भी थे। उनमें से एक ने शत्रुओं से निश्चिन्त रहने का उपाय पूछा, किन्तु मैं ने उसके प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। मैं ने अपने मन में विचार किया कि मनुष्यों के राग-द्वेषात्मक संबंधों में पड़ना मुनि का कर्त्तव्य नहीं है। अतः मैं मौन ही रहा। किन्तु उक्त वन की शासन देवी ने राजा वासुपाल को निर्भय रहने का आश्वासन दिया। राजा वसुपाल के हर्ष का पारावार नहीं रहा। उसने मुझे ही वरदान प्राप्ति का निमित्त समझ कर भक्तिभाव से नमस्कार किया। राजा वासुपाल एवं उसके समान्त हर्षपूर्वक प्रयाण कर गये। इधर राजा चण्डप्रद्योत को जब यह सूचना मिली कि राजा वसुपाल एक जैन मुनि के दर्शनार्थ गया है, तब उसने भी संग्राम का परित्याग कर ससैन्य अपने नगर हेतु प्रयाण किया।

राजा वसुपाल के आनन्द के पारावार नहीं था। क्योंकि 'साँप मरे तथा लाठी बचे' के अनुसार उसका प्रबल शत्रु अपने-आप टल गया था। किन्तु उसके हृदय में यह आशङ्का बनी रही कि चण्डप्रद्योत क्यों लौट गया? अतः उसके विचार जानने के लिए राजा वसुपाल ने अपने कई चतुर मन्त्रियों को भेजा। राजा वसुपाल के दूत मन्त्रियों ने राजा चण्डप्रद्योत की सभा में जाकर अपने राजा की जिज्ञासा कह सुनायी। मन्त्रियों के मुख से राजा वसुपाल का सन्देह सुन कर उसने कहा—'हे मन्त्रिगण! आपके राजा अत्यन्त धर्मात्मा हैं। वे जैन धर्म के ऊपर बड़ी श्रद्धा रखते हैं, उसे अपने प्राणों से बढ़ कर समझते हैं। उनका सिद्धांत अटल है—'सर दीजे, धर्म न दीजे' की उक्ति उनके साथ पूर्णरूपेण चरितार्थ हो रही है। अतः ऐसे धर्मज्ञ पुरुष के साथ युद्ध करना उचित नहीं है। ऐसा समझ कर मैं ने संग्राम की इच्छा का ही परित्याग कर दिया है। हे मन्त्रिवर! इसमें लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है कि धर्मात्माओं के साथ व्यर्थ में कलह मोल लेने वाले कुपथगामी होते हैं। वे नीच कहे जाते हैं एवं सर्वत्र उनकी निन्दा होती है।' मन्त्रियों ने राजा वसुपाल के निकट जा कर राजा चण्डप्रद्योत की योग्य प्रशंसा की तथा उसके उत्तम विचार कह सुनाये।

राजा वसुपाल के हर्ष का पारावार नहीं रहा। तब स्वयं प्रस्ताव कर हर्षपूर्वक उसने अपनी कन्या वसुकांता का विवाह राजा चण्डप्रद्योत से कर दिया तथा दहेज में उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भेंट की। राजा चण्डप्रद्योत वसुकान्ता के समान रूपवती पत्नी पा कर फूले नहीं समाये। वे आनन्द के साथ सुखभोग में निमग्न हो गये। एक समय की घटना है—राजा चण्डप्रद्योत अपनी रानी वसुकान्ता के साथ बैठे हुए थे कि हठात् उनकी स्मृति में राजा वसुपाल के संग हुए युद्ध का स्मरण हो आया। उन्होंने रानी से कहा—'प्राणप्रिये! संसार भर में मेरी सेना अजेय मानी जाती थी। भूमण्डल के समस्त प्रतापी राजाओं ने मेरी शक्ति के सामने अपना मस्तक झुका दिया था। मैं तुम्हारे पिता को अपने सम्मुख कुछ भी नहीं समझता था। यह मेरी भूल थी एवं साथ ही मेरा अन्याय भी था। तुम्हारे प्रिय पिता राजा वसुपाल से युद्ध छेड़ कर मैं ने उत्तम कार्य नहीं किया था। हे प्रिये! इसका शल्य मेरे हृदय में अभी तक ज्यों का त्यों विद्यमान है।' रानी वसुकान्ता ने अपने पति के मुख से ऐसे वचन सुन कर कहा—'हे प्राणनाथ! वस्तुतः आपके प्रताप के सामने मेरे पिता नगण्य थे। किन्तु मुनिराज जिनपाल के अभय वरदान के कारण वे आपके सदृश बली, प्रतापी एवं दिग्विजयी राजा से संग्राम में पराजित नहीं हुए अन्यथा वे आपके सम्मुख कैसे टिक सकते थे?' राजा आश्चर्य के साथ रानी से रहस्योद्घाटक कथन सुन रहे थे। अन्त में राजा ने कहा—'हे प्रिये! तुम यह क्या कह रही हो? भला मुनिराज जिनपाल के समान योगिराज इस प्रकार गर्हित कार्य कर सकते हैं? हे रानी! मुझे इस पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं होता। तुम मुझ से आज जो कुछ कह रही हो, वह नितान्त असम्भव है। अतः मुनिराज के निकट

चल कर इसका निराकरण कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।'

इस प्रकार निश्चय कर राज-दम्पति मेरे निकट आये। दोनों ने भक्ति के साथ मुझे नमस्कार कर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की। इसके उपरान्त राजा चण्डप्रद्योत ने उत्सुकतापूर्वक मुझसे जिज्ञासा की—'हे मुनिराज! आप समस्त विज्ञानों में पाराङ्गत हैं। भव्यजनों को मोक्ष का मार्ग दिखलाने वाले हैं। आप दुर्धर तपस्वी हैं। आपने अनेक उत्तम व्रत पालन किए हैं। आपके लिए न कोई शत्रु है एवं न मित्र। आप सब के ऊपर समदर्शिता का भाव रखते हैं। किन्तु आपने यह क्या किया? आपने एक व्यक्ति को अभयदान दे कर अन्य के लिए अनिष्ट का संयोग प्रस्तुतकर दिया। हे भगवन्! ऐसी कठिन परिस्थिति में आप के समान मुनिराज अपना एकपक्षीय निर्णय नहीं ले सकते। वे पक्षपात रहित हो कर मौन धारण कर लेते हैं—किसी के पक्ष में कुछ नहीं कहते, एकदम तटस्थ नीति का अवलम्बन (सहारा) लेते हैं—ऐसी हमारी धारणा थी।'

मैं तो किंकर्तव्यमिवमूढ़ था। हे महाराज! मैं ने राजा को कोई उत्तर नहीं दिया। इतने में उसकी रानी वसुकान्ता बोल उठी—'हे नृपति! इसमें मुनिराज का किंचित्मात्र भी दोष नहीं है। मुझे यह घटना विस्मृत हो गई थी कि वस्तुतः मेरे पिता के पुण्योदय से जब वे मुनिराज की वंदना कर रहे थे, किसी वन देवी ने प्रकट होकर उन्हें अभय होने का आर्शीवाद दिया था। मुनिनाथ की इसमें कोई भूमिका नहीं है।' अपनी रानी के मुख से इस प्रकार सुन कर राजा चण्डप्रद्योत के हृदय का भ्रम मिट गया। वे प्रसन्न हो कर अपने मन में विचार करने लगे कि मैं ने व्यर्थ ही महामुनि के ऊपर सन्देह किया था। इस प्रकार सन्तुष्ट होकर राजा ने श्रद्धा के साथ मुझे नमस्कार किया। दोनों (राजा-रानी) प्रसन्न हो कर अपने नगर को लौट गये। पर इसी कारण से मैं आज तक वचनगुप्ति सिद्ध नहीं कर सका। क्योंकि मैं त्रिगुप्ति का पालक नहीं था, इसलिए आपके राजमहल में जा कर भी मैं ने आहार ग्रहण नहीं किया। हे राजन्! अवधिज्ञान के धारण करने वाले मुनिराज ही मन, वचन एवं काय की त्रिगुप्ति के पालनकर्त्ता होते हैं। जिन्हें तीनों गुप्तियों में एक भी गुप्ति का ज्ञान नहीं होता; वे अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान के अर्जन में असमर्थ होते हैं। जिस प्रकार अन्य समस्त जीव मति तथा श्रुतिज्ञान पाते हैं, उसी प्रकार वे भी पाते हैं। हे नपृति! जिस समय मनुष्य के अन्तस्तल में कलुषित विचार उत्पन्न होते हैं, तब उनके निवारण हेतु ही मनोगुप्ति का पालन किया जाता है। हे राजन्! मनोगुप्ति का पालन करना सहज कार्य नहीं है, वरन् लोहे के चने चबाने के सदृश दुष्कर है। आप विश्वास रखें कि ज्ञान-पूजादि आठ मदों के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले महामुनि यतीश्वर ही उसका पालन कर सकते हैं। वे ही शुभ-अशुभ विचारों से निर्द्वन्द बने रहते हैं। वचनगुप्ति की रक्षा करना मनोविनोद नहीं है, वरन् महान कार्य है। हे राजन्! वचनगुप्ति के पालनकर्त्ता मुनिगण स्वर्ग का सुख निश्चय ही प्राप्त करते हैं। वे ही कालान्तर

में अनेक गुणों से विभूषित हो कर अपना कल्याण प्राप्त करते हैं तथा समस्त कर्मों का नाश कर सिद्धपद पाते हैं। कायगुप्ति पालन करना भी दु:साध्य कार्य है। शरीर की मोह-ममता का परित्याग करना क्या सहज है? ऐसा करना सब के लिए सम्भव नहीं होता। उसे तो कोई उत्तम मुनिराज ही कर पाते हैं। जो मुनिराज इन तीन गुप्तियों के पालनकर्त्ता हैं, वे ही निर्मल काया के धारी होते हैं। वे सदा सम्यक् ज्ञान से विभूषित रहते हैं तथा उनकी ही तेजस्विता पर जैन धर्म का माहात्म्य प्रकाशित होता है। ऐसे तपस्तियों को पाकर जैनधर्म का स्थान संसार में सदा ऊँचा रहता है। यतीश्वर अपनी त्याग-तपस्या से धर्म का उत्थान करते हैं।' इस प्रकार दोनों मुनियों से मन तथा वचन दोनों गुप्तियों का मर्म सुन कर महाराज श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न हुए। रानी चेलना की प्रसन्नता को तो पूछना ही क्या था, उसका रोम-रोम गद्‌गद् हो गया। वे राज-दम्पति परम पवित्र दोनों गुप्तियों की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाये। वे बारम्बार मुनिमार्ग तथा श्रुतज्ञानादि की बड़ाई करने लगे। सुविज्ञ पाठकों! अब इस विषय में भला अधिक क्या लिखा जाए? आप सब स्वयं उसी सन्मार्ग के पथिक हैं।

एकादश अध्याय

मन-वच गुप्ति कथा सुन कर नृप-दम्पति ने सुख प्राप्त किये। नमस्कार कर श्रद्धा के दोनों ने आशीर्वाद लिये।।
आगे मुनिवर मणिमाली की काय-गुप्ति की सुनी कथा। जिससे महाराज श्रेणिक की दूर हो गयी मनोव्यथा।।

मणिमाली मुनिराज ने आत्म-कथा कही

पाठकगण! महामुनि जिनपाल की वन्दना कर तब महाराज श्रेणिक रानी चेलना के साथ मुनिराज मणिमाली के निकट आये। वे हाथ जोड़ कर कहने लगे—'हे मुनिनाथ! आज तो आप मेरे राजमहल में आहारार्थ गए थे, किन्तु बिना आहार ग्रहण किए ही आपके लौट आने का क्या कारण है? मेरे हृदय में इस विषय में निरन्तर शङ्का हो रही है कि असावधानीवश कहाँ त्रुटि रह गई।?' महाराज श्रेणिक के विनम्र वचन सुन कर मुनिराज ने कहा—'हे राजन्! जिस समय में आपके राजमहल में आहारार्थ जा पहुँचा, उस समय आपकी रानी ने मुझे 'हे त्रिगुप्ति के धारणकर्त्ता! आप आहारार्थ ठहरिये' कह कर सम्बोधित किया था। किंतु मैं कायगुप्ति का पालनकर्त्ता नहीं हूँ, अतः आपके यहाँ आहार लेने में असमर्थ सिद्ध रहा। मेरे आहार नहीं ग्रहण करने का एकमात्र कारण यही है। मेरे कायगुप्ति के पालन नहीं होने का जो कारण है, वह मैं आपको सुनाता हूँ; जिसे ध्यानपूर्वक सुनें—

मणिवत नगर का वर्णन

हे महाराज! इसी वसुधा में मणिवत नामक एक देश है। वह केवलमात्र अपने नाम से मणिवत नहीं है, वरन् संसार में उसकी गणना मणि के समान ही की जाती है। उस देश में विद्या तथा धनवानों की बाहुल्यता है। वहाँ के निवासी विद्यादान तथा धनदान में सदैव अग्रसर रहा करते हैं। मणिवत ग्राम के निवासी वैभव-सुख सम्पन्न होने के कारण कभी किसी से याचना नहीं करते।

वहाँ की नारियों के ओष्ठों में अधरता (वाचालता) पायी जाती है। हाँ, एक अभाव का वहाँ के लोग निरन्तर अनुभव करते हैं। विवाहार्थ वर के लिए कन्या की एवं कन्या के लिए वर की उन्हें आवश्यकता सदैव रहती है। वहाँ एक बात आश्चर्यजनक है—विनाश क्रिया का न होना। मणिवत के निवासी विनाश क्रिया का नाम केवल व्याकरण-शास्त्र के क्विप्-प्रत्यय में पाते हैं। हे राजन्! वहाँ के निवासी इसलिए निश्चिन्त हैं कि कोई मनुष्य अपराध करता हुआ नहीं पाया जाता। वे पिजरें में पालतू चिड़ियों को परतन्त्र समझते हैं तथा पिजरे के भीतर से उनकी मधुर कूक को स्वातन्त्रय-प्राप्ति की अभिलाषा मानते हैं। मणिवत देश के निवासी बड़े ही अध्यवसायी होते हैं। वहाँ ढूँढ़ने से भी कोई आलसी नहीं पाया जाता। हाँ, यदि किसी को आलस्यपन की प्रकृति का अध्ययन करना हो, तो वहाँ के मतवाले गजराजों में अवश्य पा सकता है; जिनकी मन्थर अलसायी गति ही उनके आलस्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। हे राजन्! कालचक्र के भार के अतिरिक्त वहाँ जीव को किसी अन्य दुःख का ज्ञान नहीं होता। वहाँ के लोग भय का नाम तक नहीं जानते। केवल वासना के दास अपनी प्रियतमा के क्रोध से भयभीत रहते हैं कि वह कहीं रूठ न जाए। हे महाराज! मणिवत देश में चौर्य्य कला का नामोल्लेख तक नहीं होता। परन्तु पवन वहाँ इस कार्य में सिद्धहस्त है। वह पुष्पों से सुगन्धि की चोरी करता है। वहाँ झंझावात के प्रकोप से वृक्ष के पत्तों के सदृश गिरने से कोई व्यक्ति जातिच्युत नहीं होता। वृक्ष के पत्ते चन्चल होते हैं तथा वायु के प्रसारण के फर-फर डोलते हैं, किन्तु वहाँ के निवासी चंचल स्वभाव वाले नहीं होते वरन् अपनी उदारता, गम्भीरता एवं सज्जनता में सानी नहीं रखते। वहाँ के मनुष्यों में स्थिरता नहीं पायी जाती, क्योंकि वे सदैव उद्योगशील रहते हैं।

वहाँ जड़ता का अस्तित्व ही नहीं है, केवल रूपसियों के नितम्बों में उसका आभास मिलता है। उस देश में कोई व्यक्ति (पुरुष) कृश नहीं पाया जाता। हाँ, यदि किसी को कृशता का पता लगाना हो, तो रूपसियों की कटि में ही पा सकता है। वहाँ यदि गूँगापन देखना हो, तो पत्थर में ही पाइयेगा—वहाँ के मनुष्यों में नहीं। हे राजन्! वहाँ योगेश्वरों के अतिरिक्त कोई

श्रेष्ठ नहीं समझा जाता। वहाँ के सरोवरों के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान मलीन नहीं रहता तथा सरोवरों की विवशता यह है कि उनकी शेभा जिस पदम (कमल) पुष्प से होती है, उसका जन्म ही पङ्क में होता है। वहाँ का राजकोष सदैव उन्मुक्त रहता है अर्थात् राज्य में धन की प्रचुरता है, किन्तु सूर्य के प्रखर ताप से पदम (कमल) कोष ही दिन में संकुचित हो जाता है। हे नृपति! वहाँ के निवासी परस्पर में ईर्ष्यो-द्वेष का नाम तक नहीं जानते। हाँ दानशीलता में उसकी प्रतिद्वन्द्विता बढ़ी-चढ़ी रहती है। उनमें व्याख्यान तथा धर्मोपदेश सुनने के अतिरिक्त अन्य कोई व्यसन (जैने द्यूतक्रीड़ा इत्यादि) नहीं पाया जाता। वहाँ के वृक्ष सदा फल-पुष्प से भरे रहते है। सभी ऋतुओं में मानो बहार रहती है। वहाँ के मनमोहक सुन्दर उद्यानों में कोयल की कूक सुनायी देती रहती है। वहाँ की स्त्रियाँ शीलवती तथा गजगामिनी होती हैं। उनकी पति-भक्ति अनुकरणीय होती है। हे महाराज! उसी देश में दारा नामक एक सुन्दर नगर है। उसकी शोभा का वर्णन कैसे सम्भव है? नगर की विशाल अट्टालिकायें गगनचुम्बी प्रतीत होती हैं। उस नगर की स्त्रियों के मुखमण्डल की प्रभा तथा सौंदर्य निशा (रात्रि) के अन्धकार को हरने में समर्थ है। वहाँ की रूपवती नारियाँ जब अपनी-अपनी अटारियों पर चढ़ जाती हैं, तब उनके शीश का चूड़ामणि चन्द्रमा के समान शोभित होता है। आकाश के चमकते हुए तारे, चूड़ामणि में जड़े हुए मोती के समान, दिखलाई देते हैं। हे राजन!् उसी दारा नगर का मैं मणिमाली नामक राजा था। अपनी प्रिय प्रजा के ऊपर मैं न्याय'नीति से शासन करता था। मैं ने क्षत्रिय कुल में जन्म धारण किया था। मेरी पत्नी का नाम गुणमाला था। वह सर्वगुणसम्पन्न नारीरत्न थी। मणिशेखर नामक मेरे एक नीतिज्ञ पुत्र था। हे नृपति! मैं जैन धर्म का दृढ़ अनुयायी था, अतः मेरा जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा था। भोग में सदा लीन रहने के कारण समय के बीतने में विलम्ब नहीं हुआ। एक समय की घटना है कि मेरी पत्नी मेरे शीश के केशों पर अपना कोमल हाथ फेर रही थी, तब उसने उनमें एक श्वेत केश देख चौंक कर कहा—'आह! जिस यमराज के कालचक्र के सम्मुख महान् बलशाली सम्राटों, चक्रवर्तियों, नारायण, प्रतिनारायण सदृश शलाका (जगत्प्रसिद्ध) पुरुषों की हस्ती नहीं रही, उसका दूत यहाँ भी आ पहुँचा।' न जाने मेरी प्रसन्नता कहाँ विलीन हो गयी। मेरे मुख से एकाएक निकल पड़ा—हे प्राणप्रिये! वह कालदूत कहाँ है? तत्काल मुझे दिखलाओ। मेरी उक्ति अभी पूर्ण भी नहीं हुई थी कि उसने मेरे शीश के श्वेत केश को नोच कर हथेली पर रख दिया। हे राजन्! वार्धक्य के सन्देशवाहक श्वेत केश का अवलोकन कर मैं समझ गया कि मेरे जीवन का अन्त अब सन्निकट है। मुझे चेत जाना चाहिये अन्यथा न जाने कब क्या हो? हे राजन्! मेरा जीवन अब तक केवल भोगमय था—उसे ही मैं जीवन का एकमात्र ध्येय समझता था। अब मेरे हृदय में उसी वैभव-भोग के प्रति वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया। जिसके लिए एक क्षण पहिले अपना प्राणोत्सर्ग करने को प्रस्तुत था, अब उसी के प्रति

उदासीनता छा गयी। स्त्री, पुत्र, धन-वैभव तथा अन्य भोग-वस्तुओं से निस्पृहता उत्पन्न हो गयी। अपने पुत्र मणिशेखर को राज्यभार सौंप कर मैं वन में चला गया। संयोग से वहाँ महामुनि गुणसागर मिल गये तथा मैं ने उनसे दीक्षा ले ली। इसके बाद मैं ने जैन सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उग्र तपस्या करना प्रारम्भ किया। कुछ काल पश्चात् मैं सिंह के समान निडर हो कर सर्वत्र विहार करने लगा। इस प्रकार अनेक देशों में भ्रमण करता हुआ मैं उज्जयिनी नामक नगरी में जा पहुँचा। उस समय रात्रि हो रही थी, अतः मैं सीधे वहाँ के श्मशान में चला गया। शव के समान आसन लगा कर ध्यान करने लगा। इतनें में ही एक मन्त्र सिद्ध करनेवाला साधक भी उसी घोर रात्रि में किसी मन्त्र की सिद्धि करने के लिए पहुँच गया। उसने मुझे मृत समझ कर मेरे शीश पर शव की खोपड़ी रख दी तथा उसमें दुग्ध-चावल डाल कर मन्त्र सिद्ध करने के लिए खीर पकानी प्रारम्भ की। उसने खोपड़ी में जलती लकड़ी झोंकी, जिससे मेरा मस्तक तथा मुख आँच लगने के कारण झुलसने लगा। उसी समय मेरा अन्तःकारण कर्मो का क्रमिक नाश होने के कारण शुद्ध हो गया तथा मैं द्वादश भवनाओं का चिन्तवन करने लगा—

तुम इतने से दुःख में क्यों घबड़ाते हो? भला यह कष्ट क्या है, तुमने इससे अधिक भीषण कष्ट झेले हैं। नरक के भयङ्कर कष्टों के सम्मुख तुम्हारा अभी अग्नि से झुलसना नगण्य है। क्या तुम्हें ज्ञान है कि नरक लोक के जीव क्षुधा की ज्वाला में इस प्रकार विदग्ध होते हैं, जिसका कोई पारावार नहीं। यदि वे त्रिभुवन का समस्त अन्न पा जायें, तो भी उनकी क्षुधा तृप्त न हो। फिर भी उन्हें भोजन हेतु एक कण अन्न भी नहीं मिलता। वे क्षुधा से व्याकुल होकर तड़पते रहते हैं। हे आत्मन्! नरकगामियों की देह के टुकड़े-टुकड़े कर कड़ाहियों मे भूने जाते है। इस प्रकार वे अपार कष्ट भोगते हैं। बिच्छुओं के काटने से जितनी पीड़ा होती है, उससे अधिक पीड़ा नरक में पहुँचते ही नारकियों को सहन करनी पड़ती है। आश्चर्य है कि तुम इतने कष्ट से ही विह्वल हो रहे हो? यदि नरकलोक की मिट्टी का कुछ अंश भी यहाँ आ जाए, तो उस असहनीय दुर्गन्ध को सहना असम्भव हो जायेगा। वहाँ जीव दिन-रात्रि उसी दुर्गन्ध को सहते रहते है, तुमने अपने एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जन्मों में अपार दुःख सहा है तथा नरक में जाकर इससे अधिक कष्ट भोगा है। साथ ही अनेक बार निगोद में जाकर वहाँ के असह्य दुःख सहे हैं। अतः तू क्यों घबड़ाता है। तू निश्चय समझ कि 'बड़े भाग्य मानुष तन पावा' के अनुसार जब यह नरभव मिला है, तब दुःखों से घबड़ाना कैसा? कार्य सिद्धि के लिए दुःखों से घबड़ाना अनुचित है। बिना कष्ट सहे उत्तम व्रत की सिद्धि नहीं होती? कष्ट सहन से ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है।

हे राजन्! मैं उपरोक्त चिन्तवन में अनित्यत्व की भावना देख रहा था। मैं सचमुच अचेत हो गया था। मेरी सारी चेतना शक्ति लुप्त हो रही थी। जब मृत खोपड़ी में अग्नि जोर से धधकी, तब वह मेरे शीश से नीचे गिर पड़ी। उसके दुग्ध-चावल

गिर जाने से अग्नि ठण्डी हो गयी। मन्त्र साधक का सम्पूर्ण आयोजन व्यर्थ रहा। उसका मुखमण्डल निस्तेज हो गया। अपना मन्त्र सिद्ध का प्रयत्न निष्फल देख कर वह पलायन कर गया। हे राजन्! अगले दिन सूर्योदय होते-होते सारे नगर में शव के भ्रम में मुनिराज के ऊपर घोर उपसर्ग करने का सनसनीपूर्ण समाचार विद्युत की तरह फैल गया। जिस प्रकार जिनेन्द्र भगवान रूपी सूर्य के उदय के संग ही मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार प्राची दिशा में प्रातःकालीन वेला के समय भुवन-भास्कर के प्रकट होते ही संसार से अंधकार का नाश हो जाता है। तब कहीं-कहीं सरोवर में कमल भी प्रफुल्लित हो जाते है। रात्रि-काल चकवा-चकवी के लिए कितना दुःखदायी होता है? वे एक-दूसरे से विलग हो कर वियोग का असह्य दुःख सहते हैं। किन्तु सूर्योदय के होते ही परस्पर में प्रेमालिङ्गन करने लग जाते हैं। वही सूर्योदय रात्रि में अपनी प्रेयसियों के सङ्ग रङ्गरेलियाँ करनेवाले कामियों के लिए असह्य दुःख का निमित्त बन जाता है, जिससे वे झल्ला कर सूर्य की निन्दा करने लगते हैं। हे नृपति! यदि सूर्य की उपमा एक उत्तम साधु की दी जाए, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। क्योंकि जिस प्रकार साधुओं के द्वारा संसार में भव्य जीवों का उचित मार्ग-प्रदर्शन होता है, उसी प्रकार सूर्य पथिकों के लिए मार्ग-प्रदर्शक का कार्य करता है। सूर्य भी साधुओं के सदृश अज्ञानान्धकार को विनष्ट करने की पूर्ण क्षमता रखता है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें संसार के समस्त पदार्थों पर समान पड़ती हैं, उसी प्रकार साधु सब पर अपना समान ध्यान रखता है। सूर्य के उदय होते ही चन्द्रमा सूखे पत्ते के समान क्षीणकाय दिखलायी देने लगता है—तारावली का तो आभास तक नहीं रहता।

हे राजन्! प्रातःकाल होते ही श्मशान के निकटवर्ती उपवन में एक माली पुष्प-संचय हेतु आया, तब उसने मुझे अर्द्धदग्ध अवस्था में शव के सदृश पड़ा देख कर नगर में जाकर जिनदत्तादि सेठों को सूचना दी। नगर के समस्त सेठ मेरी दुर्दशा का दुःखद समाचार सुन कर शोक प्रकट करते हुए श्मशान-भूमि में मेरे समीप आये। मुझे इस प्रकार दयनीय अवस्था में देख कर उनका हृदय शोक से विह्वल हो गया। वे 'हाय-हाय' कह कर अपना दुःख प्रकट करने लगे—'किस दुष्टात्मा ने मुनिराज को इस प्रकार घोर कष्ट दिया है। वह अधम पापी है कौन जिसने मुनिराज के ऊपर उपसर्ग कर अपनी नृशंसता का परिचय दिया?' इस प्रकार कहते हुए सेठ जिनदत्त मुझे अपने घर उठवा कर ले आये। उन्होंने उत्तम वैघ से मेरा उपचार करने हेतु प्रार्थना की। सेठ जिनदत्त की अभिलाषा सुन कर वैद्य ने कहा—'प्रिय सेठ! मुरिराज की गम्भीर रूप से आहत अवस्था को देखते हुए इन्हें दीर्घकालीन उपचार की आवश्यकता है। यदि आप कहीं से लाक्षामूल तैल का प्रबन्ध कर सकें, तो अति उत्तम हो। उससे ही मुनिराज के विदग्ध मस्तक का उपचार हो सकता है, किसी अन्य औषधि से नहीं।'

वैद्यराज से सेठ जिनदत्त ने करबद्ध जिज्ञासा की—'हे वैद्यराज! जब आपने कृपा कर औषधि का नाम बतलाया है, तब उसकी प्राप्ति का उपाय भी बतलायें अन्यथा हमारे ढूँढ़ने से तो मिलने की नहीं।' वैद्यराज ने कहा—'सुनो जिनदत्त! इसी नगर में भट्ट सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण है। उसी के यहाँ लाक्षामूल का तैल अवश्य मिलेगा। उससे याचना कर आप वह ले आयें, जिसके प्रयोग से मुनिराज की क्षत-विक्षत काया को अवश्य शान्ति का अनुभव होगा।' सेठ जिनदत्त तत्काल भट्ट सोमशर्मा के निवास पर पहुँच गए। उस समय भट्ट तो निवास पर थे नहीं, पर उनकी स्त्री तुङ्कारी वहाँ थी। सेठ ने उसे भगिनी कह कर सम्बोधित किया तथा निवेदन किया—'हे भगिनी! इस समय मैं एक आवश्यक कार्य के निमित्त आपके निकट आया हूँ तथा आशा करता हूँ कि आप मेरी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण करेंगी। बात यह है कि किसी दुष्टात्मा ने महामुनि मणिमाली का शीश अर्ध-दग्ध कर दिया है, जिसकी असह्य वेदना से वे अचेत हैं। वैद्य ने लाक्षामूल के तेल से मुनिवर का उपचार बतलाया है। इसलिए है भगिनी! मैं तुम्हारे निकट औषधि युक्त तेल लेने आया हूँ। इस हेतु में मनचाहा मूल्य प्रदान करने के लिए प्रस्तुत हूँ।' सेठ जिनदत्त के विनम्र वचन सुन कर तुङ्कारी ने कहा—'सेठ जी! भला आप यह क्या कह रहे हैं। क्या मैं मूल्य लेकर तैल दूँगी, वह भी मुनिराज के लिए? तेल की जितनी आवश्यकता हो, आप सहर्ष ले जा सकते हैं। औषधिदान से भावी जन्म में कोई रोग नहीं होता। मेरे कोठे पर लाक्षामूल तेल से भरे हुए बहुत से घट रखे हुए हैं। आप वहाँ से जितना चाहें तेल ले जा सकते हैं।' तुङ्कारी के इस प्रकार नम्रतापूर्वक वचन सुन कर सेठ जिनदत्त की प्रसन्नता का पारावार न रहा। वे कोठे से तेल का एक घट उठा कर कन्धे पर रख कर चल दिये।

सेठ जिनदत्त अपने कन्धे पर तेल का घट रख कर अभी कुछ ही दूर गए थे कि दैववश वह घट गिर कर खण्ड-खण्ड हो गया। तेल का घट भूमि पर गिरते ही मिट्टी में मिल गया। हे राजन्! सेठ जिनदत्त के काटो तो खून नहीं। वे निष्प्रभ से रह गए। क्या करें अथवा क्या नहीं, उन्हें कुछ भी नहीं सूझता था। वे हाय मार कर मन मसोसते रह गए। वे सोचने लगे—'हाय! सर्वनाश हो गया। एक घट दुष्प्राप्य तेल मैं ने नष्ट कर दिया। हे भगवन्! अब क्या होगा? बड़ी कठिनाई से इतना तेल मिला था। यदि तुङ्कारी से पुनः तेल की याचना करूँगा, तो वह देने से रही। वह मुझ पर अत्यत रुष्ट होगी।' इस प्रकार आगा-पीछा विचारते हुए भयभीत सेठ जिनदत्त तुङ्कारी के यहाँ गया। उसने तुङ्कारी से तेल गिरने की घटना कह पुनः तैल देने की प्रार्थना की। तुङ्कारी सन्तुष्ट हो गयी कि तेल का घट अनजान में गिर कर फूट गया है। अतः उसने जिनदत्त से कहा—'सेठजी! इसमें विषाद करने की क्या आवश्यकता है। यदि अनजान में आपके कन्धे से तेल का घट गिर कर फूट गया है, तो इसमें चिन्ता का कोई कारण नहीं। मुनिराज के उपचार हेतु ऐसे-एसे कितने घट न्यौछावर हैं, आप जितना चाहें तेल

ले सकते हैं।

जिनदत्त प्रसन्न होकर पुनः तेल का एक घट लेकर चला। किंतु मार्ग में ठोकर खाकर गिर पड़ा, जिससे उसके कन्धे से तेल का घट पुनः गिर पड़ा। घट का सम्पूर्ण तेल मिट्टी में मिल गया। सेठ ने इस बार भी ब्राह्मणी के निकट घट फूटने का वृत्तांत जा कहा। ब्राह्मणी ने सहज भाव से पुनः तेल का घट ले जाने को कहा।

लेकिन अब तृतीय घट भी जब सेठ जिनदत्त के कन्धे से गिर कर फूट गया, तब उसकी विकलता का अन्त न रहा। वह समझ गया कि जब दैव (भाग्य) ही विपरीत है, तब कौन-सा मुख लेकर जाऊँ? किन्तु मुनिराज की पीड़ा का स्मरण होते ही सेठ ने फिर ब्राह्मणी के निकट जाकर इस घट के फूटने का समाचार सुनाया। उस समय जिनदत्त का मुखमण्डल म्लीन हो गया था। उस पर चिन्ता की स्पष्ट रेखायें खिंच आयी थी। सेठ को उदास देख कर ब्राह्मणी का हृदय करुणा से भर गया। उसने कहा—'हे प्रिय बन्धु! तैल के तीन घट तो क्या, यदि समस्त घट भी फूट जायें, तो भी चिन्ता की क्या आवश्यकता है? आप प्रसन्नता के साथ निःशङ्क होकर जितनी आवश्यकता हो, तेल ले जा सकते हैं।' जिनदत्त तैल का घट कन्धे पर रख कर इस बार सकुशल अपने घर पहुँच गया। मार्ग में ब्राह्मणी की नम्रता, उदारता तथा विनम्रता पर फूला नहीं समाता था। उसके हृदय में ब्राह्मणी के सद्व्यवहार ने अपना आधिपत्य जमा लिया था। जिनदत्त के चित्त में ब्राह्मणी के प्रति श्रद्धा का भाव उदय हो आया।

वह तेल का घट अपने घर में रख कर ब्राह्मणी के निकट पहुँच कर विनीत शब्दों में कहने लगा—'हे देवी! तुम धन्य हो, तुम्हारी धर्म भावना प्रशंसनीय है। मैं ने तुम्हारे समकक्ष क्षमा की प्रतिमूर्ति अब तक कहीं नहीं देखी है। तुम्हारे तैल के तीन घट मैं ने नष्ट कर दिये, किन्तु तुमने मेरे साथ क्रोध के स्थान पर क्षमा का व्यवहार किया। मैं ने तुम्हारी कितनी क्षति की, पर तुमने बारम्बार मुझे क्षमादान दे कर अपनी सहृदयता का ही परिचय दिया। मैं किन शब्दों में तुम्हारे सद्‌गुणों की प्रशंसा करूँ?' सेठ जिनदत्त के प्रशंसायुक्त वचन सुन कर तुङ्कारी ने कहा—'हे बन्धु! मैं क्रोध करने का दुष्परिणाम भोग चुकी हूँ। अतः अब सदा धैर्य तथा शान्ति के कार्य करती हूँ।' जिनदत्त ने आश्चर्य प्रकट करते हुए ब्राह्मणी से उसकी कौतूहलजनक आप बीती (कथा) सुनाने की प्राथना की। तुङ्कारी कहने लगी—'हे सेठी जी! इसी भूतल पर आनन्द नामक एक नगर है। उसका आनन्द नाम सोलहों आना सत्य है। उस नगर में आनन्ददायक वस्तुओं का सदैव बाहुल्य रहता है। उसी नगर में शिवशर्मा नामक एक धनी ब्राह्मण रहता है। उसकी स्त्री का नाम कमलश्री था, जिसका रूप मनोमुग्धकारी था। उसके

विशाल नेत्र, सुवर्ण-सी सुन्दर देह तथा स्मित कटाक्ष रूपसियों के लिए ईर्ष्या की वस्तु थी। उसके आठ पुत्र थे। उन्हीं आठों भ्राताओं की भद्रा नामक मैं भगिनी थी। समस्त कुटुम्बीजन मुझे स्नेह की दृष्टि से देखते थे। मैं अपने माता-पिता के नेत्रों की पुतली सदृश थी। मेरे आठों भ्राता मुझे बहुत चाहते थे। मेरी भावजें मुझ पर अनुराग रखती थी। मैं रूपवती तथा गुणवती तो थी ही, अतः घर-बाहर हर स्थान पर मेरा आदर होता था। सभी मुझे मङ्गलसूचक सम्बोधनों से उद्‌बोधित करते थे। लेकिन मुझ में एक दुर्गुण था—मैं तुङ्कार शब्द से चढ़ि जाती थी। एक दिन ऐसी घटना हुई कि मेरे पिता ने राजा के दरबार में जा कर निवेदन किया—'हे दीनबन्धु! मेरी कन्या तुङ्कार शब्द से चिढ़ जाती है। अतः मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि कोई उसके सामने तुङ्कार शब्द नहीं कहे।' राजा ने मुझे बुलवा कर तुङ्कार शब्द से चिढ़ने का कारण पूछा। मैं ने कोई समुचित उत्तर न देकर केवल प्रार्थना की—'हे राजन! मैं आपसे विनती करती हूँ कि कोई व्यक्ति मेरे सामने तुङ्कार का उच्चारण न करे अन्यथा उपद्रव के लिए मुझे दोषी न ठहराया जाए।' राजा के सम्मुख इस प्रकार कह कर मैं अपने घर चली आयी। किन्तु बात फैल गयी तथा जन-सामान्य ने जान-बूझ कर मुझे तुङ्कारी नाम से ही पुकारना प्रारम्भ कर दिया। मैं भी भला क्या करती, बस मन-मसोस कर रह जाती थी। एक दिन संयोग से नगर के बाह्यवर्ती शुभ्र नामक वन में मुनिराज गुणसागर का आगमन हुआ। राजा से लेकर रङ्क तक नगर-निवासी मुनिराज के दर्शन के लिए गए। मैं भी अपने परिवार के साथ गयी। सब मुनिराज को नमस्कार कर उनका उपदेशामृत सुनने के लिए वहीं भूमि पर बैठ गए। महामुनि ने उत्तम उपदेश से सब के हृदय में शान्ति का वातावरण उपस्थित कर दिया। कई शुभ परिणामी प्राणियों ने श्रद्धा के साथ व्रत ले लिए। मैं ने भी अन्य के साथ श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए। व्रत लेने पर भी मैं तुङ्कार शब्द से चिढ़ न त्याग पाई। फलस्वरूप मैं आठ मदों से युक्त हो गयी। मेरे सहोदर भी बड़े भारी हठीले निकले। उनके संसर्ग से मेरा स्वभाव ऐसा हठीला हो गया कि मेरे पिता के सम्मुख मेरा विवाह एक जटिल समस्या बन गया। कोई सुपात्र मेरे संग विवाह करने हेतु प्रस्तुत न था। कोई बन्धु-बान्धव भी हमारी सहायता नहीं करना चाहता था। मेरे वृद्ध पिता सब ओर से हताश हो गए, पर विवश थे।

हे भ्राता! सोमशर्मा नामक एक कुख्यात द्यूतप्रेमी ब्राह्मण भी उसी नगर में रहता था। वह बिना द्यूतक्रीड़ा के एक दिन भी व्यतीत नहीं कर सकता था। इसी दुर्व्यसन ने उसे कौड़ी-कौड़ी के लिए पराश्रित बना दिया। फलतः वह घोर विपत्तियों से फँस गया। कहते हैं हारा हुआ जुआरी सब कुछ दाँव पर लगा देता है। अन्त में एक दिन यही उक्ति उस पर चरितार्थ हुई। वह अपनी समस्त धन-सम्पदा द्यूतक्रीड़ा में गँवा बैठा, फिर भी वह विजयी जुआरियों से उऋण न हो सकता। वह अब सर्वस्वहीन एवं विवश था। जब जुआरियों ने देखा कि सोमशर्मा उनका ऋण-शोधन करने में असमर्थ है, तब सब ने मिल कर

उसे एक वृक्ष में जकड़ कर बाँध दिया तथा पाद एवं मुष्ठि प्रहार से उसकी प्रताड़ना प्रारम्भ कर दी।

उसी समय किसी ने मेरे पिता से जाकर जुआरियों द्वारा सोमशर्मा की दुर्दशा का वृत्तान्त कह सुनाया। कुछ सोच कर मेरे पिता उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ वह एक वृक्ष से बँधा हुआ था। वे कहने लगे—'हे द्विजकुमार! तुम्हारी यह दुर्दशा देख कर मुझे दया आ रही है। तुम्हारे मुक्त होने की एक युक्ति है। यदि तुम स्वीकार करो, तो मैं कहूँ।' सोमशर्मा की तो एकमात्र अभिलाषा थी कि किसी प्रकार जुआरियों के बन्धन से मुक्ति मिल जाए। उसने प्रसन्नता से तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। इधर मेरे पिता भी चाहते थे कि इसकी विषम परिस्थिति से लाभ उठाना चाहिए। बड़े भाग्य से ही ऐसा सुअवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार विचार कर वे बोले—'हे द्विजकुमार! यदि तुम मेरी कन्या के साथ विवाह करने का वचन दो, तो मैं तुम्हें बन्धन मुक्त करवा दूँगा। समस्त जुआरियों को धन देकर मैं सन्तुष्ट कर दूँगा।' सोमशर्मा ने चौंकते हुए कहा—'आपका कथन सर्वथा उचित है, परन्तु आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? आपके इस प्रकार कहने से यही प्रतीत होता है कि आपकी कन्या में कोई ऐसा असामान्य दुर्गुण है, जिससे कोई सत्पात्र उससे विवाह करना नहीं चाहता। तभी आप मेरे समान जुआरी, दुर्व्यसनी तथा पापी मनुष्य के संग अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं। आप मेरी अवस्था तो देख ही रहे हैं। मैं द्यूत में अपना सर्वस्व हार कर कौड़ी-कौड़ी के लिए पराश्रित हो गया हूँ। जुआरियों ने मेरी ऐसी दुर्दशा कर दी है। फिर भी आपकी इस प्रकार की सहृदयता का कारण मेरी समझ में नहीं आता है। अवश्य ही दाल में कुछ काला है। आप निःशंक अपनी कन्या के विषय में समस्त गुणावगुण स्पष्ट रूप से कहें, तभी मैं आपके प्रस्ताव पर विचार कर समुचित उत्तर दूँगा।' यद्यपि वह सोमशर्मा दुर्व्यसन से ग्रस्त होते-होते आमूल पापी बन चुका था, तदापि उसने मेरे पिता से युक्तियुक्त वार्तालाप किया।

मेरे पिता ने उत्तर दिया—'विप्रकुमार! मेरी कन्या रूपवती है, गुणवती है, वह समस्त कलाओं में विशारद है, किन्तु उसने एक भयङ्कर दुर्गुण यह है कि वह तुंकार शब्द से चिढ़ती है, अन्यथा वह सर्वगुण-सम्पन्ना, ललितकला पारङ्गत एवं रूपवती कन्या है। यदि तुम उससे अपना विवाह कर लोगे, तो तुम्हार जीवन सुखमय बन जायेगा। हाँ! यह सदैव स्मरण रखना कि उसे तू शब्द से सम्बोधित न करना। हम, आप, प्रिये आदि किसी भी सम्बोधित का प्रयोग करना। तब तुम देखोगे कि इस वृद्ध विप्र का कहना कितना उचित है।' सोमशर्मा ने प्रसन्नता के साथ मेरे पिता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जब दोनों ही पक्ष उत्सुक थे, तब तत्काल सहमति हो गई। मेरे पिता ने जुआरियों को मनवांछित धन देकर सोमशर्मा को उनके बन्धन से छुड़ाया। सोमशर्मा पिता के संग ही मेरे घर आ गया। कुछ दिनों के पश्चात् एक शुभ मुहूर्त में सोमशर्मा के साथ मेरा विवाह सम्पन्न हुआ। पिता भी निश्चित हो गए। हम दोनों आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत करने लगे। मेरे पतिदेव सदैव

सावधानीपूर्वक तुंकार सम्बोधन का परिहार करते थे। अतः हम दोनों में पारस्परिक दाम्पत्य-सूत्र-बन्धन दृढ़ होता गया।

एक समय किसी कार्यवशात् मेरे पतिदेव को अन्यत्र प्रस्थान करना पड़ा। मार्ग में नृत्य-गान इत्यादि मनोरंजक होते देख कर वे भी उसमें दर्शक बन गए। देखते ही देखते आधी रात्रि बीत गयी, तब उन्हें घर लौटने की सूझी। तब वे द्वार पर आकर खोलने की पुकार मचाने लगे। मैं अर्द्ध सुषुप्तावस्था में थी। प्रथम तो मैं ने उनकी पुकार ही नहीं सुनी, फिर तन्द्रा भङ्ग हुई तब मैं ने पतिदेव को उच्च स्वर में 'द्वार खोलो! द्वार खोलो!' पुकारते हुए पाया। लेकिन हठीले स्वभाव के कारण मैं जान-बूझ कर सोयी रही। मेरे मन में पति के इतनी रात्रि बीतने पर लौटने पर विरह-वेदना से तीव्र क्रोध उत्पन्न हो रहा था। मैं विचारने लगी कि देखो प्रथम तो अर्ध-रात्रि पर्यन्त प्रत्यागमन न कर मुझे व्याकुल कर दिया अब द्वार पर कोलाहल कर रहे हैं कि वे कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं? हा! अब तो उनके दुर्वचनों से मेरा अपमान भी कर रहे हैं। मैं भी आज की रात्रि द्वार कदापि न खोलूगी, तभी उन्हें उचित शिक्षा मिलेगी। उन्हें जब मार्ग (सड़क) पर रात्रि व्यतीत करने में कष्ट का अनुभव होगा, तभी वे मेरी विरह-व्यथा को समझ सकेंगे।

इस प्रकार निश्चय कर मैं मौन धारण कर यथावत् लेटी रही। जब पतिदेव ने पाया कि उनके हर सम्भव प्रयास के उपरान्त भी मैं ने द्वारा नहीं खोला, तब वे क्रोध से उन्मत्त हो उठे एवं गरज कर बोले—'अरे तुंकारी! तू जीवित है या मृत? मैं कब से पुकार रहा हूँ, पर तू दुष्टा हठ पर अडिग है।' इतना सुनते ही मेरे क्रोध का पारा इतना ऊँचा चढ़ गया, जिसका कुछ हिसाब नहीं था। मैं क्रोध से भस्मीभूत हो गयी। मेरी सारी देह सूखे पत्ते के समान थर-थर काँपने लगी। मैं ने 'न आव देखा एवं न ताव', बस सिंहनी सदृश बिफरती हुई द्वार खोल कर उसी रात्रि से तीर के समान वन की ओर चल पड़ी।

यद्यपि तब क्रोध में बिना सोचे-समझे घर से निकल आयी थी, किन्तु मुझे जिन-जिन विपदाओं का सामना करना पड़ा उनका स्मरण करते ही हृदय प्रकम्पित हो जाता है, वाणी रुद्ध होने लगती है। हाँ, तो उसी अर्धरात्रि में मैं एक घनघोर वन में जा पहुँची। रात्रि भयावह लग रही थी। सच तो यह है कि ऐसी अर्ध-रात्रि में केवल क्रूर-कर्मा चोर, उलूक अथवा कामी पुरुष यत्र-तत्र भटकते रहते हैं, जब कि शेष विश्व प्रगाढ़ निद्रा में दिवस-काल में किए गए परिश्रम की अपने क्लांति का निवारण करता है। किसी को अपने तन की सुधि नहीं रहती। ऐसे समय में घर-नगर त्याग कर मैं सुनसान घोर वन में जा पहुँची। उस समय भी मेरी समस्त चेतना क्रोध के आवेश में विलुप्त हो रही थी। मैं विक्षिप्त की भाँति बिना इधर-उधर देखे आगे बढ़ती जा रही थी। इतने में कई दस्यु मेरे सम्मुख अपनी भयावह वेशभूषा में आ पहुँचे। उन दस्युओं ने मुझे बन्दी बना

लिया। मेरी तो चेतना ही लुप्त हो गई। मैं अपने मन में विचार करने लगी कि इतनी रात्रि में गृह त्याग कर मैं ने बड़ा बचपना किया है। किन्तु 'अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत'—मेरी रक्षा का कोई उपाय सुलभ नहीं था। मैं सिंह के पंजे में हरिणी के समान पड़ी हुई थी, सर्वथा विवश थी। दस्युओं ने मुझे ले जाकर अपने सरदार के सामने खड़ा कर दिया।

हे भ्राता जिनदत्त! वह दस्युओं का सरदार क्या था मानो साक्षात् यमराज का प्रतिरूप था। उसकी भयावह आकृति दर्शक को आपाद-मस्तक प्रकम्पित कर देती थी। वह दस्यु सरदार वस्तुतः एक भील था। मुझे देख कर वह बड़ा आनन्दित हुआ। वह प्रसन्नता के मारे बाँसों ऊपर उछलने लगा। मेरे रूप-यौवन के सौरभ का पान करने हेतु वह दुष्ट शठता पर उतर आया। मुझे 'प्रिय' शब्द से सम्बोधित करते हुए वह बोला—'मैं तुम्हारे चरणों का सदा सेवक बना रहूँगा। यदि तुम मुझे पति रूप में स्वीकार करो, तो मैं तेरा आजीवन आज्ञाकारी बना रहूँगा। अपने चित्त से समस्त भय निकाल दो। मैं तेरे प्रणय का याचक हूँ। तुझे अपने प्राणों से अधिक मानूँगा।' उस दुष्टात्मा के वचन मेरी देह में शूल के समान चुभे। मैं किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गयी। उस समय मैं ने दृढ़ता से काम लिया तथा उसे समझाना प्रारम्भ किया—'हे भीलराज! यह तुम क्या कह रहे हो? क्या तुम्हें अभी तक यह भी ज्ञात नहीं कि कुलीन प्राणी कभी कुमार्ग का पथिक बनना स्वीकार नहीं करते। ठीक उसी समय प्रकार नारियाँ भी अपना शीलव्रत नहीं त्यागतीं। जो कोई प्राणी अपना शीलव्रत भङ्ग करता है, वह अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ता है। उसे जन्म-जन्मान्तर में अपार दुःख भोगना पड़ता है।' पर सच तो यह है कि कामातुर के लिए सदाचरण का उपदेश निरर्थक है। जिस प्रकार अङ्गारवत् तप्त लोहे के तवे पर जल की दो बूँदें कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकतीं—केवल भाप बन कर उड़ ताती हैं, उसी प्रकार उस दुष्टात्मा भील सरदार के लिए मेरा अनुनय-विनय, मेरी सारी उत्तम शिक्षायें व्यर्थ सिद्ध हुईं। जिस प्रकार मूषिक के ऊपर बिल्ली टूट पड़ती है, अपने आखेट पर सिंह झपटता है, उसी प्रकार वह दुष्ट मेरे ऊपर टूट पड़ा। मुझे अपनी भुजाओं में दृढ़ता के साथ आबद्ध कर अपने निंद्य मनोरथ की सिद्धि के लिए वह तत्पर हो गया। मैं सम्भल गयी तथा दृढ़ता के साथ काम लिया। मैं उसी समय ताड़ गयी कि यह दुष्ट मेरा शीलव्रत भङ्ग किये बिना अब नहीं मानेगा।

तत्काल पदमासन लगा कर मैं एक स्थान पर बैठ गयी तथा अपने नेत्र मूँद लिये। उसकी सारी कुचेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई। उसके बहुविधि प्रयत्न करने पर भी मैं टस से मस नहीं हुई। जब भील सरदार को अपनी वासना की तृप्ति का कोई उपाय नहीं सूझा, तब उसने क्रोधित हो कर मुझे अपने संगी-साथियों को सौंप दिया। हे बन्धु! कुएँ से बची तो सामने भयङ्कर गहरी खाई मिली। भील सरदार के अनुचर उससे बढ़-चढ़ कर दुरात्मा, लम्पट एवं दुष्ट थे। वे सब मिल कर मेरे शीलव्रत का नाश करने के लिए कटिबद्ध हो गए। मैं भी समझ गयी कि अब इन दुष्टों के द्वारा मेरा पातिव्रत धर्म अवश्य ही खण्डित हो जायेगा।

ठीक उसी समय वन देवी ने आकर मेरी रक्षा कर ली। उसने प्रकट होकर उन नराधम दस्युओं को दण्ड (लाठी) प्रहार से भगा दिया एवं उन पापियों के चंगुल से मेरी रक्षा कर अपने यहाँ ले आयी। देखो, मैं कितनी कठिनाई से शील व्रत की रक्षा कर पायी। यद्यपि मेरे अन्दर अवगुणों का अभाव नहीं था, किन्तु एक शील व्रत की रक्षा करने के लिए मेरी आत्मा दृढ़ बनी रही। सच तो यह है कि जो अपने धर्म पालन में सदा तत्पर रहते हैं, उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। देवता तक उनके सेवक बन जाते हैं, किसी से उचित ही कहा है—

जो मरता धर्म करने में, वह मर कर भी नहीं मरता। अमरता उसको मिलती है, जो दृढ़ सेवा-व्रती रहता।।

ऐसे दृढ़व्रतियों के समक्ष संसार की सब से प्रबल मदमाती शक्ति भी अपना माथा टेक देती है। देवी के यहाँ जा कर मैं सुखी नहीं रह सकी। यद्यपि उसने दुष्टात्माओं से मेरा उद्धार किया तथा तथापि वहाँ का जीवन मेरे लिए दु:खमय था। हे भ्राता! मैं उन दुष्ट दस्युओं के चंगुल में नग्नप्राय हो गई थी। मेरे तन पर लज्जा-निवारण तक के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं थे। देवी ने कृपा कर मुझे एक कम्बल दे दिया, जिसमें जूएँ भरे हुए थे—वह रक्त एवं पीव से सराबोर था। वहीं कम्बल मेरी जल्ला निवारण करने का प्रधान साधन हुआ। सच है उस समय मेरे पापों का उदय हो रहा था, फलतः मेरे दुखों का अन्त कहाँ था? अब उस देवी की अनुकम्पा सुनिये—अपने वस्त्र रँगने के लिए वह मेरे शीश के केश नोच-नोच कर रक्त निकालती थी। उस समय मेरे शीश में असह्य पीड़ा उत्पन्न होती थी। किन्तु करती क्या, घोर विवशता थी। वह मेरे शीश के केश उखाड़ कर रक्त निकालती थी तथा मेरे शीश पर लाक्षामूल का तेल लगा कर मेरी पीड़ा हरण की कुचेष्टा करती थी। देव-संयोग से उसी वन में यौवन देव नामक मेरा भ्राता राजा पराशर के यहाँ से लौट कर आ रहा था। वह उज्जयिनी के राजा के किसी आवश्यक कार्य हेतु वहाँ गया था। मेरे भ्राता की दृष्टि मुझ अभागिनी पर पड़ गयी। उसका हृदय हर्ष से गद्गद् हो गया। उसने बड़े स्नेह से मुझे गले लगाया। मैं अपने प्रिय भ्राता के साथ उज्जयिनी लौट आयी। माता-पिता से मिलने पर आपबीती कह सुनायी। मेरी कष्ट गाथा सुन कर माता-पिता अधीर हो उठे। दु:ख के कारण मेरी देह कृश हो गयी थी, जिससे परिवार के सभी सदस्य बहुत दु:खित हुए। कुछ काल के पश्चात् मैं अपने पति के घर लौट आयी। तभी से मैं ने क्रोध करना त्याग दिया है। मैं क्रोध करने का कटु फल भोग चुकी हूँ, इसीलिये अब उससे क्रमशः निर्लिप्त रहना चाहती हूँ।

हे जिनदत्त! धर्म एक वृक्ष के सदृश है। सम्यग्दर्शन ही उस धर्मरूपी वृक्ष का मूल (जड़) है। समग्र शास्त्र उस वृक्ष के पींडकर है। दान उस वृक्ष की शाखा सदृश है। धर्मरूपी वृक्ष के गुण पत्ते हैं, कीर्ति पुष्प है तथा मोक्ष ही उसमें फल है। उस

धर्म-वृक्ष में क्षमारूपी जल पड़ने से सिंचन होता है, जिससे धर्म का स्वरूप पवित्रतम हो जाता है। यदि उस वृक्ष में क्रोध रूपी अग्नि लग जाए, तो वह अवश्य ही विदग्ध होकर भस्म हो जायेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपने हित के लिए क्रोध करने का परित्याग कर दे। सच है, क्रोध के सदृश इस संसार में अन्य कोई पाप नहीं। क्रोध ही पाप की जड़ है। अतः उसे त्याग देने से ही मनुष्य का कल्याण सम्भव है।'

तुंकारी के धर्मोपदेश से सेठ जिनदत्त को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने उस ब्राह्मणी की बड़ी प्रशंसा की। सेठ जिनदत्त अपने घर लौट आया। फिर उसने कुछ दिनों तक मेरी यथासाध्य बहुत वैयावृत्ति की तथा मेरे मस्तक पर लाक्षामूल का चमत्कारी तेल लगाया। परिणामस्वरूप अल्पकाल ही में मैं निरोग हो गया। मेरे आरोग्यलाभ कर लेने पर सेठ जिनदत्त तथा अन्य नगर-निवासियों ने आनन्दत्सव मनाया। अनेक जिनमन्दिरों में विधिवत् पूजा हुई तथा वाघ-वादन से सब ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। मेरे आरोग्यलाभ प्राप्त करने के कुछ दिनों के पश्चात् ही वर्षा ऋतु आ गयी। आकाश में मेघ घहराने लगे, विद्युत चमकने लगी एवं देखते ही देखते वृष्टि शुरू हो गयी। पृथ्वी के ऊपर की हरियाली छटा निराली दिखलाई देने लगी। जिधर देखिए उधर ही पृथ्वी हरी-भरी मखमली घास से आच्छादित हो गयी। उस हरी-हरी घास पर श्वेत जल-बिन्दु इस प्रकार नयनाभिराम दिखलाई देते थे, जैसे हरित रङ्ग की मणियों के ऊपर श्वेत मोती हों। मयूरों के हर्ष का तो कहना ही क्या था? वे आनन्द में मगन हो नृत्य कर रहे थे। लेकिन अपने दुःसह विरह के कष्ट से संतप्त रमणियों के लिए मेघ-वर्णण की शीतल जलधारा संतप्त अग्निज्वाला के समान थी। उसी भाँति कामीजनों के लिए मेघमाला मनोरथ सिद्धि में बाधक बन गया।

उस समय विरहिणी नारियाँ पक्षियों को अपने-अपने घोंसल में मोद मनाते देख कर मन मसोस कर रह जाती थीं। उनका हृदय अपनी विरह व्यथा से टूक-टूक हो जाता था। वे सोचती थीं कि वे ही संसार भर में अभागिनी हैं, क्योंकि विरह व्यथा केवल उन्हें ही सता रही है। उनके लिए प्रिय पति का वियोग मरण के समान दारुण दुःख है। हाय! ईश्वर कितना निष्ठुर है, जिसने पति वियोग के रूप में उनके ऊपर वज्राघात किया है। वे किस प्रकार यह असह्य वेदना सहें? इस प्रकार वर्षाकाल का आगमन होते ही संसार के समस्त जीव अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार दुःख-सुख का अनुभव कर अपने-अपने मन को समझाने लगे। वर्षाकाल के आ जाने से सेठ जिनदत्त एवं उसके मित्रों ने मुझ से उक्त ऋतु में उसी नगर में चातुर्मास करने का अनुरोध किया। उस नगर में अपने रहने के लिए उनका इस प्रकार दृढ़ आग्रह देख कर मैं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मैं सेठ जिनदत्त के घर सुख के साथ धर्मोपदेश करता हुआ रहने लगा। हे राजन्! सेठ जिनदत्त के पुत्र का नाम

कुबेरदत्त था। वह बड़ा दुर्व्यसनी था। सेठ जिनदत्त अपने पुत्र से सदा शंकित रहता था कि कहीं उसका पुत्र धन हड़प न कर जाए। ऐसा सोच कर उसने अपने पुत्र के भय से अपने बहुमूल्य हीरे, जवाहिरात, मणि, माणिक्यादि एक ताँबे के घट में रख कर मेरे आसन के पीछे भूमि में गाड़ दिये। किन्तु उसके पुत्र कुबेरदत्त ने अवसर पा कर उस घट को उखाड़ कर किसी अन्य स्थान में रख दिया। वर्षाकाल के व्यतीत हो जाने पर मैं ने अपने चातुर्मास का ध्यान समाप्त कर दिया। मैं ने हेयोपादेय विचार में लीन हो कर ईर्या समिति का पालन करते हुए वन की ओर प्रस्थान कर दिया। मेरे प्रस्थान के कुछ दिनों पश्चात् सेठ जिनदत्त रत्न से भरा हुआ अपना घट भूमि के अन्दर से निकालने के लिए गया, किन्तु वहाँ घट न पाकर उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वह घबड़ा कर अपने मन में सोचने लगा कि हाय! किसने मेरा जीवन-भर का सम्पूर्ण उपार्जन हड़प लिया? कितने कष्ट से मैं ने मितव्ययिता कर इतनी सम्पदा इकट्ठी की थी। किस चोर ने मेरे जीवन-भर की पूँजी चुरा ली। हा! मैं ने अपने अयोग्य पुत्र के भय से इस स्थान पर रत्नों का घट गाड़ दिया था, उसे अब भला कौन हड़प कर ले गया?

इस प्रकार सोचते-सोचते उसके मन में यह शङ्का उत्पन्न हुई कि कदाचित् मुनिराज ने तो मेरे रत्नों की चोरी नहीं कर ली है? उनके अतिरिक्त यहाँ पर कोई अन्य था भी नहीं, अतः निश्चय ही उन्होंने मेरे धन की चोरी की है। इस प्रकार सोचते-सोचते उसने निश्चय किया कि मुनिराज के निकट चल कर अपने धन के सम्बन्ध में जिज्ञासा करनी चाहिये। इस प्रकार अपने मन में दृढ़ निश्चय कर सेठ जिनदत्त ने अपने सेवकों को मुझे ढूँढ़ने के लिए चतुर्दिक भेजा। वह स्वयं भी मेरा पता लगाने निकल पड़ा। हे राजन्! मैं क्या जानता था कि जिनदत्त मेरे ही ऊपर अपना धन चुराने की शङ्का कर रहा है? मैं निश्चिंत होकर पर्वत की तलहटी में ध्यान लगा कर अपनी तपस्या में लीन था। तब तक सेठ जिनदत्त ने वहाँ आकर मुझे नमस्कार किया। अपने मन में कपट भाव रखते हुए उसने मधुर वचन में कहना प्रारम्भ किया—'हे मुनिराज! आपके दर्शन के लिए उज्जयिनी नगरी के निवासी जल-रहित मत्स्य (मछली) सदृश तड़प रहे हैं। वहाँ से आपके आने के पश्चात् जनता अधीर हो गयी है। अतः आप कृपा कर पुनः उज्जयिनी में आकर अपने उपदेश से भक्तों का चित्त प्रसन्न करें, ऐसी प्रार्थना है। हे प्रभो! वहाँ के श्रावकों की जैसी विह्वल अवस्था हो रही है, उसका वर्णन मैं ने कर दिया। अब आप जैसा उचित समझें, तद्नुकूल आचरण करें।'

हे महाराज! 'मन मलीन तन सुन्दर कैसे, विष रस भरे कनक घट जैसे' के अनुसार मैं जिनदत्त के कपटपूर्ण मधुर वचन सुन कर उसकी मनोदशा एवं सन्देहात्मक प्रवृत्ति को समझ गया। तब मेरे हृदय में यह भावना उठी कि संसार में समस्त अनर्थ की जड़ धन है। इसके कारण मनुष्य न जाने कितना अनर्थ कर डालता है। इसी के द्वारा पाप कर्म का बन्ध होता है।

अतः धन ही समस्त पापों, दुष्कर्मों एवं दुःखों की जड़ है। सच तो यह है कि धन के लिए अपना परम मित्र भी प्राण-ग्राहक शत्रु बन जाता है। एक क्षण पहिले जो संसार में सब से बढ़-चढ़ कर हमारी मित्रता की घोषणा कर रहा था, जो हमारे स्वेद (पसीना) के स्थान पर रक्त अर्पण करने हेतु प्राण हथेली पर लिए घूमता था, आज वहीं सुवर्ण व रजत के कुद्द टुकड़ों के प्रलोभन में अपनी प्रतिज्ञा भूल कर शत्रु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है। इस धन (उत्कोच) की चकाचौंध के सम्मुख अपने पराये बन जाते हैं तथा मित्रगण शत्रु। जिस स्त्री को हम लोग अर्द्धाङ्गिनी के पद से विभूषित करते हैं, जिसके ऊपर हम अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं, वहीं अर्द्धाङ्गिनी प्राणप्रिय पत्नी धन-वैभव के प्रलोभन में पड़ कर भयङ्कर काल-स्वरूप सर्पिणी बन कर फुँफकारने लग जाती है। तब किसके ऊपर विश्वास किया जाए? हाँ! माता के ऊपर अवश्य ही आस्था रखी जा सकती है? किंतु पापी धन के लिए वहीं माता अपने रक्त-मज्जा से उत्पन्न शिशु के ऊपर क्षुधित सिंहनी की भाँति टूट पड़ती है एवं अपने ही हृदय के अभिन्न अंश (बालक) के टुकड़े-टुकड़े कर डालती है। इसी धन के लिए पुत्र ने पिता का, पिता ने पुत्र का, सहोदर ने सहोदर का तथा सेवक ने स्वामी का निर्ममता के साथ वध तक कर डाला है। संसार के रक्त-रन्जित इतिहास के काले पृष्ठ पलटते जाइये, जिनमें रक्तिम लेखनी से धन के लिए हृदय-विदारक हत्याकाण्डवाली घटनाओं का वर्णन लिखा हुआ है। इसी धन के लिए संसार के समस्त सुख-वैभव को ठुकरा देने वाले मुनिराज तक चोर समझे जाते हैं। भला क्या स्वप्न में भी ऐसा विश्वास किया जा सकता था कि स्वयं जिनदत्त मेरे ऊपर अविश्वास करेगा? किन्तु आज वहीं अपने धन के अपहरण में मेरे ऊपर चोरी करने का सन्देह कर रहा है। अतः ऐसे धन के लोलुपों को बारम्बार धिक्कार है, जिनका निश्चय ही अधःपतन होने वाला है। इस प्रकार सोचता हुआ मैं विहार कर उज्जयिनी में सेठ जिनदत्त के घर गया। अनुकूल अवसर समझ कर सेठ जिनदत्त ने मुझसे कोई कथा कहने की प्रार्थना की। मैं ने उससे कहा—'हे जिनदत्त! अब तुम ही एक कथा कहो। मैं आज तुम्हारे मुख से कुछ सुनना चाहता हूँ।' हे राजन्! सेठ जिनदत्त तो चाहता ही था कि कथा के रूप में अपने हृदय के संतप्त उद्गार प्रकट करे। बस, अवसर मिलते ही उसने अपनी कुत्सित मनोदशा कथा के माध्यम से प्रकट की, जिसका अब ध्यानपूर्वक श्रवण करो—

इसी जम्बूद्वीप में बनारस नामक प्रख्यात नगर है। एक समय जनमित्र नामक एक राजा वहाँ राज्य करता था। उसके दरबार में अगदम्बार नामक एक वैद्यराज रहते थे। वैद्यराज की स्त्री का नाम धनदत्ता था। वह अत्यन्त रूपवती थी। राजा के संरक्षण में वैद्यराज का समय आनन्द से व्यतीत हो रहा था। वे राज्य से प्राप्त अनुदान-वृत्ति के बल पर देवों के सदृश वैभव-सुख भोगते थे। उनके दो मनोज्ञ पुत्र थे। एक का नाम था धनमित्र तथा दूसरे का धनचन्द्र। वैद्यराज के दोनों पुत्र

लाड-प्यार में रहने के कारण निरक्षर भट्टाचार्य ही रहे। उनके लिए काला अक्षर भी भैंस बराबर था। पर वैद्यराज निरूपाय थे। जब तक वैद्यराज अगदम्बार जीवित रहे, तब तक उनके दोनों पुत्र मुक्तहस्त सम्पदा लुटाते रहे। पिता की मृत्यु के उपरान्त उनके ऊपर विपत्ति के बादल घिर आये। उन्हें मूर्ख समझ कर राजा ने उनकी आजीविका-वृत्ति छीन ली। अब वे सब ओर से निराश होकर असहाय हो गए। पिता की मृत्यु का दु:ख तो था ही।

इधर उन्हें उदरपूर्ति की चिन्ता भी होने लगी। मूर्ख होने के कारण उनके हृदय में अत्यन्त गहन विषाद उत्पन्न हुआ। वे दु:खित होकर विद्या अहययन हेतु चम्पापुरी गए। चम्पापुरी में शिवभूति नामक एक ब्राह्मण वैद्य-शास्त्र में पारङ्गत थे। उनके निकट जाकर दोनों भ्राताओं ने वैद्यक-शास्त्र पढ़ना प्रारम्भ किया। अपनी लगन से अल्पकाल में ही वे वैद्यक-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हो गए। तब गुरु की अनुमति लेकर दोनों सहोदरों ने अपनी जन्मभूमि बनारस के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में एक चक्षुहीन व्याघ्र को देख कर धनमित्र ने अपने भ्राता धनचन्द्र से कहा—'देखो, यह चक्षुहीन व्याघ्र नेत्र ज्योति के बिना कितना कष्ट सह रहा है? यदि तुम कहो तो इसका उपचार कर दूँ।' धनचन्द्र ने अपने भ्राता की उक्ति सुन कर उसकी नादानी पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'हे भ्राता! यह तुम क्या कह रहे हो? यह भयङ्कर मांसाहारी पशु है। क्या इसके साथ उपकार करने से हम लोगों को प्राणहानि नहीं होगी? क्या सर्प को दुग्ध पिलाने से वह विष रहित हो जाता है? अतः ऐसी नादानी मत करो अन्यथा हम दोनों के प्राण व्यर्थ के उपकार में ही चले जायेंगे। लेकिन धनमित्र के भाग्य में तो प्रत्यक्ष महाकाल मँडरा रहा था। उसने अपने भ्राता की सलाह नहीं मानी। वह व्याघ्र की चक्षुहीनता का उपचार करने पर उतारू हो गया। जिस समय धनमित्र ने व्याघ्र के नेत्रों में औषधि का प्रयोग किया, ठीक उसी समय उसका सहोदर वृक्ष पर चढ़ कर पत्तों की आड़ में छिप कर समस्त गतिविधि का निरीक्षण करने लगा। औषधि में अपूर्व चमत्कार था, फलतः तत्काल व्याघ्र की नेत्र-ज्योति लौट आई। अपने स्वभावानुसार उसने अपने उपकार करनेवाले को उदरस्थ कर सूद समेत उपकार का ऋण चुका दिया।

इसके उपरान्त सेठ जिनदत्त ने मुनिराज को सम्बोधित करते हुए कहा—'हे भगवन्! आप कृपा कर के कहिये कि व्याघ्र ने अपने उपकारकर्त्ता का भक्षण कर क्या उचित कार्य किया था?' सेठी की व्यङ्गपूर्ण कथा श्रवण कर मैं ने उत्तर दिया—'हे सेठ! व्याघ्र ने अपने उपकारकर्त्ता का भक्षण कर निश्चय ही घोर कृतघ्नता का कार्य किया है। पर व्याघ्र का स्वभाव ही हिंसक होता है। यदि कोई प्राणी उपकार का प्रत्युत्तर कृतघ्नता से देता है, तो वह नियम से नरकपथगामी होता है। उसके सदृश संसार में अन्य कोई पापी नहीं सच तो यह है कि तुमने मुझे एक उत्तम कथा सुनाई है। अतः अब मैं भी तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ—

इसी जम्बूद्वीप में हस्तिनापुर नामक प्रसिद्ध नगर में एक समय विश्वसेन नामक एक चतुर नीतिज्ञ राजा शासन करता था। उसकी रानी का नाम वसुकान्ता था। उसकी सुन्दरता का वर्णन किन शब्दों में किया जाए, वह अपूर्व सुन्दरी थी। उसकी गजगामिनी-सी चाल, मृगी सदृश विशाल गोलाकार सुन्दर नेत्र, पूर्णिमा के चन्द्र सदृश मुखमण्डल समस्त भूमण्डल की रूपसियों के लिए प्रतिस्पर्धा की वस्तु थी। उसके वसुदत्त नामक एक पुत्र था, जो बड़ा ही महत्वाकांक्षी था। वह उत्तम-उत्तम गुणों का धारक, वीर तथा बुद्धिमान था। अपने पुत्र को सुयोग्य समझ कर राजा विश्वसेन उसके ऊपर राज्य-शासन का भार सौंप कर स्वयं आनन्द के साथ जीवन व्यतीत करने लगा। किसी दिन एक सार्थवाह के प्रमुख ने राजा विश्वसेन को उपहार देते समय उसमें आम की एक गुठली भी दी। उस गुठली को लेकर आश्चर्य प्रकट करते हुए राजा ने कहा—'यह क्या वस्तु हैं? मैं इसे नहीं पहचानता। कहो, किसलिये तुम ने मुझे यह दी है।' सार्थवाह प्रमुख ने कहा—'हे दीनबन्धु! यह आम नामक फल की गुठली है, जो समस्त रोगों के उपचार में समर्थ है। चूँकि ऐसा उत्तम फल आपके राज्य में उत्पन्न नही होता, अतः मैं ने आप की सेवा में यह भेट प्रस्तुत की है।' राजा विश्वसेन ने आम की गुठली अपनी रानी वसुकान्ता को दे दी। वसुकान्ता ने उसे अपने प्रिय पुत्र वसुदत्त को दे दिया। वसुदत्त आम की गुठली लेकर अपने पिता राजा विश्वसेन के निकट आया। राजा के हाथ में उसे रख कर उसने उस आम की गुठली के सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की।

अपने प्रिय पुत्र की जिज्ञासा सुन कर राजा ने स्नेहपूर्वक कहा—'हे पुत्र! संसार में सर्वश्रेष्ठ फल आम होता है। उसकी उत्पत्ति इसी गुठली के द्वारा होती है। उस फल से मनुष्य के समस्त रोग दूर हो जाते हैं।' इस प्रकार कह कर राजा ने एक चतुर माली के हाथों में वह आम की गुठली किसी योग्य भूमि में रोपने के लिए दे दी। माली ने उसे ले जाकर योग्य उर्वरभूमि में वपन किया तथा यथासम्भव प्रयत्नपूर्वक उसकी देखभाल की। फलस्वरूप वही आम की छोटी गुठली एक विशालकाय वृक्ष के रूप में परिवर्त्तित हो गयी। माली के परिश्रम से जब उस वृक्ष में उत्तम-उत्तम सुमधुर फल लग गए, तब तो उसके आनन्द का पारावार ही न रहा। एक दिन एक गिद्ध (उसके द्वारा) आखेट किए गए सर्प के मृत कलेवर को ले कर आकाश में उड़ते हुए वहाँ से निकला, तब संयोग से उस मृत सर्प की काया से एक विष-बिन्दु आम्र-वृक्ष के एक फल के ऊपर जा गिरी। विष के ताप से वह आम्र-फल समय पूर्व ही पक गया। राजोद्यान के माली ने उस आम्र-फल को डाली से तोड़ कर विनय के साथ स्वामी के सन्मुख प्रस्तुत किया। राजा ने आम्र-फल ग्रहण कर माली को समुचित पारितोषित देकर प्रसन्न किया। माली राजा की जय-जयकार करता हुआ चला गया। राजा ने उस दुर्लभ आम्र-फल को अपने पुत्र वसुदत्त को प्रदान किया। वसुदत्त फल का स्वाद लेते ही अचेत हो गया। क्षण मात्र में उसके सर्वाङ्ग में भयङ्कर विष व्याप्त हो गया। राजा विश्वसेन भी अपने प्रिय पुत्र

को मरणासन्न देख कर मूर्च्छित हो गया। शीतलोपचार द्वारा सचेत होने पर उसने आम के वृक्ष को समूल विनष्ट कर डालने की आज्ञा दी तथा अपने राजवैद्य को बुला कर राजकुमार के अचेत होने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। चतुर राजवैद्य ने राजा को ऐसा न करने का परामर्श दिया तथा एक आम्र-फल मँगवा कर तत्काल राजपुत्र को खिलाया, जिससे उसकी अचेतनता तिरोहित हो गयी। अब राजा विश्वसेन अपने अधैर्य पर सन्ताप प्रकट करने लगा। उसके हृदय में आम्र-फल के सम्बन्ध में घृणा के जो भाव उत्पन्न हो गये थे, वे विलुप्त हो गए। उन्होंने आम्र-फल की गुणवत्ता समझ ली। वे बारम्बार अपने उतावलेपन पर पछताने लगे।

अतः हे जिनदत्त! जो मनुष्य बिना सोचे-समझे उतावलेपन में आकर कोई कार्य कर बैठता है, वह अपनी असफलता पर अन्त में पश्चाताप करता है। उसका कार्य तो असफल होता ही है, स्वयं भी वह सर्वसाधारण के मनोविनोद (हंसी) का पात्र बन जाता है। किसी कवि ने उचित ही कहा है—

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय। काम बिगारे आपनी, जग में होत हँसाय।।

हे जिनदत्त! तुम ही बतलाओं कि राजा ने बिना विचारे आम के वृक्ष को काट देने की जो आज्ञा दी थी, क्या वह उचित थी? क्या उन्हें ऐसा करना चाहिए था?

मुनिराज का प्रश्न सुन कर सेठ ने कहा—'हे स्वामी! इसमें सन्देह नहीं कि राजा ने आम्र-वृक्ष के काटने की आज्ञा देकर उचित कार्य नहीं किया था। अब मैं आपको एक नवीन कथा सुना रहा हूँ, आशा है कि आप उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे।' इस प्रकार कह कर सेठ जिनदत्त ने अपनी कथा प्रारम्भ की—किसी समय गङ्गा के पवित्र तट पर विश्वभूति नामक एक तपस्वी साधना करता था। एक दिन गङ्गा की धारा में एक गज-शिशु को बहते हुए देख कर तपस्वी के हृदय में करुणा आ गयी। परिणामस्वरूप उसने उस गज-शिशु की प्राणरक्षा की तथा उसे अपने यहाँ ले आया। तपस्वी के यत्नपूर्वक लालन-पालन के फलस्वरूप अल्पकाल में वह शिशु एक विशाल गजराज में परिणत हो गया। एक दिन एक राजा ने उस पर मुग्ध हो कर तपस्वी से उसे क्रय कर लिया। लेकिन वह अबोध गजराज अब महावत के अंकुश-प्रकार से दुःख पाने लगा। बहुविधि यत्न करने पर भी वह महावत से कुछ भी कलाकारी न सीख पाया। क्रुद्ध महावत अपने अंकुश के प्रहार से उसका सर्वाङ्ग क्षत-विक्षत करने लगा। एक दिन अनुकूल अवसर पा कर वह गजराज पलायन कर गङ्गा तट पर उसी तपस्वी के समीप आ गया। परन्तु तपस्वी ने उसे अन्य की सम्पदा मान कर वहाँ नहीं रहने दिया। तब उस अज्ञानी गजराज ने क्रोध से उन्मत्त हो

कर तपस्वी का प्राण-हरण कर लिया। हे महात्मन्! आप ही कहिये उस गजराज ने तपस्वी के प्राण लेकर क्या उचित व्यवहार किया?'

मैं ने उत्तर दिया—'नहीं, उसका आचरण कदापि न्यायसंगत नहीं माना जाएगा। जो अपने उपकारी को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, वे भयङ्कर कष्ट सहन करते हुए नियम से नरकगामी होते हैं। अतः ज्ञानीजन कृतध्न को हिंसक प्राणी से कहीं अधिक निकृष्ट मानते हैं। हिंसक तो स्वभाव से ही हिंसा करता है, किन्तु उपकार का विस्मरण कर देना हिंसा करने से भी अधिक निन्दनीय है। यदि हिंसक सरसों के सदृश हल्का है, तो कृतध्न पर्वत के सदृश भारी है। अतः हे जिनदत्त! अब मैं भी एक नवीन कथा सुना रहा हूँ, जिसके ध्यानपूर्वक श्रवण से तुम्हारे भ्रम का अवश्य निवारण होगा।

चम्पापुरी नामक नगर में एक गणिका रहती थी। उसका नाम देवदत्ता था। वह देवांगनाओं के सदृश रूपवती थी। सभी वर्ग के जनता उसकी रूपराशि की प्रशंसा करते नहीं अघाती थी। उसने एक शुक (तोता) पाल रखा था। वह गणिका उस शुक पर अपने प्राण से बढ़ कर अनुराग रखती थी। एक दिन देवदत्ता उस शुक के लिए एक पात्र में आसव (शराब) रख कर किसी अन्य कार्य हेतु चली गयी। इतने में एक बालिका ने धीरे से आकर पात्र में विष घोल दिया। आत्माराम (शुक का नाम) बालिका की काली करतूत देख रहा था। गणिका ने लौट कर शुक को विषमय आसव पिलाना चाहा, किन्तु आत्माराम उसे न पीने के हठ पर अडिंग रहा। गणिका ने बहुविधि उपाय किया पर तब भी शुक ने विष-मिश्रित आसव नहीं पिया। क्लान्त होकर गाणिक ने उसे बलपूर्वक पिलाने का निश्चय किया। इस पर शुक ने चिल्ला-चिल्ला कर ऊधम मचाना प्रारम्भ कर दिया। देवदत्ता ने क्रोध में आकर उसका कण्ठ घोंट कर वध कर दिया। हे जिनदत्त! तुम ही बतलाओं कि गणिका का कार्य क्या उचित माना जायेगा?

सेठ ने उत्तर दिया—'हे मुनिराज! गणिका का कार्य कदापि न्यायसंगत या उचित नहीं कहा जायेगा। मैं अपनी तीसरी कथा सुनाता हूँ, आशा है कि आप सुनेंगे तथा अपना मन्तव्य प्रकट करेंगे। इस भूतल पर सुप्रसिद्ध वाराणसी नगर है। उसमें एक धनाढच व्यापारी रहता था। वह विपुल धनराशि का अधिपति था। सुवर्ण-खचित प्रासाद में उसका निवास था। लोग उसे सेठ वसुदत्त के नाम से सम्बोधित करते थे। उसका उदर विशेष स्थूल था। उसकी पत्नी का नाम वसुदत्ता था। वह अपने गुणों के कारण पति की प्रेयसी बनी हुई थी। एक दिन उसी नगर में एक चोर किसी के घर में अनाधिकार प्रविष्ट होकर चोरी करने का प्रयत्न करने लगा। उस समय घर के सब लोग जगे हुए थे। आहट पा कर वे सब चोर को पकड़ने के लिए दौड़

पड़े। तब प्राणरक्षा हेतु वह पलायन कर गया, लेकिन लोगों ने पीछा नही त्यागा। जब चोर ने अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं देखा, तब वह घबड़ा कर सेठ सुभद्रदत्त के प्रासाद में घुस गया तथा उनसे अपनी प्राणरक्षा की प्रार्थना करने लगा। सेठ सुभद्रदत्त ने उसके ऊपर द्रवित हो कर उसे अपने वस्त्रों में छिपा लिया। इतने में कोटपाल प्रहरी सैनिकों के साथ सेठजी के निकट आ कर चोर के 'सम्बन्ध में पूछताछ करने लगा। सेठ ने उसके प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया। कोटपाल ने समस्त प्रासाद में ढूँढ़ कर देखा, किन्तु चोर का कहीं भी सन्धान नहीं मिला। वह तो सेठ जी के स्थूलकाय उदर के नीचे छिपा हुआ था। सेठजी के घर में चोर को न पा कर कोटपाल वापिस चला गया। उसके चले जाने पर सेठ सुभद्रदत्त ने चोर से कहा—'हे बन्धु! अब कोई भय नहीं है। तुम निर्भय हो कर अपने घर जाओ।' सेठ की बात सुन कर उस समय तो वह वहाँ से बाहर चला गया, पर जब सब निश्चिन्त हो कर द्वार बन्द कर सो गए, तब वह सेठ जी के घर में ही गुप्त रूप से लौट कर आ गया। उसने निर्भयता के साथ सेठजी के घर में चोरी की। प्रातःकाल होते ही सेठजी को ज्ञात हो गया कि वे अपनी प्रचुर धन-सम्पदा से हाथ धो बैठे हैं। वे अपने मन में विचार करने लगे कि होम करते हाथ जल गया—क्या परोपकार करने पर यही प्रत्युपकार मिलता है? देखो दया कर जिसकी प्राणरक्षा की, वहीं उनके साथ इस प्रकार विश्वासघात करने लगा। उनके मुख से सहसा यह उक्ति निकल पड़ी—

दुष्ट न छोड़े दुष्टता, कैसा हू सुख देत। प्राण बचाया चोर का, माल वही हर लेत।।

हे मुनिनाथ! आप ही कहिये कि जिस सेठ ने चोर की रक्षा की, उसी ने सेठ के यहाँ चोरी कर अपनी कृतज्ञता प्रदर्शन का उत्तम प्रमाण दिया। हे प्रभो! क्या चोर का यह कार्य उचित कहा जायेगा?

मैं ने कहा—'नहीं! वह चोर बड़ा भारी पापी था। उसने अपने उपकारी के साथ घोर विश्वासघात कर निन्दनीय पाप किया। संसार में इस प्रकार के निन्दित कार्य को कोई श्रेष्ठ पुरुष उचित नहीं ठहरा सकता। हे जिनदत्त! अब मैं एक कथा सुना रहा हूँ, जिसे सुन कर तुम्हारे मन का संशय अवश्य मिट जायेगा।, इस प्रकार कह कर मैं ने अपनी कथा कहना प्रारम्भ किया—

इसी आर्यभूमि में बङ्गदेश नामक एक प्रदेश है। वह अत्यन्त सुन्दर, रमणीक तथा कामदेव की क्रीड़ा-भूमि तुल्य है। उसी में चम्पापुरी नामक एक नगरी है। उस नगरी में भव्य प्राणियों का निवास है। उसमें चम्पा, केतकी, कुमुदादि अनेक प्रकार के पुष्पों के गुच्छे सदैव सदाबहार एवं पुष्पों से भरे रहते हैं। उसी चम्पापुरी में सोमशर्मा नामक एक धनाढच ब्राह्मण रहता था।

लक्ष्मी के साथ-साथ सरस्वती भी उससे प्रासन्न थी। वह विद्या एवं लक्ष्मी दोनों का वरद् पुत्र था। वह-वेदाङ्गों का पूर्ण ज्ञाता था। सोमशर्मा की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम था सोमिल्ला तथा दूसरी का नाम सोमशर्मिका। सोमशर्मा सोमिल्ला के ऊपर विशेष अनुराग रखता था। इसका कारण यह था कि वह पुत्रवती थी। जब उसकी दूसरी पत्नी सोमशर्मिका ने देखा कि पति सोमशर्मा का उसके ऊपर लेशमात्र भी प्रेम नहीं है, तब वह सौत सोमिल्ला से तथा उसके बालक से डाह रखने लगी। उसने घर में कलह मचाना प्रारम्भ किया। सोमिल्ला के साथ अहर्निश विवाद होने लगा। कुछ समय पूर्व जिस घर में पूर्ण शान्ति का सुखद वातावरण था, वहाँ बात-बात में उपद्रव होने लगा। विवश सोमशर्मा अपने घर की कलह से ऊब गया। इधर सोमशर्मिका अपने मन में विचार करने लगी कि किस प्रकार सोमिल्ला को हानि पहुँचाऊँ। उसी नगरी में एक शान्त प्रकृति का वृषभ (बैल) रहता था। उसके सरल होने के कारण जनसामान्य उसे 'भ्रद' के नाम से सम्बोधित करने लगा। सभी उस वृषभ को खिलाते-पिलाते थे, जिससे वह सदैव मोदपूर्वक विचरण करता था। एक दिन वह वृषभ (भ्रद) सोमशर्मा के द्वार के सम्मुख खड़ा होकर अपनी तरङ्ग में आनन्द का अनुभव कर रहा था। सोमशर्मिका ने वृषभ को सम्मुख खड़ा देख कर अपने मन में दृढ़ निश्चय किया कि सोमिल्ला से प्रतिशोध लेने का सुवर्ण अवसर प्रस्तुत है, अतः इसका लाभ अवश्य उठाया जाए। उसने कोठे पर जाकर ऊपर से सोमिल्ला के शिशु को वृषभ के सींग पर पटक दिया। सोमिल्ला का छोटा-सा शिशु भला ऐसा भीषण आघात कैसे सहता? एक चीख के साथ वह सदैव के लिए इस क्रूर संसार को छोड़ कर चल बसा? सोमशर्मा के शिशु की मृत्यु से चारों ओर हाहाकार मच गया। सारा जनसमुदाय शोक से अभिभूत हो उठा। कितने ही शोक-सन्तप्त ब्राह्मण सोमशर्मा के निकट समवेदना प्रकट करने आए। सब की जिह्वा पर एक ही बात थी। इस दुष्ट वृषभ ने अबोध शिशु के प्राण ले लिए। सब की दृष्टि में वह वृषभ कृतघ्न हो गया। अब वह आहार के अभाव में मृतप्राय रहने लगा। अन्त में प्रजाजन ने उसे मारपीट कर नगरी से बाहर निकाल दिया। भद्र भला क्या करता? आहार के अभाव में उसकी दशा दयनीय हो रही थी। जब लोगों ने उसे बिना समझे-बूझे मार-पीट कर नगर से निष्कासित कर दिया, तब वह अत्यन्त दु:खी होकर अपने मने में विचार करने लगा—'स्त्रियों का स्वभाव बड़ा विचित्र होता है। वे कब क्या कर बैठेगी, इसकी थाह पाना जब बड़े-बड़े देवताओं तक के लिए दुष्कार कार्य है, तब भला मनुष्य की क्या बिसात है। किसी ने सत्य ही कहा है—

जिस चरित्र का देव-इन्द्र तक नहीं पार पा सकते हैं। उस चरित्र की थाह स्वयं विधि भी नहीं लगा पाती हैं।।
फिर मनुष्य क्या उस चरित्र को पढ़ कर पता लगायेगा? वह चरित्र नारी का है जगमाँहि विचित्र कहायेगा।।

संसार में स्त्रियाँ गर्हित-से-गर्हित पाप को कर सकती हैं। उनके लिए कुछ भी करना असम्भव नहीं है। स्त्रियाँ माया की

खानि हैं तथा पापों की जड़। उनकी गति-मति विचित्र है, क्योंकि उनकी बातों तथा कामों में आकाश-पाताल का अन्तर होता है।

स्त्रियाँ एक ओर वार्तालाप करेंगी, तो दूसरी ओर अपनी मृग-मारीचिका फैलायेंगी—इस प्रकार किसी भी स्थान पर अपना स्वार्थ साधेंगी। वे किसी को कोई वस्तु देने की प्रतिज्ञा तो कर लेती हैं, पर उसे न दे कर किसी अन्य व्यक्ति को दे देती हैं। उनकी मनोभावना का कुछ भी ठिकाना नहीं रहता। न जाने अबोध कविगण नारी को अबला की उपमा से क्यों विभूषित करते हैं? कौन कहता है कि वे अबला होती हैं? वे तो बड़ी भारी बला हैं। स्त्रियों का संकल्प भयङ्कर होता है। स्त्रियाँ भयङ्कर से भयङ्कर कार्य पूर्ण कर के ही सन्तुष्ट होती हैं। वे जिस कार्य को अपने हाथ में लेती हैं, उसे पूर्ण कर के ही रुकती हैं। संसार के बड़े से बड़े योद्धा स्त्रियों के कटाक्ष पर मन्त्र-मुग्ध होकर परास्त हो जाते हैं, उनके चरणों पर लोटने लगते हैं। सूर्य का शीतल हो जाना सम्भव है, चन्द्रमा का अङ्गारवत् तप्त होना भी असम्भव नहीं, सूर्य पूर्व दिशा के स्थान पर पश्चिम में उदय हो सकता है; किन्तु स्त्रियाँ सत्य सम्भाषण कर सकती हैं—यह स्पप्न में भी सम्भव नहीं है। वे सदा मिथ्या का व्यापार करती हैं, उसी का प्रचार करती हैं। जिस समय स्त्रियाँ व्यभिचारिणी बन जाती हैं; उस समय तो उनके हृदय में पुत्र, माता-पिता, कुटुम्ब-परिवार, किसी के प्रति लेशमात्र भी ममता शेष नहीं रह जाती। वह सब को निसङ्कोच तिलान्जलि दे कर अपने प्रेमी के साथ देश-विदेश में भटकती हैं। अपने उत्तम कुल में कलङ्क लगाना स्त्रियों का कार्य है, पति से कहल-विवाद उनकी दिनचर्या है स्त्रियाँ मरने-मारने हेतु सदैव तत्पर रहती हैं। इसीलिये जिन योगेश्वरों ने स्त्री शब्द का नामोच्चार तक त्याग दिया है, वे बधाई के पात्र हैं—वे ही आत्मा के सच्चे ज्ञाता हैं। छीनाझपटी, मिथ्याभाषण स्त्रियों का दैनिक कर्म है, उन पर विश्वास करना नितान्त मूर्खता है। सच तो यह है कि जो लोग स्त्रियों के ऊपर विश्वास करते हैं, वे अपना लोक-परलोक दोनों विनष्ट करते हैं।

स्त्रियाँ नरक की खानि होती हैं। कामुकतारूपी रोग को बढ़ानेवाली स्त्रियाँ ही हैं। अतः उनसे दूर रहने में ही सब का कल्याण है। इस प्रकार अपने मन में संकल्प-विकल्प करता हुआ वह (वृषभ) चम्पापुरी के बाहर रहने लगा। उसी चम्पापुरी में समस्त वणिकों का प्रमुख एक बड़ा धर्मात्मा सेठ भी रहता था, जिसे जिनदत्त के नाम से लोग सम्बोधित करते थे। जिस प्रकार जिनदत्त धर्म-कर्म में सदा संलग्न रहता था, उसी प्रकार उसकी पत्नी जिनमती भी धर्मपरायण थी। रूपवती तो वह थी ही, साथ में अपने उत्तम गुणों से अपने पति की प्रिय पत्नी बनी हुई थी। इस प्रकार दोनों का जीवन आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। जिस प्रकार सुख के बाद दु:ख, दिन के अनन्तर रात्रि तथा प्रकाश के पश्चात् घोर अन्धकार है, उसी

प्रकार सेठ जिनदत्त की उन्नति का मार्तण्ड अस्ताचल की ओर अग्रसर हुआ। सच है कि जब मनुष्य के विपरीत दिन आते हैं, तब अपने भी बेगाने बन जाते हैं। कालान्तर में लोगों ने जिनमती पर दुराचारिणी होने का आरोप लगाया। अपने निर्मल चरित्र के ऊपर लोगों को इस प्रकार आक्षेप करते देख जिनमती के सरल ह्रदय में अपार वेदना हुई। उसका निरछल ह्रदय करुण क्रन्दन कर उठा। जिनमती को शेकाकुल देख कर कुछ लोग उसके निकट आकर कहने लगे—'यदि तुम्हारा चरित्र निर्मल है, तो जलते हुए लोहे का गोला हाथ में लेकर अपनी निर्दोषिता सिद्ध करो।' जिनमती तो सती-साध्वी स्त्री थी। 'साँच को आँच कहाँ' की उक्ति वह साक्षात् चरितार्थ करती थी। लोगों के इस प्रकार कहने पर वह प्रसन्नता के साथ परीक्षा देने हेतु प्रस्तुत हो गयी।

निश्चित तिथि पर जिनमती उपस्थित जन-समुदाय के सम्मुख अपने हाथ पर जलते हुए लोहे के गोले को लेने हेतु अग्रसर हुई (जिससे उसकी सच्चरित्रता सिद्ध हो सके)। ठीक उसी समय भद्र (वृषभ) वहाँ आ पहुँचा। लोगों के वार्तालाप से उसे समस्त वृत्तान्त ज्ञात हो गया था। वृषभ भद्र ने जलते हुए लोहे के उस गोले को अपने दाँतों में पकड़ लिया। जब बहुत समय तक उसके मुख में गोला रहने पर भी उस (वृषभ) का मुख नहीं जला, तब लोगों के आश्चर्य का पारावार नहीं रहा। वृषभ भद्र ने गोले को मुख में रख कर अपनी निर्दोषिता प्रमाणित कर दी। उस समय वहाँ पर जितने लोग उपस्थित थे, सब ने एक स्वर से भद्र की प्रशंसा की। लोग परस्पर कहने लगे कि भद्र निर्दोष था तथा अकारण ही इसके ऊपर दोषारोपण किया गया है। देखो, इसने किस प्रकार अपने मस्तक को कलङ्क-कालिमा धो दी है। सब लोग भ्रद की जय-जयकार मानने लगे। कुछ काल के पश्चात् जिनमती ने अपने उस जलते हुए लोहे के गोले को भद्र (वृषभ) से ले कर अपने हाथों में दृढ़तापूर्वक थाम कर उपस्थित जन-समुदाय को पुनः आश्चर्यचकित कर दिया। इस प्रकार अपनी अग्नि-परीक्षा में सफल सिद्ध होकर उस सती'साध्वी ने मिथ्यावादियों पर आरोपित कर दिया कि वे सभी ओछी (छिछली) मनोवृत्ति के प्राणी हैं, जो किसी भी तथ्य का साङ्गोपाङ्ग (गहराई में जाकर) अन्वेषण कर सत्य के अनुसन्धान में असमर्थ हैं। उन मिथ्याभियोगियों ने अकारण ही एक परम सुशीला नारी पर कीचड़ उछाला था, व्यर्थ में ही उसके पातिव्रत्य पर कुटिलतापूर्वक विभ्रम उत्पन्न किया था। जिस शीलपरायणा ने कभी पर पुरुष की छाया तक अपने स्वप्न में नहीं आने दी थी, उसके ऊपर इतना भीषण कलङ्क उन पापात्माओं ने लगाने का दुस्साहस किया था। क्या कोई दुराचारिणी नारी इस प्रकार की अग्नि-परीक्षा से गुजरने की स्वप्न में भी कल्पना कर सकती थी? कदापि नहीं।

समस्त प्रजा में जिनमती की जय-जयकार गूँज उठी। मिथ्यारोपियों ने अपनी पराजय स्वीकार कर क्षमा याचना की। इस प्रकार परीक्षा की कसौटी पर खरी उतर कर जिनमती ने अपना सतीत्व सिद्ध कर दिया। तब मैं (मुनिराज) ने जिनदत्त से जिज्ञासा की–'हे जिनदत्त! वृषभ तथा जिनमती के ऊपर व्यर्थ में कलङ्क लगा कर लोगों ने उचित कार्य किया अथवा अनुचित?'

मेरे कथानक को ध्यानपूर्वक सुन रहे जिनदत्त ने विचार कर कहा–'हे मुनिराज! लोगों ने मात्र शङ्का के आधार पर व्यर्थ में दोषारोपण कर बड़ा अनर्थ किया। ऐसे लोग निन्दा के पात्र हैं तथा नियम से नरकगामी होंगे। हे मुनिनाथ! अब कथा सुनाने का एक अवसर मुझे भी प्रदान करें।' मरे 'तथास्तु' कहते ही जिनदत्त ने अपनी कथा प्रारम्भ कर दी–

इसी भूमण्डल पर पद्मरथ नामक एक नगर है। एक दिन वहाँ के राजा वसुपाल ने अयोध्या नरेश जितशत्रु के निकट कोई आवश्यक कार्यवश अपना एक दूत भेजा, जो कि ब्राह्मण था। मार्ग में एक दुर्गम वन पड़ता था, जिसमें नाना प्रकार के हिंसक जीवों का निवास था। वहाँ जल का कोई भी स्त्रोत दिखलाई नहीं दे रहा था, जब कि यात्रा के श्रम से शिथिल उस ब्राह्मण का कण्ठ जल की पिपासा में सूखा जा रहा था। निरूपाय हो कर वह एक वृक्ष के नीचे लड़खड़ा कर गिर पड़ा। उसकी दुर्दशा पर द्रवीभूत हो कर एक सहृदय वानर ने उसे जल से परिपूर्ण सरोवर का मार्ग बतलाया। प्रसन्नतापूर्वक अपनी पिपासा शान्त कर वह नीच बुद्धि ब्राह्मण मन में विचारने लगा–'अब आगे पुनः जलाश्य का संयोग हो न हो, अतः कुछ यत्न करना चाहिए। यदि मैं इस निर्बुद्धि वानर का वध कर के उसके चर्म की एक थैली (मशक) बना लूँ, तब उसमें पर्याप्त जल भर कर निःशङ्क अग्रसर हो सकूँगा।'

अवसर पाते ही कृतघ्न ब्राह्मण ने उस उपकारी वानर की हत्या कर उसके चर्म की थैली बना कर उसमें जल भर लिया। अब वह मोद मनाता हुआ गन्तव्य की ओर उन्मुख हुआ। हे दयालु मुनिराज! आप ही न्याय कीजिए कि प्राणरक्षक निरीह वानर का वधिक वह ब्राह्मण कैसा व्यक्ति था?' मैं ने अपना स्पष्ट अभिमत दिया–'हे जिनदत्त! तुम्हारा कथा-नायक ब्राह्मण अपने अधोपतन की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। ऐसे नर-पिशाचों की जितनी भी निन्दा की जाए, वह न्यून है। सच है पापी प्राणी अपना स्वभाव तज नहीं पाते एवं उपकारी के साथ भी कृतघ्नता का ही परिचय देते हैं। ऐसे नराधम नियमपूर्वक नरक के कीट बनते हैं। वे लोग तथा परलोक दोनों में अपयश के पात्र समझे जाते हैं। अब मैं एक कथा सुना रहा हूँ, जिसे ध्यानपूर्वक सुनो–

इसी जम्बूद्वीप में कौशाम्बी नामक प्रसिद्ध नगरी है। जिस कालखण्ड की यह कथा है, तब वह नगर श्री एवं समृद्धि से परिपूर्ण था। वहाँ के निवासियों का दरिद्रता से केवल शाब्दिक परिचय था। सभी सूखपूर्वक आनन्दमय जीवन व्यतीत करते थे। उक्त नगरी में सोमशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम कपिला था। कपिला रूप, गुण एवं पति-परायणता में अग्रणी थी। एक दिन सोमशर्मा को किसी कार्य के लिए देशाटन करना पड़ा। मार्ग में एक वन में नेवले का एक सुन्दर शावक (बच्चा) देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ एवं उसे अपने घर ले आया। कपिला नेवले का शिशु देख कर प्रसन्न हुई। तब तक कपिला भी सन्तानहीन थी, अतः वह बड़े स्नेह से नेवले के शिशु का पालन करने लगी। वह शावक अल्पकाल में ही पूर्ण वयस्क नेवला बन गया। जब कपिला उसी के संग क्रीड़ा-विनोद में अधिकांश समय व्यतीत करने लगी।

संयोग देखिये, नेवला के आने के पश्चात् कालक्रम से कपिला के एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। पुत्र-जन्म के उल्लास में ब्राह्मण-ब्राह्मणी के हर्ष का पारावार न रहा। दोनों आने भाग्य की एवं नेवला के आगमन की सराहना करने लगे। मातृत्व की पूर्ति से कपिला ने अपना नारी-जन्म सफल माना।

इस प्रकार ब्राह्मण-दम्पति आनन्द के साथ अपना दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगे। पुत्रवती होने पर भी कपिला ने अपने प्रिय नेवले को विस्मृत नहीं किया। नेवले के ऊपर उसका स्नेह पूर्ववत् बना रहा। नेवला भी घर की रखवाली करते हुए सुख से रहता था। एक दिन कपिला अपने पुत्र को पालने में सुला कर धान के खेल पर चली गयी। उसने पुत्र की रक्षा करने के लिए नेवले को सावधान कर घर पर छोड़ दिया। नेवला सतर्क होकर बालक की रक्षा करने लगा। इतने में एक भयङ्कर कृष्णवर्ण नाग बालक के समीप पहुँच गया। नेवला भी सतर्क था। अपने प्राणों की चिन्ता न कर वह शत्रु (नाग) पर टूट पड़ा। उधर स्वाभाविक द्वेष के कारण नाग भी फण उठा कर युद्ध हेतु प्रस्तुत हो गया। दोनों में प्रचण्ड घात-प्रतिघात होने लगा। कुछ काल तक नाग नेवले के साथ लड़ता रहा, किन्तु अन्त में नेवले ने नाग के ऊपर विजय पायी। उसने बड़े कौशल के साथ नाग के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। नेवले का सर्वाङ्ग नाग के रक्त से लथपथ हो गया। क्लान्त नेवला अब शान्त होकर बालक के पालने के निकट बैठ कर अपनी स्वामिनी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। वह कभी द्वार के निकट जाता, तो कभी बालक के निकट लौट आता। इतने में कपिला का पदचाप स्पष्ट सुनाई पड़ा। नेवला दौड़ता-कूदता तत्काल उसके समीप पहुँच गया। उसे रक्त में लथपथ देख कर कपिला के मन में विचार उठा कि इसी माँसाहारी ने बालक का भक्षण कर लिया है। उसका रोम-रोम प्रतिशोध की अग्नि में जलने लगा। तत्काल हँसिया के प्रहार से उसने असावधान नेवले का वध कर दिया। जब कपिला शोकाकुल हो अपने पुत्र के पालने के निकट पहुँची, तब उसने बालक को पालने में किलकारी भरते

हुए क्रीड़ारत पाया। समीप ही एक महाभयङ्कर नाग के टुकड़े मिले। स्वामीभक्त नेवले का स्मरण कर कपिला 'हाय! हाय!!' करती रह गयी। उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। हे जिनदत्त! अब तुम अपना अभिमत व्यक्त करो कि कपिला ने निर्दोष नेवले का वध कर क्या उचित किया, जब कि वह नाग के टुकड़े-टुकड़े कर उसके पुत्र की प्राणरक्षा कर चुका था।

प्रश्न सुन कर जिनदत्त कहने लगा—'हे महामुनि! नेवले का वध कर उस ब्राह्मणी ने बड़ी अनीति की। बिना विचारे काम करने वाले प्रायः इसी प्रकार पछताते हैं।' इस प्रकार कह कर मुझ से सहमति लेकर जिनदत्त ने एक नवीन कथा प्रारम्भ की—

इसी आर्यखण्ड के वाराणसी नामक प्रसिद्ध नगर में एक ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम सोमशर्मा था। उसकी सोमा नाम की पत्नी थी, जो बड़ी व्यभिचारिणी थी। जिस समय सोमशर्मा कार्य हेतु बाहर चला जाता था, उस समय सोमा अपने प्रेमियों के साथ व्यभिचार करती थी। पति के लौटने पर सोमा छल-कपट का प्रयोग कर उसे अपने प्रति शङ्का करने का अवसर नहीं देती थी। एक समय सोमशर्मा कहीं गया हुआ था, तब सोमा व्यभिचार करने का अनुकूल अवसर सुलभ देख कर ग्वालों के संग वासना पूर्ण करने लगी। इतने में दुर्भाग्यवश उसका पति लौट आया। अपनी पत्नी की पोप-लीला देख कर उसके हृदय में वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया। फलतः वह एक बाँस की पोली छड़ी में कुछ सुवर्ण छिपा कर तीर्थयात्रा करने निकल पड़ा। मार्ग में उससे एक मायाचारी तरुण वन्चक (ठग) की भेंट हो गयी। उसने सोमशर्मा को कपट-श्रद्धा से प्रमाण कर शिष्य बनने की अभिलाषा प्रकट की। तरुण की लगन से प्रभावित होकर सोमशर्मा ने उसे अपना शिष्य बना लिया। देशाटन करते हुए एक दिवस संध्याकाल में दोनों (गुरु-चेला) ने एक कुम्हार के घर पर आसन जमाया। फिर प्रातःकाल में यात्रा पर बढ़ चले। मार्ग में जाते-जाते उस तरुण ने अपने मस्तक के केशों में एक तृण पा कर गुरु (ब्राह्मण) से कहा—'हे गुरुदेव! मेरे मस्तक के केशों में कुम्हार के छप्पर का एक तृण फँस कर आ गया है। अतः यदि आप आज्ञा दें तो मैं यह तृण कुम्हार को लौटा आऊँ, क्योंकि आप ने ही सिखलाया है कि बिना अनुमति किसी का तृणमात्र द्रव्य लेना भी महापाप है। अनायास या असावधानीवश हुए। इस पाप (चोरी) का प्रायश्चित करने के लिए मैं इस तृण को उसके स्वामी को लौटा देना चाहता हूँ। गुरु की अनुमति लेकर वह कपटी शिष्य तत्काल विदा हुआ।

उसके जाने के पश्चात् ब्राह्मण ने एक समीपस्थ ग्राम में किसी ब्राह्मण के घर में जाकर भोजन कर लिया व पुनः उसी स्थान पर लौट आया, जहाँ वह शिष्य से विलग हुआ था। कुछ अवधि के उपरान्त वह धूर्त्त शिष्य भी लौट आया। तृण लौटने

का काल्पनिक विवरण उसने सविस्तार गुरु को सुनाया। इतने दिनों के संग में वह ताड़ चुका था कि ब्राह्मण की छड़ी में कुछ ऐसी विशेषता है, जो ब्राह्मण को उसे दृष्टि से ओझल नहीं करने देती। वह किसी योग्य अवसर की प्रतीक्षा में था, जिससे वह उस छड़ी को हड़प सके। सरल-हृदय विप्र ने उसे (शिष्य को) भी ग्राम में भोजन कर आने को कहा। वह मायाचारी करने लगा—'हे गुरुदेव! इस ग्राम के श्वान बड़े कटखने दिख रहे हैं। मैं कुछ भीरू प्रकृति का ही हूँ। इसलिए मैं यहाँ भोजन करने नहीं जाऊँगा।' उसकी तथाकथित चारित्रिक दृढ़ता से प्रभावित गुरु ने अपनी छड़ी देते हुए कहा—'अब तुम निश्चित होकर ग्राम में प्रविष्ट हो जाओ। छड़ी देखते ही सारा श्वान दल आतंकित हो जाएगा। फिर काटने की तो कौन कहे, वे भौंकने में भी डरेंगे।' ऐसा कहते समय उस निष्कपट विप्र को क्या ज्ञात था कि आपत्काल के लिए जो सुवर्ण उसने छड़ी में संचय कर रखा है, उसे यह लोभी शिष्य अब ले उड़ेगा। हुआ भी ऐसा ही—वह ठगराज जो बड़े-बड़े के कान काट चुका था, तत्परतापूर्वक छड़ी हाथ में लेकर ग्राम में ऐसा प्रविष्ट हुआ कि फिर कभी उसके दर्शन ही गुरु को नहीं हुए। बिचारे गुरुदेव कई दिनों तक आशा-निराशा की डोर से बँधे झूलते रहे। तब उसकी समझ में आ गया कि उसकी पत्नी के सदृश यह शिष्य भी उसके प्रति निष्ठावान नहीं था—केवल अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसके साथ था। अब वह ठन-ठन गोपाल रह गया था।

सम्पूर्ण कथा सुना कर जिनदत्त ने प्रश्न किया—'हे गुरुदेव! अपने ऊपर पूर्ण विश्वास करनेवाले निरीह गुरु की आँखों में धूल झोंक कर उन्हें लूटनेवाले उस धूर्त्त शिष्य ने उचित अथवा अनुचित किस कोटि का यह कार्य किया?' उसकी जिज्ञासा शान्त करने हेतु मैं ने उत्तर दिया—'हे जिनदत्त! उस शिष्य ने अपने गुरु के साथ विश्वासघात कर अपनी नीचता एवं घूर्त्तता का परिचय दिया है। निःसन्देह उसे इस प्रकार का गर्हित कार्य नहीं करना चाहिए था।' इसी सन्दर्भ में एक रोचक कथा मैं भी सुनाता हूँ, जिसे अब तुम चित्त लगा कर सुनो—

इसी भूमण्डल पर कौशाम्बी नामक वैभव-सम्पन्न नगरी में एक समय गन्धर्वानोक नामक एक राजा था। एक दिन गारदेव नामक एक राजसेवक (जो राजकोष के मणि-रत्नादि की देखभाल करता था) राज-भवन में पद्मराग मणि शोधन हेतु अपने निवास पर ले आया। जिस समय वह मणि को स्वच्छ कर रहा था, उसी समय उसके यहाँ मुनि ज्ञानसागर आहार लेने हेतु आ गए। अपने निवास पर एक महामुनि को आहारार्थ आये देख कर गारदेव फूला नहीं समाया। मणि को वहीं छोड़ कर उसने मुनिराज को श्रद्धा-भक्ति के साथ नमस्कार किया, प्रासुक जल से उनके चरण धोए तथा काष्ठ के आसन पर

विराजने की उनसे प्रार्थना की। काष्ठ के आसन पर खड्गासन में आहार ग्रहण कर मुनिराज वन में लौट गए। ठीक उसी समय एक नीलकंठ पक्षी गारदेव के आँगन में पद्मराग मणि अपनी चोंच से उठा कर आकाश में उड़ गया। मुनिराज के गमनोपरान्त गारदेव जब मणि शोधन करने आया, तब वहाँ मणि को न देख कर उसका मस्तक ठनका। उसने अपने मन में विचार किया कि मुनिराज के अतिरिक्त अन्य कोई मेरे भवन में आया ही नहीं था, अतः उसी छद्मवेशी मुनिराज ने कपटपूर्वक धीरे से मणि चुरा ली होगी। वह अत्यन्त क्रोधित होकर मुनिराज के निकट चला गया। वहाँ पहुँचते ही उसने मुनिराज को दुर्वचन कहते हुए अपनी मणि लौटाने को कहा। जब मुनिराज ने देखा कि यह भ्रान्त मनुष्य मेरे ऊपर मिथ्याभियोग लगा रहा है, तब वे ध्यानस्थ हो गए। उन्होंने गारदेव के बारम्बार पूछने पर भी अपना मौन भङ्ग नहीं किया। तब वह नादान गारदेव अधीर हो कर मुनिराज को पहुँचा हुआ चोर मान कर मुष्टि प्रहार करने लगा। किन्तु मुनिराज पाषाणवत् अटल रहे, एक शब्द भी नहीं बोले। अन्त में विवश होकर गारदेव ने अपने घर लौट जाने का विचार किया। किन्तु मणि एवं राजदण्ड का स्मरण होते ही उसका क्रोध भभक उठा। उसने एक डण्डा फेंक कर मुनिराज को मारा। वह डण्डा मुनिराज को न लग कर उसी नीलकंठ पक्षी को छूते हुए उनके पार्श्व से निकल गया। डण्डे के हठात् प्रहार से नीलकंठ पक्षी को भी हलकी चोट लगी, जिससे घबड़ा कर उसकी चोंच से मणि गिर गयी। गारदेव ने नीलकंठ की चोंच से पद्मराग मणि को गिरते देखा, तब वह आश्चर्यचंकित रह गया। मन-ही-मन में अपनी नादानी पर पश्चाताप कर मुनिराज से क्षमा प्रार्थना कर गारदेव ने मणि राजमहल में पहुँचा कर वैराग्य धारण कर लिया। उसने उन्हीं मुनिराज के चरणों में गिर कर अपने दुष्कर्मों के लिए बारम्बार क्षमा याचना की तथा उन्हीं से दीक्षित हो कर उग्र तपश्चरण में संलग्न हो गया। हे जिनदत्त! अब तुम ही कहो कि भला गारदेव ने मुनिराज के साथ जैसा दुर्व्यवहार किया था, क्या वह उचित था? जो मनुष्य बिना सोचे-समझे सहसा कोई कार्य कर बैठते हैं, वे अपने आचरण पर पीछे हाथ मल-मल कर पछताते हैं।' मेरा अभिमत सुन कर सहमति व्यक्त करते हुए जिनदत्त ने कहा—'हे मुनिनाथ! गारदेव ने जैसा गर्हित कार्य किया था, उससे उसकी निन्दा ही होगी। अब मुझे भी एक कथा सुनाने की अनुमति दें।' मेरो सहमति प्राप्त कर जिनदत्त अपनी कथा कहने लगा—

हे कृपासिन्धु! इसी वसुन्धरा पर पलाशकूट नामक एक सुन्दर नगर है। उस नगर के भव्य प्रासादों में देवताओं के सदृश वैभवशाली श्रेष्ठीजन निवास करते थे। किसी समय उस नगर में रौद्रदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह किसी आवश्यक कार्य के लिए वन में गया। वहाँ सहसा एक भयङ्कर गैंडे ने उस पर आक्रमण कर दिया। विप्र ने शीघ्रता से निकटस्थ वृक्ष पर चढ़ कर अपनी प्राण-रक्षा की। गैंडा निरुपाय हो कर वहाँ से आगे बढ़ गया। कुछ समय ठहर कर अपने को सुरक्षित

समझ कर रौद्रदत्त वृक्ष से उतरने लगा। इतने में उसकी दृष्टि उस वृक्ष के ऊपर पड़ी तथा उनके मन में यह विचार उठा कि यह वृक्ष कितना उत्तम है, यदि इसकी लकड़ी काटी जाए, तो अनायास ही घर में लगाने के लिए इससे सृदृढ़ स्तम्भ प्राप्त हो जाएगा। इस प्रकार विचार कर रौद्रदत्त अपने घर लौट आया, फिर कुल्हाड़ी ले जा कर उसने सम्पूर्ण वृक्ष को काट डाला। उसने इस तथ्य का विस्मरण कर दिया कि कुछ घड़ी पूर्व इसी वृक्ष के आश्रय में उसकी गैंडे से प्राणरक्षा हुई थी। हे गुरुदेव! रौद्रदत्त ने अपने प्राणरक्षक वृक्ष को काट कर क्या उचित किया?' उसका कथानक सुन कर मैं ने उत्तर दिया—'हे जिनदत्त! रौद्रदत्त ने वृक्ष को काट कर अपनी कृतघ्नता का ही परिचय दिया है। अतः संसार में जो उपकार करने वाले के संग विश्वासघात करते हैं, वे अपना लोक-परलोक दोनों विनष्ट कर घोर दु:ख के भागी बनते हैं। अब मेरी कथा सुनो, जिसे सुन कर तुम्हारा संशय अवश्य मिट जाएगा—

इसी आर्यभूमि की सुप्रसिद्ध द्वारावती नगरी में जगत्प्रसिद्ध नारायण श्रीकृष्ण राज्य करते थे। उस नगरी की शोभा अपूर्व थी। महाराज श्रीकृष्ण न्याय नीति से प्रजा पर शासन करते थे। फलस्वरूप उनकी कीर्ति चतुर्दिक विस्तीर्ण हो गयी थी। उनकी सत्यभामा, रुक्मिणी आदि बत्तीस हजार रानियाँ थी। इस प्रकार महाराज श्रीकृष्ण सुख-चैन के साथ राज्य कर रहे थे। एक दिन की घटना है कि एक माली ने महाराज श्रीकृष्ण के दरबार में आकर प्रणाम किया तथा उत्तम-उत्तम फल भेंट में प्रस्तुत कर करबद्ध निवेदन किया—'हे दीनबन्धु! नगरी के ब्राह्यवर्त्ती वन में एक मुनिराज का आगमन हुआ है।' महाराज श्रीकृष्ण माली के मुख से मुनिराज के शुभागमन का आनन्ददायक सम्वाद पा कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने माली को पुरस्कार दे कर विदा किया। तत्पश्चात् महाराज श्रीकृष्ण प्रमुख नगर-निवासियों को सङ्ग ले कर मुनिराज के दर्शन हेतु गए। वे मुनिराज को नमस्कार कर उपदेश सुनने के विचार से भूमि पर बैठ गए। महाराज ने मुनि को रोग-ग्रस्त देख कर प्रश्न किया—'हे नाथ! आपके दैहिक रोग का उपचार कैसे हो सकता है—कृपा कर हमें बतलायें।' महाराज श्रीकृष्ण की जिज्ञासा सुन कर मुनिराज कहने लगे—'हे राजन्! मेरे रोग के लिए यदि कोई उपचार है तो रत्नकापिष्ट नामक औषधि का सेवन करना है अन्यथा यह असाध्य है।' मुनिराज के मुख से औषधि का नाम सुन कर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे मुनि को नमस्कार कर द्वारावती नगरी में लौट आये तथा महामुनि के रोग निवारण के विचार से एक सुयोग्य वैद्यराज द्वारा रत्नकापिष्ट औषधि बनवाई एवं नगरी में उनको आहार देने की निषेधाज्ञा प्रसारित कर दी। राजदण्ड के भय से समस्त नगर-निवासियों ने मुनिराज को आहार हेतु पड़गाहना भी त्याग दिया।

महाराज की आज्ञा देने के अगले ही दिन ज्ञानसागर मुनि द्वारावती में आहार ग्रहण करने आये। वे समग्र नगरी मे भ्रमण कर आये, परन्तु किसी ने भी महाराज की निषेधाज्ञा के कारण महामुनि को आहार नहीं दिया। अन्त में महामुनि महाराज श्रीकृष्ण के राजमहल में आहारार्थ पधारे। ऐसे उत्तम पात्र को अपने महल में आहार ग्रहण करने के लिए आया देख कर महारानी रुक्मिणी ने उन्हें पड़गाहा (विधिवत आह्वान किया) तथा नवधा भक्ति से नमस्कार कर आहार दिया। महारानी ने रत्नकापिष्ट चूर्ण के अतिरिक्त अन्य आवश्यक औषधियाँ भी मुनिराज को आहार में दीं। महामुनि आहार लेकर वन में चले गए तथा अल्पकाल में ही उन औषधियों के प्रभाव से रोग-मुक्त हो गए। एक दिवस धर्मलाभ की अभिलाषा से महाराज श्रीकृष्ण वन में मुनिराज के समीप गए। सङ्ग में राजवैद्य भी थे। महाराज ने श्रद्धा से मुनिराज को नमस्कार किया। महाराज के साथ गए हुए राजवैद्य ने महामुनि का परीक्षण कर बतलाया कि वे रोग मुक्त हो गए हैं। राजवैद्य की उक्ति सुन कर मुनिराज ने कहा—'हे राजन्! इस संसार में जितने भी जीव हैं, उन्हें अपने पूर्व जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुख भोगना पड़ता है। जीवन अपने शुभ-अशुभ कर्मों के नष्ट होते ही सुख-दुःख रहित हो जाता है। कर्म के नाश से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिस जीव के अन्तस्तल में शुभ-असुभ कर्मरूपी रोग विद्यमान हैं, उसका उपचार कराने में चक्रवती एवं इन्द्रादिक भी असमर्थ हैं।'

मुनिराज का सम्यक् उपदेश सुन कर राजवैद्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया। उसने अपने मन में विचार किया कि यह स्वार्थी मुनिराज अपना रोग निवारण हो जाने पर चिकित्सक को धन्यवाद देने के स्थान पर उपदेश दे रहा है। यह तो कृतघ्नता की पराकाष्ठा ही हो गई। इस रोग का मेरी औषधि के प्रभाव से उन्मूलन हुआ है, पर यह औषधि का चमत्कार मानने के स्थान पर शुभ-अशुभ के विनाश को ही रोगोन्मुक्त होना बतलाया है। अतः इसके कथनानुसार मेरी औषधियों का कुछ भी प्रभाव नहीं है, वरन् कर्म की निवृत्ति ही प्रधान औषधि है। इस प्रकार ईर्ष्या करने के कारण वह राजवैद्य घोर पाप का भागी हुआ तथा मरणोपरांत वानर की योनि में उत्पन्न हुआ। एक दिन संयोग से मुनिराज ज्ञानसागर उसी वन में आये, जहाँ वह राजवैद्य वानर का जन्म लेकर रहता था। मुनिराज तो पर्यङ्क आसन में विराजमान होकर ध्यानस्थ हो गए, पर मुनिराज को देखते ही राजवैद्य के जीव रूपी वानर को पूर्व जन्म का बैर स्मरण हो आया। वह वानर अपने मन में सोचने लगा कि इसी ने पूर्व भव में मेरा अपमान किया था, जिसके फलस्वरूप में रौद्र ध्यान से मरा व वानर बना। इस प्रकार सोचते-सोचते वह क्रोध से उन्मत्त हो गया तथा उसने मुनिराज के ऊपर काष्ठ का एक बड़ा टुकड़ा पटक दिया। वानर के द्वारा बहुविधि भीषण कष्ट देने पर भी मुनिराज अखण्ड ध्यान में निमग्न रहे, वे लेशमात्र भी टस-से-मस नहीं हुए। इसके

पश्चात् वह प्रतिदिन मुनिराज को सताने लगा। इस प्रकार उसके बहुत दिनों तक सताने पर भी मुनिराज ममता रहित, समता रस में सराबोर, परम ज्ञानी हल-चल क्रिया रहित, मोक्षाधिकारी, सर्वोत्कृष्ट धर्मज्ञ, शुद्धाचारी, ध्यान-बल द्वारा श्रेष्ठ-सिद्धि के अभिलाषी, अटल देह-क्रिया से रहित बने रहे। मुनिराज की परम शान्त मुद्रा का वानर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह अब अपने दुष्कर्मों पर पश्चाताप करने लगा। मुनिराज की देह पर डाले काष्ठादि को उसने विलग कर दिया। पूर्व भव (जन्म) के स्मरण तथा उस समय वैद्यक-शास्त्र में प्रवीणता के सम्यक् उपयोग का सुवर्ण अवसर अब सहज में उपस्थित था। अपनी चिकित्सा, औषधि एवं वैयावृत्ति द्वारा उसने मुनिराज के दैहिक व्रणों (वे घाव जो उसके कृत उपसर्गों से ही बन गए थे) तथा पीड़ा का उपचार कर उन्हें नीरोग कर दिया। वानर के हृदय में वैराग्य भाव उदित हो गया तथा वह श्रद्धा एवं विनयपूर्वक मुनिराज से प्रार्थना करने लगा—'हे मुनिराज! आप सहज सात्विक हृदयवाले क्षमा-मूर्ति हैं। आप कृपा कर मेरा उद्धार कीजिए। मैं बड़ा भारी पापी हूँ, मैं आप की पावन शराण में आया हूँ, अब मेरी रक्षा कीजिए।' मुनिराज ने प्रसन्न हो कर वानर को पन्च अणुव्रत दिलवाये। महामुनि का परम हितकारी उपदेश सुन कर वानर अपने दुष्कर्मों पर परचाताप करने लगा। उसने पन्च अणुव्रत स्वीकार करते हुए अपने हृदय से क्रोध, घमण्ड, मत्सरादि दुर्वासनाओं को त्याग दिया। हे जिनदत्त! संसार में जितने प्राणी नीच प्रकृतिवाले होते हैं, वे अकारण ही बिना सोचे-समझे क्रोध, ईर्ष्यादि करके अन्त में पश्चाताप करते हैं तथा मरणोपरान्त तिर्यंच अथवा नरक गति में जाकर भयङ्कर कष्टों का सामना करते हैं। जो लोग विचार रहित होकर अविवेकपूर्ण कार्य करते पाये जाते हैं, वे लोग राजाओं द्वारा दण्डित होते हैं तथा हर जगह निन्दा के पात्र बनते हैं। वे इस लोक तथा परलोक दोनों में दु:ख झेलते हैं। विवेकी मुनष्य सर्वत्र हास्यास्पद माना जाता है। महाराज श्रीकृष्ण का राजवैद्य होने पर भी अपने निंद्य कर्म के परिणाम से वानर की योनि में उसे जन्म धारण करना पड़ा। हे जिनदत्त! तुम ही निर्णय करो कि राजवैद्य अथवा वानर की ईर्ष्या कहाँ तक उचित थी?

मेरी जिज्ञासा सुन कर सेठ जिनदत्त ने कहा—'हे मुनिराज! उनका कार्य नि:सन्देह निन्दनीय था। जो अभिमान में फूल कर उक्त वैद्य के समान दुष्कर्म करते हैं, वे निश्चय ही पाप के भागी बनते हैं।' जिनदत्त भी मेरी कथा के उत्तर में अपनी एक नवीन कथा सुनाना चाहता था कि इतने में उसका पुत्र कुबेरदत्त (जो इस वार्तालाप में आदि से अन्त तक अपने पिता के सङ्ग वहाँ उपस्थित था एवं दोनों ओर की कथायें सुन रहा था) ने इस विवाद का अन्त करने के विचार से अपने पिता के सामने रत्नों से भरा हुआ घट लाकर रख दिया। वह मुनिराज से करबद्ध प्रार्थना करने लगा—'हे मुनिराज! मेरे पिता ने आपके ऊपर रत्नों से भरा हुआ घट (घड़ा) चुराने की जो शङ्का की है, वह सर्वथा भ्रान्त एवं असत्य है। उन्होंने धन के मोह

में फँस कर अपना लोक-परलोक दोनों बिगाड़ा है। हे मुनिनाथ! ऐसे धन पर धिक्कार है, जिससे अधर्म (पाप) की उत्पत्ति हो। लोभ पाप की जड़ है, लोभ से बढ़ कर जीवों का कोई शत्रु नहीं है। हे कृपानाथ! अब किसी प्रकार मुझ अधम का भी उद्धार कीजिए। आप कृपया मुझे मुनि धर्म में दीक्षित कर लीजिए। मैं संसार के विषयभोगों से उचट गया हूँ। मैं एक पल भी अब इसके फन्दे में फँसना नहीं चाहता।' जब सेठ जिनदत्त ने देखा कि मेरे रत्नों का घट मेरे ही पुत्र ने चुराया था एवं अब वह वैराग्य धारण कर रहा है, तब उसके हृदय में बड़ी ग्लानि हुई। वह अपने मन में सोचने लगा कि मैं ने व्यर्थ में ही महामुनि के ऊपर चोरी करने का सन्देह किया था। हाय! हाय!! मेरा कैसे निस्तार होगा? इस प्रकार मन में विषाद करता हुआ सेठ जिनदत्त भी संसार के विषय-भोगों से विरक्त होकर मुनि धर्म में दीक्षित होने की प्रार्थना करने लगा।

हे राजन्! में ने दोनों पिता-पुत्रों को मुनि-दीक्षा प्रदान कर सन्मार्ग का पथिक बना लिया। उनका हृदय निर्मल हो गया, वे समस्त परग्रिहों से विमुक्त होकर उत्तम ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा निस्पृह होकर मन-वचन-काय तीनों गुप्तियों के ज्ञाता होकर कठिन तपस्या करने के लिए तत्पर हो गए।

इस प्रकार कहते हुए मुनिराज ने आगे कहा—'हे मगधाधिपति! मैं सर्वत्र मुक्त विहार करता हुआ अन्य दो मुनिराजों के साथ राजगृह नगर में चला आया। मैं जिस समय आपके राजमहल में आहारार्थ गया था, उस समय आपकी रानी ने हमें 'हे त्रिगुप्तियों के धारक! कृपया आहार ग्रहण कीजिए' से सम्बोधित किया था, फलतः त्रिगुप्तियों का धारक न होने के कारण मैं ने आपके राजमहल में आहार ग्रहण नहीं किया। हमारे आहार नहीं लेने का कोई अन्य कारण नहीं है।' महाराज श्रेणिक तीनों मुनिराजों से परम हितकारी स्वानुभूत आत्म-कथायें सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। श्रद्धा के साथ मुनिराजों के चरणों में नमस्कार कर अपने हृदय में जैन धर्म के प्रति भक्ति भाव रखते हुए महाराज श्रेणिक राजमहल में लौट आये। यहाँ आने पर महाराज श्रेणिक ने सम्यक् दर्शन पूर्वक जैन धर्म ग्रहण कर लिया। इस प्रकार महामुनियों के उत्तम गुणों पर अपनी श्रद्धा रखते हुए महाराज श्रेणिक महारानी चेलना के साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हुए सुख से शासन करने लगे।

द्वादश अध्याय

उत्तमता में परम धर्म, जग विदित अनन्य कहानी। जिसे श्रवण कर मगध-राज बन गये धर्म के मानी।।
पाप निशा को दूर भगाने में जो धर्म अटल हो। नमस्कार मेरा उसको है, भक्ति-भाव निश्छल हो।।

रानी चेलना की चिन्ता

पूर्वकाल में महाराज श्रेणिक जैन धर्म के सम्बन्ध में उपेक्षा का भाव रखते थे। वे समझते थे कि जैन धर्म में कोई तत्व-दर्शन नहीं है। किन्तु जब से वे जैन धर्म में दीक्षित हो गए, तब से उस धर्म के ऊपर उनकी अगाध श्रद्धा हो गयी। उनकी सारी शङ्काओं का समाधान हो गया। पूर्ण श्रद्धा के साथ वे जैन धर्म के अनुयायी बन गए। वह राज-दम्पति भोग-विलास करते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत करने लगा। वे कभी भगवान जिनेन्द्र की पूजा करते, तो कभी श्रेष्ठ मुनियों के उत्तम गुणों का स्मरण करते। वे कभी-कभी प्रथमानुयोग शास्त्रों (जिनमें त्रेसठ शलाका महापुरूषों के पवित्र जीवन चरित्र वर्णित थे) का पाठ करते, तो कभी-कभी करूणनुयोग के शास्त्रों (जिनमें संसार की दूरी नापने का हिसाब था) का अध्ययन किया करते थे अथवा कभी-कभी चरणानुयोग शास्त्रों (जिनमें उत्तम श्रावक-मुनियों के पवित्र चरित्र का वर्णन है) सुनते थे। इस प्रकार वे स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, सप्त भङ्ग निरूपक द्रव्यानुयोग आदि के शास्त्रों का अध्ययन करते जिनमें गुण, द्रव्य एवं पर्यायों का स्वाभाविक वर्णन है। अल्पकाल में स्वाध्याय-मनन से महाराज श्रेणिक विविध शास्त्रों के ज्ञाता बन गए। वे धर्म-रूपी धन के धारण करने वाले थे, विपत्तियाँ तो उनके निकट फटकने तक नहीं पाती थी। उनके भोग-विलास के सम्मुख कामदेव भी अपनी पत्नी रति का विस्मरण कर देता था। उनकी पूजा बड़े-बड़े ऋद्धि-सिद्धि धारी पुरुष किया करते थे। वे भोग-विलास के सुख में सब प्रकार से अनुभवी थे। इस प्रकार वे राज-दम्पति अपना सुखमय जीवन इन्द्र-इन्द्राणी के सदृश व्यतीत करने लगे। सच है, सुख का समय बहुत शीघ्रता के साथ व्यतीत हो जाता है। कुछ समय उपरान्त रानी चेलना गर्भवती हुई। उसके शरीर से गर्भाधान के पूर्ण चिह्न प्रकट होने लगे। उसका मुखमण्डल पीतवर्णी हो चला। एक तो वह कृशङ्गी थी ही, दूसरे गर्भावस्था के कारण उसी देह सूख कर अत्यधिक कृश हो गयी। उसका स्वर मन्द हो चला, गति में भी मन्दता आने लगी। इस प्रकार उसका सर्वाङ्ग शिथिल हो गया। यह मानी हुई बात है कि जब स्त्रियाँ गर्भवती की अवस्था में रहती हैं, तब स्वप्न के साम्राज्य में विचरण करती हैं अर्थात् वे स्वप्न अधिक देखा करती हैं। स्त्रियों के स्वप्न से ही उत्तम अथवा अयोग्य सन्तान होने का अनुमान लगता है। मान लीजिए कि कोई स्त्री शुभ स्वप्न देखती है, तो उसकी योग्य सन्तान होगी। यदि उसने दु:स्वप्न देखा है, तो उसकी सन्तान अयोग्य होगी। रानी चेलना सर्वदा अशुभ स्वप्न देखने लगी, जिसके सन्ताप में उसकी देह सूख कर काँटा हो चली। स्वप्नों के अनुसार उसके जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह अपने पिता महाराज श्रेणिक की परम शत्रु तथा उन्हें प्रताड़ित करने वाली होगी। अपने प्राणप्रिय के ऊपर अपनी सन्तान के कारण आने वाली भयङ्कर विपत्ति की आशङ्का से रानी चेलना की कृश काया किसी अज्ञात भय से प्रकम्पित हो उठती। जिस प्रकार प्रात:काल होते ही आकाश-मण्डल में तारागण निस्तेज हो जाते

हैं, उसी प्रकार रानी चेलना अपनी भावी सन्तान का स्मरण करते ही कान्तिहीन हो जाती थी। एक दिन महाराज ने अपनी प्राणवल्लभी चेलना की कृश एवं कान्तिहीन काय देख कर आश्चर्य प्रकट करते हुए मधुर वचनों में उससे जिज्ञासा की—'हे प्रिये! तुम्हारी दिन-प्रतिदिन निस्तेज एवं दुर्लभ हो रही इस कन्चन-काया को देख कर मेरे हृदय में अत्यन्त सन्ताप हो रहा है। आह! तुम्हारा वह सर्वदा स्मित-हास्य कहाँ तिरोहित हो गया? तुम्हारे सुवर्ण सदृश कान्तिवान मुखमण्डल पर किसने चिन्ता की कालिमा फेर दी? तुम अपने हृदय का विषाद निःसङ्कोच कहो, मैं उसके निवारण का प्रबन्ध करूँगा।

महाराज की स्नेहमयी वाणी सुन कर रानी चेलना लज्जा के कारण मौन रही। किन्तु उनके पुनरपि विशेष आग्रह से जिज्ञासा करने पर रानी के नेत्रों से अवरिल अश्रुधारा की मन्दाकिनी ही प्रवाहित हो चली। उसने अवरुद्ध कण्ठ से क्रन्दन करते हुए कहा—'हे स्वामी! मेरे सदृश हतभागिनी नारी समस्त विश्व में ढूँढ़ने पर भी न मिल सकेगी। मेरी भावी सन्तान ही के द्वारा आपका अमङ्गल होगा—ऐसा स्वप्न में देख-देख कर लज्जा एवं दुःख से मैं मृतप्रायः हो रही हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस भव का मेरा समस्त जीवन ही निष्फल रहा है। हाय! जिसके द्वारा आपका अनिष्ट होने की भावी आशङ्का है, उस पापिष्ठ की पिशाचिनी माता मैं ही हूँ। इस विषय में विस्तार से कुछ भी बतलाना तो दूभर है, अब मुझे आपके सम्मुख आने में भी घोर लज्जा आ रही है। फिर भी आपका प्रबल आग्रह देख कर मैं बतलाती हूँ कि मेरा दोहद (गर्भवती की अभिलाषा) क्या है? हे नाथ! आपके विदीर्ण वक्षस्थल से प्रवाहित रक्त को देखने की स्वप्न में मुझे बारम्बार अभिलाषा होती है। हाय! मैं भी कितनी अधम एवं दुरात्मा हूँ, जो अपने पति से ऐसी आशा स्वप्न में भी रखती हूँ। शत्-शत् धिक्कार है मुझ पर।'

महाराज श्रेणिक ने प्राणप्रिय पटरानी को धैर्य बँधाते हुए उसके दोहद की पूर्ति के लिए तत्काल अपने तीक्ष्ण नखों से ही अपने प्रशस्त वक्षस्थल में चीरा लगा कर रक्त प्रवाह दिखला दिया। प्रिय पति पर बिना किसी विपत्ति के अपनी दोहद पूर्ति सम्भव देख कर रानी चेलना भी सन्तुष्ट हो गयी। फलस्वरूप उसके मन का विषाद तिरोहित हो गया। नव मास पूर्ण होने पर रानी के पुत्र प्रसव हुआ, जिसका सम्वाद सुन कर महाराज श्रेणिक के हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने सेवकों तथा याचकों को मुक्त हस्त उपहार तथा दान दिया। जब पुत्र को देखने वे प्रसूति-गृह में प्रविष्ट हुए, तब उस सद्यःजात शिशु को उसके पूर्व-भव का स्मरण हो आया। महाराज श्रेणिक से उसकी तब प्रबल शत्रुता थी। फलस्वरूप उस नवजात शिशु ने क्रोध मे भर कर अपनी नन्हीं मुठि्ठयाँ भींच (बाँध) लीं। प्रतिशोध एवं कुटिलता से उसका मुख-मण्डल तमतमा उठा, जिस पर विद्रुप की

स्पष्ट झलक दिखने लगी। उसके ओष्ठ फड़फड़ाने लगे तथा नेत्र ऊपर-नीचे आन्दोलित हो उठे। अपने सद्योत्पन्न पुत्र की ऐसी भयावह छवि देख कर रानी चेलना भावी अनिष्ट की आशङ्का से काँप उठी। उसने अपने हृदय को पाषाणवत् कठोर बना कर पति के मङ्गल हेतु उस शिशु को वन में छुड़वा दिया।

परन्तु राजा श्रेणिक को जब इस घटना का ज्ञान हुआ, तब उन्होंने चतुर सेवकों को भेज कर तत्काल शिशु को वन से वापिस मँगवा लिया। उन्होंने उसे एक सद्यःप्रसूता धाय (दासी) को सौंप कर उचित लालन-पालन का प्रबन्ध कर दिया। इस शिशु का नामकरण कुणिक हुआ। कालक्रम से महारानी चेलना पुनः गर्भवती हुई तथा इस पुत्र का नाम वारिषेण रखा गया। युक्त वयस्क होने पर कुमार वारिषेण समस्त शास्त्रों में पारङ्गत एवं विविध ज्ञान-विज्ञान का ज्ञाता सुदर्शन युवक बन गया। वह भव्य परिणामी था, अतः सम्यग्दर्शन से युक्त था। कालक्रम से महारानी चेलना के हल्ल, विदल तथा जितशत्रु नामक तीन अन्य पुत्र भी उत्पन्न हुए। ये तीनों राजकुमार भी शुभ लक्षणों के धारी थे। पाँच पुत्रों के उपरांत भी रानी चेलना छट्ठी बार गर्भवती हुई। किन्तु इस बार उसकी क्षुधा मन्द पड़ गयी, गति धीमी हो गयी, सर्वाङ्ग पाण्डुवर्णी हो गया, उरोज कृष्णवर्णी हो गए तथा देह कान्तिहीन हो गयी। उसके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में शिथिलता व्याप्त हो गयी। उसने अपने समस्त आभूषण उतार कर अलग रख दिए। इस बार देखे गए स्वप्नों से उसे भास होने लगा कि उसका यह पुत्र महाप्रतापी एवं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला होगा। एक रात्रि स्वप्न में रानी चेलना ने ग्रीष्म ऋतु में हो रही वर्षा में गजारूढ़ होकर चतुर्दिक भ्रमण करना देखा। इस दोहद की पूर्ति असम्भव समझ कर वह मौन रही, पर अतृप्ति की अग्नि में घुलने लगी। महाराज श्रेणिक ने पुनः रानी को कृशकाय तथा चिन्तातुर देख उसे अपनी मनोवेदना निःशङ्क व्यक्त करने को कहा। राजा ने जिज्ञासा की—'हे प्रिये! तुम अहर्निश चिंतातुर प्रतीत होती हो। तुम्हारा सर्वाङ्ग शिथिल एवं विषाद-युक्त हो रहा है। क्या अपनी मनोव्यथा मुझ से भी गुप्त रखोगी?' पति के बारम्बार आग्रह पर रानी ने कहा—'हे नाथ! इस बार एक दोहद की अभिलाषा जगी है मेरे मन में। ऋतु ग्रीष्म होने पर भी जब वर्षा हो रही हो, तब गजारूढ़ हो कर मैं चतुर्दिक भ्रमण करूँ। इस असंगत स्वप्नाभिलाषा की पूर्ति असम्भव है—यह मैं भी समझती हूँ। पर अतृप्ति की दावाग्नि मेरे सर्वाङ्ग को भस्म किए दे रही है, बस यही मेरी मनोव्यथा का कारण है—अन्य कुछ नहीं।'

अभय कुमार द्वारा रानी चेलना की चिन्ता का निवारण

रानी चेलना की दोहद पूर्ति कैसे हो—इस पर महाराज श्रेणिक ने गंभीरतापूर्वक विचार करना प्रारंभ किया। वे निरन्तर

चिन्ता करते-करते थक गए, पर उन्हें कोई मार्ग न सूझा। तब विवश हो कर उन्होंने मौन व्रत धारण किया। उसी समय कार्यवश उनका ज्येष्ठ पुत्र अभयकुमार वहाँ आया। उसने अपनी कुशाग्र मेधा से क्षण भर में भाँप लिया कि पिता चिन्ताग्रस्त हैं। उसने सविनय जिज्ञासा प्रकट की—'हे तात्! मैं आपको चिन्तायुक्त देख कर दु:खी हूँ। कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाने का कष्ट करें। मैं यथासाध्य उसके निवारण का यत्न करूँगा।' महाराज ने अवरुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया—'प्रिय पुत्र अभय! मेरे सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हो गई है, जिसका समाधान असम्भव-सा है।' यह कह कर उन्होंने रानी चेलना के दोहद का वर्णन किया। कुमार ने पिता को सांत्वना बँधाते हुए आश्वासन दिया—'पिताश्री! आप निश्‍चिंत रहें, मैं तत्काल आपकी अभिलाषा पूर्ण कर दूँगा। आप सुख से विराजें एवं मुझे उद्योग (प्रयत्न) करने की अनुमति प्रदान करें।' यह आश्वासन पाकर महाराज श्रेणिक की समस्त मनोव्यथा तिरोहित हो गयी, क्योंकि उन्हें अपने प्रिय पुत्र की सर्वतोमुखी प्रतिभा पर अगाध विश्‍वास था।

दूरदृष्टि अभयकुमार को यह निश्‍चय करने में विलम्ब नहीं हुआ कि किसी व्यन्तर देव की सहायता से ही विमाता (रानी चेलना) की स्वप्नाभिलाषा की पूर्ति हो सकेगी। वह अर्धरात्रि वेला में अपने महल से निकल कर शमशान की भयङ्करता भूमि में चला गया। उस चतुर्दिक प्रगाढ़ अन्धकार का घोर साम्राज्य था, उलूकों एवं श्रृगालों के वीभत्स स्वरों से श्मशान की भयङ्करता द्विगुणित हो रही थी। कहीं-कहीं विराटकाय अजगर विशाल वृक्षों से लटकते हुए फुँफकार रहे थे। अभयकुमार एक वट-वृक्ष की छाया में ठहर गया। उसके समीप ही अर्धदग्ध शवों के भग्न मुण्ड यत्र-तत्र बिखरे हुए थे। रह-रह कर मांसाहारी वनचरों की भयावह गर्जना निर्बल हृदयों को प्रकम्पित कर रही थी। स्थान-स्थान पर जल रही चिताओं से मांस के जलने से उत्पन्न धुआँ एवं दुर्गन्ध आ रही थी, जिससे चेतनता विलुप्त हो रही थी। श्वाव एवं श्रृंगाल यूथ (झुंड) अर्धदग्ध शवों से नोंच-नोंच कर मांस भक्षण कर रहे थे। कभी-कभी वे जिह्वा-लोलुपी परस्पर भी लड़ बैठते थे। शवों के जलने से इतनी राख चरों ओर फैली हुई कि मार्ग (सड़क) का सन्धान (पता) लगाना भी दुष्कर था। जिधर देखो, उधर नरकङ्काल पड़े हुए थे। एक तो भयानक श्मशान, ऊपर से घोर काली रात—उस घड़ी की प्रचण्डता की तो हम केवल कल्पना ही कर भय से काँप उठते हैं, पर धीर-वीर-ज्ञानी अभयकुमार तो सिंह सदृश निर्भय थे।

उसी समय एक वट वृक्ष के नीचे टिमटिमाते हुए दीपक का प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। अभयकुमार प्रकाश की ओर बढ़ चले। वहाँ जाकर उन्होंने एक पुरुष को देखा, जिसके चारों ओर पुष्प बिखरे हुए थे। वह देखने में अत्यन्त धीर-वीर, प्रतापी तथा विवेकशील प्रतीत होता था। अभयकुमार ने उसको ऐसी अवस्था में देख कर प्रश्‍न किया—'हे बन्धु! तुम कौन हो, तुम्हारा

क्या नाम है, कहाँ के निवासी हो तथा किस मनोरथ की सिद्धि हेतु इस अर्धरात्रि की वेला में भयङ्कर श्मशान-भूमि में आकर ऐसी विकट साधना कर रहे हो?' अभयकुमार की जिज्ञासा सुन कर उस अज्ञात कुल-गोत्रवाले पुरुष ने शान्त स्वर में प्रत्युत्तर दिया—'हे कुमार! मेरी आत्म-कथानक वैचित्रयपूर्ण है। आपका स्नेहपूर्ण आग्रह देख कर मैं उसे सुना रहा हूँ, कृपया ध्यानपूर्वक सुनें। विजयार्द्ध पर्वत श्रेणी की उत्तर दिशा में स्थित विद्याधर नगरी गमनप्रिय का मैं वायुवेग नामक राजा था। एक समय मेरे चित्त में विजयार्द्ध पर्वत शिखरों पर निर्मित जिन-चैत्यालयों के दर्शन की भावना जगी। मेरे अनुवर्ती विद्याधर नरेश भी संग चलने हेतु प्रस्तुत हो गए। आकाश मार्ग से हम सब वहाँ जा पहुँचे। उसी समय बलाकपुर नरेश की कन्या सुभद्रा भी दर्शनार्थ वहाँ आयी। उस परम सुन्दरी के यौवन के झंझावात में अपनी मति-गति सब से मैं बेसुध हो गया। उसकी गजगामिनी चाल, मृगलोचन, पृथुल नितम्ब आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग शोभा में रति को भी परास्त कर रहे थे। उसके रूप-यौवन पर मुग्ध होकर मैं विक्षिप्त-सा हो गया। उसके साथ भोग-विलास की प्रबल लालसा मेरे मन में दावाग्नि-सी प्रज्वलित हो उठी। अपनी मान-मर्यादा, सुध-बुध सब विस्मृत कर मैं अब उस सुन्दरी के भ्रू-विलास की बन्दी मात्र रह गया। उसके वियोग में मुझे यह जीवन भार स्वरूप लगने लगा—प्रतिपल वर्ष के सदृश व्यतीत होता-सा अनुभव होने लगा। अन्त में मदान्ध होकर उसका बलपूर्वक हरण कर मैं उसे अपने राजप्रासाद में ले आया।

उस समय रूपसी सुभद्रा का सानिध्य प्राप्त कर मैं फूला नहीं समाया। उसके साथ भोग-विलास में आकण्ठ निमग्न होकर मैं अपना जन्म सार्थक समझने लगा। सुभद्रा की एक सखी ने बलाकपुर जाकर उसके पिता से इस अपहरण का सविस्तार वर्णन किया। अपनी कन्या के बलात् हरण से क्षुब्ध हो उसके पराक्रमी पिता ने विराट सैन्य सहित विमानों द्वारा आकाश-मार्ग से प्रस्थान किया। अल्पकाल में ही वे मेरे नगरद्वार पर आ पहुँचे तथा प्रबल आक्रमण द्वारा नगरकोट को भग्न करने का प्रयास करने लगे। मैं भी अपनी सेना सहित उनका सामना करने हेतु तत्पर हुआ। उभय पक्ष के सैन्यदल में प्रचण्ड संग्राम हुआ। परन्तु अतन्त में सुभद्रा के पति ने अपने विद्या-बल से मेरी समस्त विद्या नष्ट कर दी। विद्याहीन होकर मैं भी दीन-हीन भूमि-गोचरी सदृश रह गया। प्राणप्रिय सुभद्रा भी मेरे हाथ से निकल गयी। विद्या एवं पत्नी के वियोग में व्याकुल होकर मैं यत्र-तत्र भटकने लगा। तब पुण्य योग से एक नैमित्तक ने मुझे पुनः विद्या-सिद्धि के लिए बारह वर्ष तक एक मन्त्र का जाप करने को कहा। पर ध्यान की एकाग्रता के अभाव में उतने वर्षों तक साधन करने पर भी मुझे विद्या सिद्ध नहीं हुई। इस एकान्तवास से अब मेरा चित्त भी उचट गया है, अतः मैं अपने नगर को लौट जाना चाहता हूँ।'

तब कुमार ने उसे सुझाव दिया—'हे मित्र! कृपा कर मुझे वह मन्त्र सिखला दो, जिसके द्वारा विद्या की सिद्धि होती है।' भाग्यहीन विद्याधर नरेश वायुवेग ने तब प्रसन्न होकर कुमार को विद्या-साधन का मन्त्र सिखला दिया। अपने पूर्व सन्चित शुभ कर्मों के पुण्योदय से कुमार ने अल्पकाल में ही विद्या साधना में सफलता प्राप्त कर ली। सौभाग्यशाली कुमार के सहयोग से राजा वायुवेग भी विद्या-सिस्द्धि के मनोरथ में सफलीभूत हुए। तब परस्पर स्नेहपूर्वक विदा लेकर वे अपने-अपने स्थान को लौट गये। अभयकुमार के आगमन का शुभ सम्वाद सुन कर महाराज श्रेणिक प्रमुदित हो उठे। वे अपने मन में यह आशा करने लगे कि कुमार अवश्य ही कृतकार्य हुए होंगे।

अपने विद्याबल से अभयकुमार ने वातावरण में ग्रीष्म ऋतु की उष्णता का सब को अनुभव करवाया। फिर विद्या के प्रभाव से कृत्रिम मेघ की रचना कर उससे वर्षा करवायी, जिसमें गजारूढ़ रानी चेलना ने इच्छानुसार भ्रमण कर अपना दोहद पूर्ण किया। इस प्रकार अपनी स्वप्नाभिलाषा की पूर्ति से रानी चेलना के हृदय की चिन्ता मिट गयी। हार्दिक आल्हाद से उसका मुख-मण्डल सुवर्ण सदृश कान्ति से दमक उठा। नव मास पूर्ण होने पर उसके एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वप्न के अनुसार उसका नामकरण 'राजकुमार' हुआ। कुछ काल पश्चात् रानी चेलना के गर्भ से सातवें पुत्र 'मेघकुमार' का जन्म हुआ। गगन में दैदीप्यमान 'सप्तऋषि' तारागण सदृश सात प्रतापी पुत्रों की माता बन कर महारानी चेलना अपना जीवन सुख से व्यतीत कर रही थीं जबकि महाराज श्रेणिक भी सर्व प्रकारेण सुख-वैभव से युक्त होकर न्याय-नीतिपूर्वक अपना राज्य शासन सुचारू रूप से सम्भाल रहे थे।

भगवान महावीर के चरणों में

अपने वीर सामन्तों एवं बुद्धिमान मन्त्रियों से सुशोभित राजदरबार में राजछत्र अलंकृत सिंहासन पर विराजमान महाराज श्रेणिक एक दिन बन्दीजनों की विरूदावली का आनन्द-पान कर रहे थे, तभी वनमाली ने आकर उनकी सेवा में छहों ऋतुओं के पुष्प तथा फल भेंट किये। उसने करबद्ध योग्य अभिवादन कर महाराज को सूचना दी—'हे महाराजाधिराज! आप अक्षय पुण्य के भण्डार है। अनेकों प्रतापी मुकुटबद्ध नरेश आपकी सेवा में सदैव सन्नद्ध रहते हैं। न्याय, दया एवं उदारता की आप साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। चक्रवर्ती तथा सुरेन्द्र के सदृश विभूतियों के आप स्वामी हैं। आपके पुण्य-योग से नगर के ब्राह्यवर्ती विपुलाचल शिखर पर धर्म के आगार भगवान महावीर के समोशरण का आगमन हुआ है। विश्ववंद्य चरम तीर्थङ्कर की कृपा-कोर से प्रकृति साक्षात् पुष्पवती नारी के सदृश शोभायमान है। जिस प्रकार नारी से पुत्र रूपी फल उत्पन्न होते हैं, उसी

प्रकार वन-प्रान्तर में वृक्ष फलों के भार से झुके जा रहे हैं। जिस प्रकार नारी सपुष्पा (रजोधर्मवाली) होती है, उसी प्रकार प्रकृति (वन-शोभा) भाँति-भाँति के रंग-बिरंगे पुष्पों से पल्लवित हो गयी है। जिस प्रकार पूर्ण यौवनवती नारी अपने उन्माद में काम से पीड़ित होकर मतवाली बन जाती है, उसी प्रकार प्रकृति अपनी सुषमा पर उन्मत होकर शस्य-श्यामला हो गयी है। हे राजन्! परम उपकारी तीर्थंकर देव की अनुकम्पा से वहाँ के सरवरों की तुलना अब सज्जन-वृन्द से ही की जा सकती है, क्योंकि जिस प्रकार सज्जनों का ह्वदय करुणा से अनुप्राणित रहता हैं, उसी प्रकार वे सरोवर स्वच्छ जलराशि से परिपूर्ण हैं। जिस प्रकार सज्जनों का ह्वदस अष्टदल पदम पुष्प के तुल्य होता हैं, उसी प्रकार सरोवरों में मनोहारी पदम-पुष्प स्वयं दल-के-दल विकसित हो आये हैं। जिस प्रकार सज्जनों का ह्वदय पवित्र होता है, उसी प्रकार सरोवर उत्तम स्वच्छ एवं गहरे हो गए हैं। प्राकृति की तुलना में सदैव नारी से ही की गयी है। जिस प्रकार नारी संवशा उत्तम होती है, उसी प्रकार प्रकृति में वंशवृक्ष (बाँस) संवश का उद्देश्य पूर्ण कर रहे हैं। जिस प्रकार नारी के भाल पर बिन्दी शोभती है, उसी प्रकार प्रकृति तिलक (नामक) वृक्ष से सुशोभित हो रही है। जिस प्रकार नारी मदन (काम) से पीड़ित हो उठती है, उसी प्रकार प्रकृति मदन (नामक) वृक्षों से युक्त हो गयी है। जिस प्रकार नारी का रूप-श्रृङ्गार विविध-वर्णा होता है, उसी प्रकार प्रकृति विविध ऋतुओं की समवेत सुषमा से संयुक्त हो गयी है। हे नाथ! जैसे नारी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में मन्मथ (काम) का वास होता है, वैसे ही प्रकृति भी मन्मथ जाति के वृक्षों से अलंकृत हो गयी है। जिस प्रकार नारी अपने हास्य-विलास तथा उत्तुङ्ग उरोजों से मनोहारिणी होती हैं, उसी प्रकार प्रकृति का हास्य-विलास उसके भाँति-भाँति के पुष्प हैं तथा फल उरोज हैं। हे राजन्! इस समय मेरी वाणी भगवान के आगमन पर घट रहे चमत्कारों को गणना करने में असमर्थ है। उनकी महिमा से वन में नेवले तथा सर्प परस्पर क्रीड़ारत हैं, बिलाड़ के शिशुगण मूषिकों के साथ स्नेहपूर्वक भ्रमण कर रहे हैं, व्याघ्र एवं बकरी एक घाट पर संग-संग जल पी कर अपनी पिपासा शान्त कर रहे हैं, सिह-शावक भेड़ों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, तो हथिनी एवं सिंहनी परस्पर एक-दूसरे की सन्तानों को अपना स्तनपान करा रही हैं। हे अन्नदाता! भगवान महावीर के समोशरण के पुण्य-प्रताप से वन के समस्त हिंसक जीवों ने परस्पर बैर-भाव का विस्मरण कर दिया है। इस प्रकार उन धर्मनाथ की असीम अनुकम्पा से चतुर्दिक असम्भव दृश्य भी सम्भव हो रहा है।

माली के मुख भगवान महावीर के समोशरण के अपने राज्य में आगमन पर अनिर्वचनीय प्रभाव का वृत्तान्त सुन कर महाराज श्रेणिक आनन्द के सागर में डुबकी लगाने लगे। उनका रोम-रोम गद्‌गद् हो गया। जिस प्रकार उदयाचल से सूर्य का उदय होता है, उसी प्रकार महाराज अपने सिंहासन से उतर पड़े। उन्होंने भगवान महावीर के समोशरण की दिशा की

ओर सात बार प्रदक्षिणा दे कर भक्ति-भाव के साथ नमस्कार किया। उन्होंने अपने धारण किये बहुमूल्य वस्त्राभूषण उसी माली को दे दिये, जिसने भगवान महावीर की यशोगाथा सुना कर महाराज को भक्तिरस में सराबोर किया था। महाराज ने प्रमुख प्रजाजनों को अपने राजमहल में आने की आज्ञा प्रसारित करवा दी। राजगृह के प्रमुख नागरिक महाराज के राजमहल में उपस्थित हो गए। महाराज की अनुमति से वे सभी अपने-अपने समुदाय के साथ विपुल संख्या में उनका अनुगमन करते हुए भगवान के समोशरण की ओर अग्रसर हुए।

अश्वों एवं गजों के पादचार से मार्ग की धूलि उड़-उड़ कर ऊपर उठती थी, किन्तु गजों के मद-जल से शान्त हो जाती थी। उस समय सारा नगर ही भगवान के दर्शनार्थ सागर के समान उमड़ पड़ा था। प्रचण्ड जन-समुदाय के कारण एक प्रकार का मेला-सा लग रहा था। गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाने पर भी कोई किसी की बात नहीं सुन पाता था। हाँ संकेत से अपना मनोरथ अभिव्यक्त हो रहा था। वाद्यों के नाद से ऐसा प्रतीत होता था कि सेना दिशा-रूपी नारियों को पुकार रही है। समस्त लोगों में एक ही पवित्र भावना व्याप्त हो रही थी। वह भावना क्या थी? भगवान महावीर के दर्शन की उत्कट अभिलाषा। उस समय छत्रों की आभा सूर्य की प्रखर आभा को परास्त कर रही थी। जिस समय राजा श्रेणिक भगवान के समोशरण के निकट पहुँचे, तब वे गज से उतर कर पैदल चलने लगे। मानस्तम्भ तथा प्रातिहार्यों की अपूर्व शोभा देखते हुए वे भगवान महावीर के समोशरण में प्रविष्ट हुए। महाराज श्रेणिक ने वहाँ जाकर देखा कि भगवान एक भव्य उच्च सिंहासन पर अधर विराजमान हो रहे हैं। उन्हें देखते ही महाराज ने श्रद्धा-भक्ति के साथ नमस्कार कर मन्त्रोच्चार के साथ विधिवत् पूजा-अर्चना प्रारम्भ कर दी। श्रीरसागर के सदृश उज्जवल तथा चन्द्रमा की भाँति निर्मल जल से उन्होंने भगवान की पूजा की। इसके पश्चात् सकल दिशाओं में सौरभ फैलानेवाले चन्दन तथा चावलों से जिनेन्द्र देव को अर्घ चढ़ाया एवं सुगन्धित पुष्प अर्पित किए। तत्पश्चात् उत्तम-उत्तम पक्वान चढ़ा कर उन्होंने भगवान को अर्घ चढ़ाया। ऐसे रत्न-खचित दीपक भगवान की आरती करने में उन्होंने प्रयुक्त किए, जिनकी छटा से सम्पूर्ण वातावरण दैदीप्यमान हो रहा था। उन्होंने सुगन्धित धूप से तीर्थङ्कर देव की अर्चना की। उत्तम फल एवं अनर्घ पद की प्राप्ति के लिए उत्तम-उत्तम व्यजन अर्पित किए।

भगवान महावीर की स्तुति

अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा करने के उपरान्त महाराज श्रेणिक उनकी भक्तिभाव से स्तुति करने लगे—'हे चरम तीर्थङ्कर! देवाधिदेव!! कृपासिन्धु!!! आप सकल गुणों के अक्षय कोष हैं। प्रसिद्ध एवं बलशाली चक्रवर्त्ती सम्राट हों या

देवेन्द्र—सभी आपके चरणों की वन्दना करते हैं। आपके गुणों का सांगोपांग वर्णन करने में स्वयं महापण्डित गणधर देव भी असमर्थ सिद्ध होते हैं। देवेन्द्र की महिमा, पराक्रम एवं ज्ञान त्रिभुवन में प्रख्यात है, पर वे भी आपके समस्त गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं। सत्य तो यह है कि आप ने ही कामदेव का नाश किया है, जब कि उसके भय से महादेव सर्वाङ्ग में विभूति लगाए रहते हैं, विष्णु तो नारियों से घिरे रहते हैं तथा ब्रह्मा अपने चतुर्मुखों से चतुर्दिशाओं में अवलोकन करते रहते हैं कि कहीं कामदेव की उन पर दृष्टि न पड़ जाये। जिस प्रकार मेरु के सदृश उन्नत अन्य कोई पर्वत नहीं, उसी प्रकार आपके अनन्त ज्ञान-कोष के सम्मुख अन्य कोई ज्ञानी नहीं। आपके अनन्य भक्त का मदमत्त गजराज के प्रहार से भी बाल तक बाँका नहीं होता। जिस प्राणी ने निरन्तर आपके अष्टापद स्वरूप में ध्यान लगाया है, उसका अहित मदोन्मत गजराजों का हन्ता प्रचण्ड सिंह भी नहीं कर सकता। जो मनुष्य आपके पवित्र चरणों की सेवा करते हैं, उन्हें प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि को लपटें जलाने में असमर्थ होती हैं। हे महामुनि! जो मनुष्य अपने युद्ध हृदय से आपकी पवित्र नाम रूपी नागदमनी रखते हैं, उन्हें देखते ही विषैले नाग का भयङ्कर विष शान्त हो जाता है। हे कृपानिधे! आपके पवित्र चरण जलपोत के सदृश हैं। आप में श्रद्धा रखनेवाला प्राणी समुद्र को (जिसमें भयङ्कर जीव रहते हैं) सहज में ही पार कर लेता है। हे जिनेश्वर! जो मनुष्य आपकी नाम का कवच अपने देह पर धारण किये रहते हैं, वे भयङ्कर-से-भयङ्कर संग्राम (जिनमें भालों के घात-प्रतिघात एवं गजराजों के चिंघाड़ से तुमुल कोलाहल हो रहा है) में विजय-लाभ करते हैं। हे भगवन्। आपके नाम रूपी अव्यर्थ महौषधि के प्रताप से कुष्ठ-जलोदर के सदृश भयङ्कर रोगों से आक्रांत सहज में ही आरोग्य-लाभ करते हैं। हे गुणनिधे! जिन मनुष्यों के हस्त एवं पाद श्रृङ्खलाओं एवं बेड़ियों से आबद्ध हो रहे हों, वे भी आपके नाम रूपी खड्ग से बन्धन-मुक्त हो जाते हैं। हे अशरण शरण! संसार रूपी शोक-भवन में अनेकों कष्ट सहन करनेवालों के लिए त्रिभुवन में आपके अलावा भला अन्य कौन सहायक होगा? हे भगवान्! यद्यपि आपके गुणों की गणना करना असम्भव-सा है, फिर भी मैं ने उनमें से थोड़े-से गुणों का वर्णन किया है। हे कृपासिन्धु! आपकी गम्भीर गुणातीत गणना की तो पराकष्ठा हो गयी है। अब इससे अधिक गुणानुवाद करने में मैं असमर्थ हूँ। हे योगेश्वर वीर! भगवन्! आप कल्याण की प्रत्यक्ष प्रतिमा हैं। हे महामुने! जिनेश्वर! आपके चरणों में मेरा बारम्बार नमस्कार है। इस संसार-चक्र से आप मेरी रक्षा कीजिए।' ऐसा निवेदन कर भगवान महावीर तथा गौतम गणधर को श्रद्धा-भक्ति के साथ नमस्कार कर भगवान के मुखारविन्द से परम हितकारी उपदेशामृत का पान करने के लिए महाराज श्रेणिक समोशरण सभा में बैठ गए।

भगवान का उपदेश

महाराज श्रेणिक की जिज्ञासापूर्ण विनती सुन कर भगवान महावीर (जो समस्त चेष्टाओं से परे हैं) अपनी दिव्यवाणी से धर्मोपदेश करने लगे–'हे राजन्! सर्वप्रथम सप्त-तत्वों का वर्णन सुनी। इन सप्त-तत्वों से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन से मोक्ष मिलता है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष–सप्त तत्व कहलाते हैं। जीव के मूल दो भेद होते हैं–पहिला त्रस (चलनेवाले जीव) एवं दूसरा स्थावर (न चलनेवाले जीव)। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं वनस्पति नामक पाँच प्रकार के स्थावर होते हैं। इन पाँच प्रकार के स्थावर जीवों में स्पर्शन इन्द्रिय से युक्त चार तो प्राणवान् होते हैं। इन पाँच प्रकार के जीवों के दो अन्य भेद हैं, जिन्हें सूक्ष्म एवं स्थूल कहते हैं तथा उनके तीन अन्य भेद होते हैं, जिन्हें पर्याप्त, अपर्याप्त एवं लब्धपर्याप्त कहते हैं। पृथ्वीकायिक स्थावरों के जीव चार प्रकार के होते हैं–पृथ्वीकाय, पृथ्वीजीव, पृथ्वी एवं पृथ्वीकादिक। इसी प्रकार जलादिक स्थावरों के चार-चार भेद होते हैं। प्रारम्भ के चार जीव घनांगुल के असंख्या भाग शरीर के धारणकर्त्ता हैं। वनस्पतिकाकि जीवों के उत्तम शरीर का अंश संख्यातांगुल होता है एवं जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग शुद्धेतर पृथ्वी जीवों की उम्र बारह हजार वर्ष की होती है। जल के जीवों की उम्र बाईस हजार वर्ष की होती है। सात हजार तीन वर्ष तक तेजकायिक जीव जीवन धारण करते हैं। तीन हजार वर्ष तक वायुकायिक एवं दश हजार वर्ष तक वनस्पतिकायिक जीव जीवित रहते हैं। दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय एवं चौइन्द्रिय नामक तीन प्रकार के विकलेन्द्रिय जीव होते हैं। पंचेन्द्रिय दो प्रकार के होते हैं, जिन्हें संज्ञी या असंज्ञी कहते हैं। मनुष्य, देव, तिर्यन्च एवं नारकी नाम के पंचेन्द्रिय के चार अन्य भेद हैं। इनमें नारकी सात नरकों में रहने के कारण सात प्रकार के होते हैं। तिर्यन्च तीन प्रकार के होते हैं–जिन्हें जलचर, थलचर तथा नभचर कहते हैं। मनुष्य दो प्रकार के होते हैं, जिन्हें भोगभूमिज एवं कर्मभूमिज कहते हैं। कर्मभूमिज मनुष्य ही मोक्ष प्राप्ति में समर्थ होते हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक नामक चार निकाय के देव कहलाते हैं। भवनवासी देवों में दस प्रकार के उपभेद होते हैं। आठ प्रकार के व्यन्तर, पाँच प्रकार के ज्योतिषी एवं दो प्रकार के वैमानिक देव होते हैं। हे राजन! यह तो जीवों के भेद का वर्णन है। अब अजीव तत्व का वर्णन ध्यानपूर्वक सुनो–

धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं पुग्दल नामक अजीव तत्व पाँच प्रकार के होते हैं। इनमें धर्मद्रव्य असंख्यात प्रदेशी, जीव एवं पुदग्गल के गमन के कारण एक अपूर्व तथा सत्ता रूप-द्रव्य लक्षण से युक्त जो जाता है। उसी प्रकार अधर्म द्रव्य उपरोक्त समानता रखते हुए स्थिति में सहयोगी की विशेषता रखता है। लोकाकाश एवं अलोकाकाश नामक आकाश दो प्रकार के होते

हैं। असख्यात-प्रदेशी को लोकाकाश कहते हैं। अनन्त-प्रदेशी को अलोकाकाश कहते हैं। सब द्रव्यों को गृह के समान अवगाहन दान देने में लोकाकाश सहयोगी बनता है। काल द्रव्य में भी असंख्यात-प्रदेशी होने के साथ-साथ एक अन्य द्रव्य लक्षण होता है। वह रत्न-राशि के समान लोकाकाश में लीन रहता है तथा समस्त द्रव्यों की वर्तना परिणाम में कारण स्वरूप है। पुद्गल द्रव्य के अनन्द भेद हैं, जो कर्मवर्गणा, आहार वर्गणादि हैं—ये शरीर तथा इन्द्रियादि की रचना में सहायक हैं। द्रव्यास्त्रव एवं भावास्त्रव नामक दो प्रकार के आस्त्रव के भेद होते हैं। वह चार प्रकार का है—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध एवं प्रदेशबन्ध। जब कर्मों का आस्त्रव रुक जाता है, तो उस अवस्था को सम्वर कहते हैं। सम्वर दो प्रकार का होता है—एक द्रव्य सम्वर एवं दूसरा भाव सम्वर—जिनकी जड़ गुप्ति समिति, धर्म एवं अनुप्रेक्षादि हैं। सविपाक निर्जरा तथा अविपाक निर्जरा नामक दो प्रकार के भेद निर्जरा के होते हैं। सविपाक निर्जरा की प्राप्ति सहज भाव से होती है, किन्तु उग्र तपस्या से अविपाक निर्जरा की प्राप्ति होती है। मोक्ष के भी दो भेद होते हैं, जिन्हें द्रव्यमोक्ष एवं भावमोक्ष कहते हैं। समस्त कर्मों से रहित हो जाने की अवस्था में मोक्ष की प्राप्ति होती है। हे मुमुक्षु! यदि सप्त तत्वों के साथ ही पुण्य एवं पाप की गणना की जाए, तो ये ही नव तत्व कहलाते हैं।'

इस प्रकार परम उपकारी तीर्थङ्कर भगवान ने श्रावक तथा मुनिधर्म का वर्णन किया। उनके धर्मोपदेश से महाराज श्रेणिक के हृदय में जैन धर्म के प्रति जो भी शङ्कायें थीं, उन सब का पूर्णरूपेण समाधान हो गया। महाराज ने गौतम गणधर को नमस्कार कर विनम्र शब्दों में कहा—'हे प्रभो! पुराणों की कथाएँ श्रवण करने से जैन धर्म के प्रति मेरी श्रद्धा पुष्ट हो गयी है। जिस श्रद्धा के कारण संसार में कर्मों का नाश होता है, वह भी अब मेरे हृदय में है। किन्तु मेरी समझ में अब तक यह नहीं आया कि किस अभिमान के कारण मेरे मन की प्रवृत्ति व्रतादि के पालन की ओर नहीं रहती। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपा कर मेरा यह संशय निवारण कर देवें।' महाराज श्रेणिक के विनम्र वचन सुन कर गौतम गणधर ने समझाना प्रारम्भ किया—'जिस मनुष्य ने अपने जीवन का अधिकांश काल भोगों में व्यतीत किया हो, जिसने प्रगाढ़ मिथ्यात्व का अवलम्बन लिया हो, जिसने महामुनि की ग्रीवा में नाग डाल दिया हो; इस प्रकार जिसने अपने दुराचरण तथा तीव्र परिग्रह बन्ध से पहिले ही दीर्घ नरकायु का संचय कर रखा हो—भला आपके सदृश उस मनुष्य का मन यदि व्रताचरण में नहीं लगता, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जो अपने लिए उत्तम (देव) गति का पुण्यार्जन संचय करते हैं, वे ही व्रतधारी हो पाते हैं, अन्य गतियों में जानेवाले नहीं। हे राजन्! संसार में आपकी गणना सर्वश्रेष्ठ नरेशों में है। पवित्र पुराणों के श्रवण से आपका हृदय भी निर्मल हो गया है। सातों प्रकृति के उपशम से आपके औपशमिक सम्यग्दर्शन था, अब अन्तर्मुहूर्त्त में क्षयोपशमिक

सम्यकत्व की आपने प्राप्ति कर ली है। हे नरनाथ! इस सम्यग्दर्शन का नाश कभी नहीं होता। यह निश्छल तथा उत्तम है। सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, जिसमें किसी प्रकार का पूर्वापर विरोधाभास नहीं मिलता, जिसका शास्त्र द्वारा निरूपण हुआ है, जिसे स्वयं जिनेश्वर भगवान ने प्रतिपादिक किया है तथा जिसमें सप्त-तत्व का निर्दोष श्रद्धान रह करता है। हे राजन्! बड़ी कठिनाई से उस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन का ही प्रताप है, जो संसार में आवागमन रूपी विष-वृक्ष को नाश करने में समर्थ होता है। सम्यग्दर्शन के समतुल्य संसार में कोई कर्म, सुख अथवा तप अन्य नहीं है। सम्यग्दर्शन से ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति होती है, उसी के द्वारा स्वर्गों के सुख, अरहन्त पद तथा अन्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है। यह सम्यग्दर्शन की ही महिमा है, जिसके द्वारा भ्रष्ट व्रत भी शुभ बन जाते हैं। उसके अभाव में योगधारियों के सुव्रत भी कुव्रत का रूप धारण कर लेते हैं। हे नरनाथ! आप अब किसी भावना की चिन्ता न करें। उसी महिमामय सम्यग्दर्शन के पुण्य-प्रताप से आप भविष्य में आनेवाले उत्सार्पिणी-काल में इसी भारत भूमि में पदमनाभ नामक प्रथम तीर्थङ्कर होंगे। इसलिये अब आप निर्भर रहें—आप आसन्न-भव्य हैं। आपका शील-स्वभाव विनय-युक्त है। आप सम्यग्दर्शन प्राप्त कर दोष रहित हो गए हैं। इस समय आप के चित्त का झुकाव शील-व्रत की ओर है, जिसके द्वारा अन्य व्रतों की रक्षा होती है।

हे मगधपति! आपके मन में संसार के भोगों से छुटकारा पाने के लिए तपस्या करने की भावना का उदय हो रहा है। आप धर्मार्थ तथा जिन-पूजादिक उत्तम-उत्तम कार्यों में अपने धन का सदुपयोग करते हैं। आप साधुओं की सेवा में अपना चित्त लगाते हैं तथा शास्त्रोक्त विधि से सोत्साह साधुओं की वैयावृत भी करते हैं। कर्म-रहित (निष्काम) जिनेन्द्र भगवान के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति अनिर्वचनीय है। आप शास्त्रों में मर्मज्ञ आचार्यों में भक्ति-भाव रखते हैं। षट् आवश्यकों में आपकी बुद्धि अपूर्व है। आप जैन मार्ग की प्रभावना द्वारा धर्म की वृद्धि करते हैं। आप जैन धर्म के पालकों में अपना वात्सल्य-भाव रखते हैं। अब आप में सोलह पवित्र भावनाओं से युक्त तीर्थङ्कर होने का लक्षण व्याप्त हो गया है। आप मरणोपरान्त रत्नप्रभा नामक नरक में जायेंगे, वहाँ मध्यम आयु भोग कर भविष्य के कल्प में चतुर्थकाल में रत्नधामपुर में तीर्थङ्कर होंगे।'

गणधर देव के हितकारी वचन सुन कर महाराज श्रेणिक ने निवेदन किया—'हे प्रभो! अधोगति का प्रियपना का लक्षण कृपया कहिए।' तब गौतम गणधर ने कालशूकर की कथा कह सुनायी, जिसने सातवें नरक की आयु का बन्ध कर फिर उसे कैसे नष्ट किया? महाराज श्रेणिक ने उपरोक्त वर्णन सुन कर श्रद्धा-भक्ति से जिनराज के कमलरूपी चरणों में अपना चित्त लगाया, जिसके फलस्वरूप वे अज्ञातशत्रु हो गए। महाराज श्रेणिक ने अपने पाप-कर्म के द्वारा उत्पन्न सप्तम नरक की आयु का अपने इन सद्-विचारों द्वारा नाश कर दिया तथा भविष्य में मिलनेवाली 'तीर्थङ्कर' प्रकृति का बन्ध कर अपने हृदय में तीव्र

प्रसन्नता का अनुभव किया। धर्म के प्रभाव से भावों में कितना महान् परिवर्तन हो गया। जहाँ सप्तम नरक की उत्कृष्ट स्थिति थी, वहाँ केवल प्रथम नरक की मध्यम स्थिति रह गयी—धर्म की महिमा ऐसी ही होती है।

धर्म के प्रभाव से सांसारिक जीव कल्याण की प्राप्ति करते हैं, उसी के द्वारा तीर्थङ्कर पद प्राप्त करते हैं। अतः आवश्यकता यह है कि सभी श्रेष्ठजन धर्म-भावना में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक संलग्न हो कर उपरोक्त उत्तम पदों की प्राप्ति करें।

त्रयोदश अध्याय

गणस्वामी, मुनियों में उत्तम, गौतम गणधर कहलाये। भक्तिभाव से नमस्कार कर, अभयकुमार भी हर्ष पाये।।
विनययुक्त हो मुनि से पूछी, अपनी पूर्व जन्म कहानी। मुनि प्रसन्न हो लगे सुनाने, सुन लो पाठक हे ज्ञानी।।

अभयकुमार का पूर्व-भव

इसके अनन्तर महाराज श्रेणिक के ज्येष्ठ पुत्र एवं परम मेधावी अभयकुमार ने ज्ञान के पुन्ज, गणस्वामी, मुनियों में श्रेष्ठ गौतम गणधर से अपने पूर्व भव का वृत्तान्त सुनाने की करबद्ध प्रार्थना की। उसे निकट भव्य समझ कर परम उपकारी गौतम गणधर कहने लगे—

इसी भरतभूति के वेणातड़ाग नामक नगर में रुद्रदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह माना हुआ धूर्त्तराज था। एक समय वह तीर्थयात्रा करने निकला। जब वह मार्ग में उज्जयिनी नगरी में जा पहुँचा, तब उक्त नगरी में अर्हदास नामक एक सेठ रहता था, जिसकी स्त्री का नाम जिनमती था। पति-पत्नी दोनों जैन धर्म में अविचल श्रद्धा-भाव रखते थे। रुद्रदत्त ने संध्या के उपरान्त अर्हदास के घर पर जाकर भोजन की याचना की। उस समय सेठ की स्त्री जिनमती उपस्थित थी। उसने रात्रि के समय भोजन याचना करते सुन कर कहा—'रात्रि हो गयी है। मैं अब कैसे आपको भोजन दूँ।' रुद्रदत्त ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'हे भद्रे! रात्रि के समय भोजन देने अथवा करने में अपनी असहमति क्यों प्रकट कर रही हो? उसको प्रश्न सुन कर जिनमती ने कहा—हे अतिथि! मैंने रात्रिकाल में भोजन देने में इसलिये अपनी असमर्थता प्रकट की, क्योंकि इस समय भोजन करने से अनेक जीवों की प्राण हानि का भय रहता है, जिससे आचार्यों ने इस समय का भोजन निषिद्ध ठहराया है। रात्रिकाल में भोजन करना जीवनाश, पापोदय तथा घोर दु:खों का कारण होता है। तुम मेरी यह उक्ति गाँठ बाँध लो कि रात्रिकाल में भोजन करनेवाले मनुष्य का उल्लू, व्याघ्र, हरिण, नाग, बिडाल तथा मूषिकों की योनि में पुनर्जन्म होता है। जो मनुष्य रात्रि के समय भोजन नहीं करते, वे अनन्त सुख प्राप्त करते हैं, वे लोक-परलोक दोनों के कष्टों से परे होते हैं। अतः इस समय मैं तुम्हें

भोजन नहीं देने के लिए क्षमा चाहती हूँ। तुम कल प्रात:काल मेरे यहाँ आकर भोजन ले जाना।' धर्मात्मा जिनमती के वचन उस ब्राह्मण के हृदय में गहरे प्रवेश कर गये। उसने भी उसी समय से रात्रिकाल में भोजन न करने की प्रतिज्ञा कर ली।

वह दूसरे दिन वहाँ भोजन कर किसी जैनी के साथ गङ्गा स्नान करने चला गया। मार्ग में चलते-चलते उसे एक पीपल का पेड़ मिला। पीपल के वृक्ष की लम्बी डालियों पर अनेक प्रकार के पक्षियों का समूह उसके मधुर फल चखने के लिए उपस्थित था। वृक्ष के चतुर्दिक पाषाण (पत्थर) के बड़े-बड़े टुकड़ों के ढेर लगे हुए थे। यह देखते ही वह ब्राह्मण भक्ति-रस से विह्वल हो उठा। उस पीपल वृक्ष को कोई देवता समझ रुद्रदत्त ने भक्ति सहित प्रणाम कर तीन बार प्रदक्षिणा की तथा उसकी स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी। उसके साथी जैनी ने उसे मिथ्याचार करते हुए देख कर कहा—'हे विज्ञ ब्राह्मण! तुम किस देवता की पूजा कर रहे हो? उसके नाम-माहात्म्य का तो वर्णन करो।' रुद्रदत्त ने कहा—'हे सेठ! इसे बोधिकर्म नामक देव कहते हैं, जिसमें भगवान विष्णु का वास रहता है। यदि यह चाहे तो हमारा हित-अहित सब कुछ कर सकता है।' ब्राह्मण का प्रशंसा-भरा कथन सुन कर उस वैश्य ने ब्राह्मण के पूज्य देवता (पीपल के वृक्ष) के ऊपर प्रहार कर उसकी पत्तियाँ तोड़ डालीं। उन पत्तियों को भूमि पर बिछा कर उनके ऊपर बैठ कर उक्त वैश्य ने कहा—'हे विप्र! अब अपने भगवान की महिमा ढूँढ़ो, वह कहाँ चली गयी? तुम किस भूल-भुलैया में फँसे हो? यह वनस्पति मात्र है। इससे कुछ होता-जाता नहीं? भला, वृक्ष मनुष्य का क्या बिगाड़ सकता है?' तब रुद्रदत्त ब्राह्मण उस वैश्य के ऐसे आचरण पर क्रोधित होकर अपने मन में विचार करने लगा—'इसने मेरे देवता का अपमान किया है। अत: मैं भी इसके देवता को अपमानित करूगाँ।' पर उसने अपने मन के भाव मन में ही गुप्त रखे। प्रकट में उसने वैश्य से कहा—'हे बन्धु! देवता की परीक्षा के लिए किसी को प्रधान बनाना आवश्यक है।' वैश्य समझ गया कि इसके हृदय में कुछ कुटिल भाव है। ऐसा सोच कर उसने कहा—'हे विप्र! यह वृक्ष जड़ जीव है, जिसकी एकेन्द्रिय संज्ञा है। क्या तुम समझते हो कि इस पीपल के वृक्ष में मनुष्य के समान बुद्धि (ज्ञान) का बल है? अरे! यह तो पक्षियों का बसेरा है? संसार में प्राणियों के शुभाशुभ कर्म ही सुख-दु:ख के विधाता हैं। उन्हीं में इतनी शक्ति है कि वे सत्यासत्य का निर्णय कर सकें। हे प्रिय बन्धु! धर्मात्मा मनुष्यों की सेवा देवता तक करते हैं। किन्तु जिसका जीवन पापमय होता है, उससे अपने प्रिय बन्धु-बान्धव, यहाँ तक कि अपना परिवार भी सम्बन्ध-विच्छेद कर पृथक् हो जाता है।'

इस प्रकार उस वैश्य ने ब्राह्मण के हृदय में पैठे हुए मिथ्याभाव (देव-मूढ़ता) का निवारण कर दिया। इतने में वे दोनों गङ्गा के तट पर पहुँच गये। गङ्गा के पवित्र तट पर जाकर वैश्य तो भोजन करने लगा एवं रुद्रदत्त उसमें स्नान करने लगा। स्नान करने के पश्चात् उसने पितरों को श्रद्धांजलि दी। तब वह वैश्य के समीप आया। वैश्य ने रुद्रदत्त से कहा—'हे विप्र!

मेरा उच्छिष्ट भोजन खाओ। तुम्हारे लिए रख छोड़ा है।' क्रुद्ध रुद्रदत्त ने कर्कश स्वर में कहा—'अरे अधम! तुम यह क्या कहते? क्या मैं तुम्हारा उच्छिष्ट भोजन करूँगा?' वैश्य ने कहा—'हे बन्धु! गङ्गाजल के प्रभाव से यह उच्छिष्ट भोजन अब पवित्र हो गया है। यदि गङ्गाजल में इतनी भी महिमा नहीं है कि इस उच्छिष्ट भोजन को पवित्र कर सके, तो उसका नाम पापमोचनी कैसे हो सकता है? यदि तुम कहते हो कि स्नान द्वारा शुद्धि हो जाती है, तब तुम्हीं बतलाओ कि मत्स्य तो सर्वदा गङ्गाजल में रहते हैं, नाविक सदा गङ्गाजल में डुबकी मारते हैं, तब वे सब सीधे स्वर्ग में क्यों नहीं चले जाते? मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि बाह्य-स्नान से आन्तरिक-शुद्धि नहीं होती। आत्म-शुद्धि तो तप-व्रत-नेम-धर्म-ध्यान-क्षमा तथा शुद्धाचरण से होती है। जिस प्रकार मदिरा का पात्र ऊपर से सहस्त्रों बार घोए जाने पर भी शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार यह पाप-रूपी देह (जिसमें अब्रह्म आदि पाप व्याप्त है) ऊपर के स्नान से कभी भी शुद्ध नहीं होती। यह केवल ज्ञानरूपी तीर्थ में स्नान (प्रक्षालन) से सर्वाङ्ग शुद्ध हो सकती है। जिस प्रकार घृत का पात्र बिना प्रक्षालन के ही शुद्ध रहता है, उसी प्रकार ज्ञान-तीर्थ में स्नान करनेवाले मनुष्य की आन्तरिक भावना पवित्र हो जाती है। कहा भी गया है—'मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा'। अतः मनुष्य को उचित है कि वह मिथ्या-आडम्बर त्याग कर मानसिक-शुद्धि के लिए सतत् प्रयत्न करे, अन्यथा उसका प्रक्षालन-अवगाहन पूर्णतः निष्फल है।' रुद्रदत्त ने वैश्य के युक्तियुक्त वचन सुन कर तीर्थ-स्नान का मूढ़-भाव त्याग दिया।

उसी समय वहाँ पर एक तपस्वी अग्नि की धूनी रमा कर पन्चाग्नि तप कर रहा था। वैश्य ने रुद्रदत्त को उसके निकट ले जाकर पन्चाग्नि में जलते हुए अनेक जीवों को दिखला कर उसके हृदय से पाखंडी तप में श्रद्धा का मूढ़-भाव सर्वदा के लिए समाप्त कर दिया।

इसके पश्चात् उस वैश्य ने रुद्रदत्त को उपदेश दिया—'हे विप्र! वेद में हिंसा करने के पक्ष में एक भी सूत्र नहीं है। उसमें हिंसा शब्द को ही भय-प्रदाता कहा गया है। जो लोग पवित्र तपस्या में पाखण्ड का अनुमोदन करते हैं, वे ही हिंसा के समान पाप कर्म करते हैं। मेरी समझ में यह तथ्य नहीं आता कि उसे लोग कैसे स्वीकार करते हैं? यदि संसार में दया से रहित किसी धर्म का अस्तित्व है, तो हम माँसाहारी बिड़ाल, व्याघ्र, बहेलिया इत्यादि को सब से बढ़ कर धर्म का प्रवर्त्तक कहेंगे। जब ऐसे पवित्र कर्म में धर्म के नाम पर बकरे का बलिदान करना अनिवार्य (आवश्यक) समझा जाता है, तब चोर-दस्यु धन के लोभ में किसी व्यक्ति का प्राण हरण कर लेते हैं, तो उन्हें हम व्रधिक के सम्बोधन से क्यों धिक्कारते हैं? उनके कार्य को अन्यायपूर्ण तथा पापमय क्यों कहते हैं? तुम यदि कहोगे कि अश्वमेध तथा नरमेध यज्ञ में बलिदान होने वाले जीव सीधे स्वर्ग चले जाते हैं, तो क्या ही अच्छा होता कि यज्ञ करनेवाले यज्ञ की पवित्र वेदी पर स्वयं बलिदान देकर स्वर्ग में पहुँचने के सुअवसर का

लाभ उठाते। हे विप्र! यदि कोई धर्म-शास्त्र या लोक-सम्प्रदाय धर्म की ओट में हिंसा का समर्थन करता है, तो उसे धर्म समझना उस (धर्म) की हत्या करने के समतुल्य है? क्या जीव हिंसा कभी भी धर्म का स्थान ग्रहण कर सकती है?' वैश्य के उपदेश से ब्राह्मण रुद्रदत्त ने आगम-मूढ़ता त्याग कर सम्यकत्व में अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट की। उसके हृदय में मिथ्या विचारों से जो मूढ़ता (अज्ञान) उत्पन्न हो गया था, वह अब तिरोहित हो गया। इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए वे श्रावक के व्रतों का पालन करनेवाले सम्यक्त्व में अवगाहन करते हुए चले जा रहे थे। इतने में अपने पूर्व जन्म के पाप के उदय के कारण दिशा-भ्रम हो जाने से वे मार्ग भूल गये। चतुर्दिक घनघोर वन का साम्राज्य था, तब पथ-प्रदर्शक कहाँ से आये? इस प्रकार दिशा-भ्रम हो जाने के कारण वे दोनों भिन्न-भिन्न स्थानों को चले गये। उनका संग विच्छित्र हो गया। रुद्रदत्त ब्राह्मण के हृदय में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने सन्यासी होकर चार प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। वह मरणोपरान्त देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर देवियों के साथ दीर्घ अवधि तक सुखपूर्वक समय बिता कर उसने तुम्हारे रूप में जन्म-धारण किया। तुम भी इस जन्म में जैन धर्मानुसार तपस्या कर सिद्ध पद प्राप्त करोगे?' इस प्रकार अभयकुमार के पूर्व-जन्म की कथा सुना कर गौतम गणधर मौन हो गये।

दन्तिकुमार का पूर्व-भव वृत्तान्त

इसके पश्चात् दन्तिकुमार ने करबद्ध निवेदन कर अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त पूछा। तब गौतम गणधर ने उसके पूर्व-जन्म की कथा यों कही—

इसी भूतल पर दारुण नाम का एक वन है। उस वन में एक योगी तपस्या करते थे, जिनका नाम सुधर्म था। मुनिराज तो अपने ध्यान में तल्लीन थे, उन्हें सांसारिक हलचलों का क्या ज्ञान? दारुणमिल नामक देव उस वन का रक्षक था। उसने उस मुनिराज को वन में तपस्या करते नहीं देखा था, अतः अनजाने में उस वन में आग लगा दी। अग्नि की भयङ्कर ज्वाला समस्त वन मे एक छोर से दूसरे छोर तक धधकने लगी। मुनिराज भी अग्नि की भीषण ज्वाला में भस्मीभूत हो कर स्वर्ग को सिधारे। वे अच्युत स्वर्ग में जाकर देव हुए थे। कुछ काल के पश्चात् वह वनरक्षक देव महामुनि का अस्थि-पन्जर देख कर अत्यन्त दु:खित हुआ। वह अपने मन में विचार करने लगा कि मेरे सदृश पापी संसार में कौन होगा, जिसने परम तपस्वी महामुनि को अग्नि में विदग्ध कर दिया हो। उस वनरक्षक देव की आयु भी पूर्व हो चुकी थी, अतः यह भी तत्काल मरण को प्राप्त हुआ। वह (देव) उसी वन में एक विशालकाय मनोज्ञ गजराज हुआ।

एक दिन अष्टाह्निका पर्व के शुभ अवसर पर उन्हीं मुनिराज का जीव (देव) अच्युत स्वर्ग से नन्दीश्वर पर्वत की वन्दना के लिए आया। दारुण वन पर गुजरते हुए वह देव (मुनिराज का जीव) वनरक्षक देव के जीव (गजराज) को देख कर अपने पुष्पक विमान से उतरा। उसे अपना जाति स्मरण हो आया था, फलस्वरूप वह अपने पूर्व जन्म के समान घ्यानस्थ होकर तपस्या में लीन हो गया। गजराज ने मुनिराज को तपस्या करते हुए जब देखा, तब उसे भी जाति-स्मरण हो आया। फलस्वरूप पश्चाताप करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रों से मुनिराज के चरणों में भक्ति-भाव से नमस्कार कर उसने क्षमा याचना की। देव ने कृपा कर उसे सदुपदेश दिया। गजराज ने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर श्रावक के व्रत अङ्गीकार किये। तब देव वहाँ से चला गया। गजराज अब प्रासुक जल का पान तथा फलाहार का भक्षण करते हुए श्रावक के व्रत का पालन करने लगा। कुछ दिनों के पश्चात् उसने सन्यास ग्रहण कर समाधिमरणपूर्वक अपनी देह त्याग दी। जिस प्रकार गगन-मण्डल में बादलों का समूह एकत्र हो जाता है, उसी प्रकार उत्पाद-शैय्या पर प्रकट होते ही उसने दैहिक पूर्णता प्राप्त कर ली। उसके कर्णों में केयूर शोभा देने लगे। उसके वक्ष पर हार एवं शीश पर स्वर्ण जड़ित सुन्दर मुकुट परम शोभित थे। सुगन्धपूर्ण समीर से सारा दिग-दिगान्त व्याप्त हो उठा। उसके सर्वाङ्ग में सुन्दर आभूषण तथा उत्तम वस्त्र सुशोभित होने लगे। इस प्रकार अपने को सर्वाङ्ग सुसज्जित देख कर देव ने मन में विचार करना प्रारम्भ किया—'अरे मैं कौन हूँ? इस अज्ञात स्थान पर कैसे आ गया हूँ? मैं पहिले कहाँ रहता था? मेरे सामने ये सुर-सुन्दरियाँ अपना हाव-भाव प्रकट कर नृत्य द्वारा अपनी ओर आकर्षण क्यों उत्पन्न कर रही हैं? अरे! मैं कहाँ से किधर चल आया?'

इस प्रकार सोचते-सोचते उसने अपने अवधिज्ञान के प्रभाव से सम्पूर्ण घटना ज्ञात कर ली। जब उसे ज्ञात हो गया कि वह गज की योनि से इस देवलोक में आया है, तब उसने निश्चय कर लिया कि व्रत के प्रभाव से ही ऐसा अपूर्व चमत्कार हुआ है। अब वह आनन्दपूर्वक देवांगनाओं के साथ सुखोपभोग करने लगा। किंतु उसके हृदय में जैन धर्म के प्रति आस्था-भावना ज्यों-की-त्यों बनी रही। वह समय-समय पर नन्दीश्वर पर्वत पर सिद्ध भगवान की पूजा करने जाने लगा। उसी देव ने स्वर्ग में सुख भोगने के पश्चात् रानी चेलना के गर्भ में आकर तुम्हारे रूप में जन्म धारण किया है।' महाराज श्रेणिक ने अपने दो पुत्रों के पूर्व-जन्म का वृत्तान्त सुन कर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। सब के हृदय में जैन धर्म के प्रति अगाध अनुराग-भाव हिलोरें मारने लगा। सब लोगों ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान के पवित्र चरणों में नमस्कार कर राजगृह नगर के लिए प्रस्थान किया। महाराज श्रेणिक के हृदय में भगवान के पवित्र दर्शन तथा उपदेशामृत से अपूर्व आनन्द का अनुभव हुआ। महाराज श्रेणिक का प्रभाव चारों ओर फैल गया। उनके प्रबल राज्य-शासन के प्रभाव से बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं ने उनकी अधीनता

स्वीकार कर ली। फलस्वरूप महाराज श्रेणिक ने महामण्डलेश्वर की पदवी प्राप्त कर ली। महाराज श्रेणिक ने उपरोक्त उपाधि ग्रहण कर एकछत्र शासन करना प्रारम्भ किया। उनका प्रताप रूपी सूर्य समस्त भूमण्डल में दैदीप्यमान होने लगा।

देवों ने परीक्षा ली

महाराज श्रेणिक के यश-प्रताप का वृत्तान्त अब देवेन्द्र तक जा पहुँचा। तब एक दिन इन्द्र देवताओं की सभा में कहने लगे—'हे देवगण! वर्त्तमान में आर्यावर्त में महाराज श्रेणिक राज्य कर रहे हैं, जो अनमोल सम्यग्दर्शन के भी धारी हैं। उनका सम्यग्दर्शन इतना स्पष्ट एवं प्रखर है कि उसकी तुलना में संसार में कोई अन्य उदाहरण मिलना असम्भव है। यदि उसकी तुलना एक विशाल वृक्ष से की जाए, तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं है। मिथ्यादर्शन-रूपी गजराज उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। यदि उनका सम्यग्दर्शन-रूपी वह वृक्ष महान शास्त्र के समान सुदृढ़ जड़ की समता रखता है, तो उसे कुसंग रूपी कुल्हाड़ी काटने में असहाय सिद्ध होती है तथा कुशास्त्र-रूपी समीर के सामने वह (जड़) अटल बनी रहती है। उनके सम्यग्दर्शन-रूपी विशाल वृक्ष की दृढ़ जड़ शास्त्र-रूपी जल से सिंचित होने के कारण किसी के द्वारा छिन्न-भिन्न नहीं हो सकती।' जिस समय देवेन्द्र ने महाराज श्रेणिक के सम्यग्दर्शन की प्रशंसा की, उस समय देवताओं की मण्डली आश्चर्य प्रकट करने लगी। उनमें से दो देवों ने महाराज श्रेणिक की परीक्षा लेने का विचार किया। वे बारम्बार अपने मन में विचारने लगे कि भला देवेन्द्र स्वयं बढ़ कर एक मनुष्य की प्रशंसा करें? यह असम्भव है— किसी मनुष्य में इतना चमत्कार आ ही नहीं सकता। इस प्रकार विचार करते हुए दोनों देवों ने महाराज श्रेणिक की परीक्षा करने के लिए स्वयं पृथ्वी पर जाने का निर्णय लिया।

एक ने हाथ में कमण्डल लेकर निर्ग्रंथ मुनि का वेष धारण कर लिया, जब कि दूसरे ने आर्यिका का रूप धरा। जिस मार्ग पर से महाराज श्रेणिक प्रति दिन आते-जाते थे, उसी के समीप के एक सरोवर से उक्त मुनि मत्स्यों (मछलियों) को पकड़-पकड़ कर कमण्डल में रखता जाता था। छदमवेशी आर्यिका समीप में बैठी हुई थी। कुछ कालान्तर पर उस मार्ग से नित्य की भाँति अश्वारूढ़ राजा श्रेणिक की सवारी निकली। सरोवर के समीप मुनि को मत्स्य-आखेट में तल्लीन देख कर वे अश्व से उतर कर उसके निकट गये तथा नमस्कार कर कहने लगे—'हे मुनिराज! आप भला यह क्या कर रहे हैं? कहाँ पवित्र मुनिवेष, फिर कहाँ यह हिंसा कर्म? भला लोग क्या कहेंगे? क्या ऐसे वेष में इस प्रकार का गर्हित कर्म करना उचित है?' उस मायावी देव ने उत्तर दिया—'हे नरनाथ! यह आर्यिका गर्भवती है। मैं इसके दोहद हेतु मत्स्य-आखेट कर रहा हूँ। आप निश्चित

समझें कि इस कार्य में मैं लेशमात्र भी दोषी नहीं हूँ।' महाराज ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'आप ने तो इस दुष्कर्म द्वारा मुनि वेष पर ही कलङ्क का टीका लगा दिया है? क्या किसी भी मुनि वेषधारी के लिए ऐसा दुष्कर्म श्लाघनीय है? मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि इस घोर दुष्कर्म से अपने पवित्र व्रत की रक्षा करें।' उस कपटी मुनि ने विनम्र शब्दों में कहा—'हे राजन! इस घोर जङ्गल में अकस्मात् इस आर्यिका के साथ मेरा परिचय हो गया है। यह गर्भिणी है। इसने मत्स्य-भक्षण की कामना प्रकट की है। ऐसी अवस्था में मैं ने इसकी इच्छा पूर्ण करना उचित समझा है। जब यह मेरे संग है, तब इसकी इच्छा की पूर्ति करना भी मेरा कर्त्तव्य है। अब मैं इसका संग त्याग भी नहीं सकता। ऐसी अवस्था में आप ही बतलायें कि मैं क्या करूँ?'

महाराज श्रेणिक ने कहा—'मैं आप की समस्त गाथा सुन चुका हूँ, किन्तु यदि आप मेरा परामर्श मानें तो मैं यही कहूँगा कि आपने इस समय जैसा वेष धारण किया है, कम-से-कम उसकी लाज तो रखिये? आपका वेष देख कर प्रत्येक मनुष्य यहीं समझेगा कि आप निर्ग्रंथ महामुनि हैं। किन्तु ऐसे दुष्कर्म से उस पवित्र भावना का लोप हो जाता है, जिससे धर्म भावना का उदय होता है। अतः आप मुनि के पवित्र वेष में इस प्रकार का दुष्कर्म न करें।' महाराज श्रेणिक के युक्तियुक्त वचन सुन कर छदमवेषी मुनि ने कहा—'हे महाराज! क्या आप समझते हैं कि एकमात्र में ही इस प्रकार का दुष्कर्म कर रहा हूँ? यदि आप समस्त मुनियों तथा आर्यिकाओं के चरित्र का अन्वेषण करायें, तो उन्हें मेरे समान ही अशुभ कार्यों के सम्पादन में संलग्न पाइयेगा। इस संसार में निर्दोष भला कौन है? सच ही कहा है—जाके पग नहि फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई। हे राजन्! पादुका संकुचन (काटने) का कष्ट तो पग ही जानता है। बाँझ स्त्री प्रसव-काल की वेदना का अनुभव स्वप्न में भी नहीं कर सकती। इधर पक्षियों के प्राण सङ्कट में हैं, उधर बालकों का मनोविनोद हो रहा है? ऐसे समय यदि आप हमारा परिहास नहीं उड़ायेंगे, तो भला अन्य कौन उड़ायेगा?' उसके ऐसे वचन सुन कर महाराज श्रेणिक क्रोधित हो कर कहने लगे—'तेरे दया रहित कार्य से प्रतीत होता है कि तू वास्तव में मुनि के वेष में कोई भ्रष्ट-चरित्रवाला नीच अथवा महामूर्ख है। क्या कोई भी सम्यग्दर्शनधारी मुनष्य इस प्रकार का निन्द्य कर्म कर सकता है, जैसा तुमने किया है?' कपटी मुनि ने गीदड़ भभकी देते हुए कहा—'हाँ, मैं ने जो कुछ बातें कही हैं, वे सोलहो आने सत्य हैं। क्या मैं तुम से जिज्ञासा कर सकता हूँ कि मुनियों को कठोर शब्दों से सम्बोधित करना कहाँ का न्याय-धर्म है? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह तुमने धर्म-विरुद्ध आचरण कैसे किया? तुम्हारे मर्मभेदी व्यङ्गपूर्ण कटु वचन मेरे हृदय को शूल के समान बेध रहे हैं। क्या तुम जैन धर्मानुयायी हो? क्या जैन धर्म का यही सिद्धान्त है कि उसका अनुयायी तपस्वी मुनियों के चित्त में अपने कुटिल व्यंग्य द्वारा दुःख उत्पन्न करे?' महाराज श्रेणिक ने कहा—'तुम्हारे कर्म से यह स्पष्ट हो गया है कि तुम्हारे अन्दर संवेगादि गुणों के अभाव में सम्यग्दर्शन का सर्वथा विलोप

हो गया है। संसार में जितने भी बुद्धिमान, नीतिज्ञ, योगी तथा शास्त्रों के ज्ञाता हैं, वे तुम्हारे समान निन्दनीय कर्म कदापि नहीं करते हैं। अतः उनमें तुम्हारी गणना हो नहीं सकती। क्या तुमने अपने चित्त में इस दुष्कर्म के प्रति लेशमात्र भी विचार किया है कि इन दुराचरणों के कारण पवित्र अहिंसामय जैन सिद्धान्त के ऊपर कैसा कुठाराघात होगा? उसकी कल्पना मात्र से हमारा सर्वाङ्ग काँप उठता है। अतः तुम अपने पाप कर्म का दण्ड अवश्य भोगोगे। कम-से-कम तुम इस समय तो पाप से बचो। क्या कोई मुनि तुम्हारे समान कटु सम्भाषण कर सच्चा मुनि कहला सकता है।? अब इस पाप कर्म को त्याग कर पुण्य के भागी बनो। यदि तुम मेरे कथन पर अमल करोगे, तो मैं तुम्हारी सारी मनोकामनायें पूर्ण करा दूँगा। अगर तुमने मेरी आज्ञा के पालन में लेशमात्र भी चीं-चपट की, तो मैं तुम्हें गर्दभ (गधे) पर आरूढ़ करा कर सारे राज्य में प्रदर्शित (घुमवा) कर दण्डित करूँगा।' तब वे दोनों छदमवेषी देव महाराज श्रेणिक के साथ राजमहल में आ गए।

महाराज श्रेणिक ने दोनों को अपने राजमहल में ठहराया। जिस समय राजा के मन्त्रियों ने देखा कि महाराज चरित्र-भ्रष्ट मुनि को साथ लाए हैं, तो उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वे महाराज से कहने लगे—'हे दयानिधे! 'नर वानर कहं संगति कैसे'? आप क्षायक सम्यग्दृष्टि धारी हैं। आप का ऐसे चरित्र-भ्रष्ट मुनि-आर्यिका के साथ कैसे संयोग हो रहा है? आप कृपा कर इनका संग त्याग दें। आपने ऐसे पतितों को नमस्कार कर अपने सम्यग्दर्शन में अतिचार लगा लिया है।' महाराज श्रेणिक ने अपने प्रवीण मन्त्रियों के युक्ति-युक्त वचन सुन कर कहा—'हे मन्त्रिगण! मैं ने नमस्कार इनके दुश्चरित्र को नहीं किया है, केवल साधुवेष को किया है। इससे मेरे सम्यग्दर्शन में किसी प्रकार का अतिचार नहीं होने का। वेष में दोष नहीं होता, हाँ आचार में कदाचित् हो सकता है। अतः मैं इन्हें नमस्कार करने पर भी निर्दोष हूँ।' उसी समय दोनों कपट वेषधारी देव समझ गए कि महाराज श्रेणिक यथा नाम तथा गुण हैं। देवेन्द्र ने इनकी जैसी प्रशंसा की थी, वह एकदम सत्य है। इस प्रकार विचार कर दोनों देवों ने वास्तविक स्वरूप मं प्रकट होकर महाराज श्रेणिक तथा रानी चेलना के चरणों में भक्ति-भाव से नमस्कार किया एवं राज-दम्पति को सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान कर गङ्गा जल से अभिषेक कर उनकी विधिवत् पूजा की।

इस प्रकार उनका गुणगान करते हुए दोनों देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उनसे अनुमति लेकर देवगण अपने-अपने स्थान को लौट गए। सच है जो लोग महाराज श्रेणिक के समान सम्यग्दर्शन की क्षमता रखते हैं, महिमाशाली देव भक्ति के साथ उनकी पूजा करते हैं, देवेन्द्र तक उनकी प्रशंसा करते हैं। इसलिए संसार में सम्यग्दर्शन की महिमा से बढ़ कर प्रत्यक्ष प्रभाव दिखलानेवाला कोई अन्य साधन नहीं है।

चतुर्दश अध्याय

अभयकुमार का वैराग्य

भय से परे वास्तविक जग की स्थिति जिसने पहचानी। भरी जवानी में जिसने तप योग साधना की ठानी।।
वैभव-सुख को ठुकरा कर जो हुआ था केवली ज्ञानी। पाठक! पढ़ लो उसी अभय की अन्तिम मोक्ष कहानी।।

एक दिन महाराज श्रेणिक अपने राज-दरबार में आनन्द से राज्य-कार्य कर रहे थे। उसी समय संसार की वास्तविकता को समझ कर, उससे विरक्त हो कर अभयकुमार उनके निकट आये। उन्होंने पूज्य पिता के चरणों में श्रद्धा से नमस्कार किया। इसके पश्चात् जब उन्होंने समस्त लोगों को मूढ़ तत्वों की व्याख्या में दत्तचित पाया, उसी समय अपने हृदय में पूर्व-जन्म के वृत्तान्त से दु:ख का अनुभव करते हुए पिता से विनम्र शब्दों में वे सांसारिक पदार्थों की वास्तविक स्थिति की व्याख्या करने लगे—'हे तात्! इस संसार में जो आते हैं, वे सभी एक-न-एक दिन यहाँ से चले जाते हैं। यह संसार आवागमन से परिपूर्ण है। देखिए इस चतुर्थ काल के प्रथम युग में श्रीऋषभदेव के सदृश आदि तीर्थङ्कर इस असार संसार को त्याग कर चले गए। जब सम्राट भरत के सदृश चक्रवर्ती सम्राट् यहाँ नहीं रह पाए, तब अन्य की गणना ही क्या है? जिस प्रकार महासागर में विशालकाय तिमिंगल (ह्वेल) रहते हैं, उसी प्रकार समुद्ररूपी जगत में जीव-रूपी अनन्त मत्स्यराशि हैं। यदि अथाह सागर में भयङ्कर भँवरें हैं, तो इस संसार में कष्टों का भँवर चक्र है। इस संसार में सागर की तरङ्गों के समान वृद्ध अवस्था का होना है। समुद्र में (कीचड़) होता है, सागररूपी संसार में पाप ही पङ्क (कीचड़) है। जिस प्रकार समुद्र का तट प्रचण्ड दिखलायी देता है, वैसे ही जगत में मृत्यु का होना कितना प्रचण्ड है। यदि कोई कहे कि सागर में बड़वानल होता है, तो तुलना के लिए संसार में चतुर्गति के समान बड़वानल विद्यमान है। संसार में जब मनुष्य को आसह्य वेदना का सामना करना पड़ता है, तब वह समुद्र के कछुवे की समता करता है। संसार में फैली हुई दरिद्रता समुद्र की बालुकाराशि की समता करती है। जिस प्रकार संसार की समस्त नदियाँ समुद्रों में जाकर मिलती हैं, उसी प्रकार यह सागर-रूपी संसार में नानाविध आस्त्रवों का संगम हुआ है। हे पूज्य पिता! अथाह सागर-रूपी इस ससांर में एक धर्म-रूपी जलपोत के द्वारा ही भवसागर पार किया जा सकता है।

मनुष्य की यह देह सप्त धातुओं से निर्मित है, इसके नवों द्वार से सदा मल का निकास होता है। नासिका, नेत्र, कर्ण, जिह्वा इत्यादि मल निकलने के नव द्वार (छिद्र) हैं। इसी देह से पापों की उत्पत्ति तथा उनका विनाश होता है। जिस अधम

देह में इन्द्रियों का इतना जमघट है, जहाँ क्षण-प्रतिक्षण चित्त की चंचलता का साम्राज्य रहता है, जिसमें मलों की खान है, उस अधम देह से अनुराग रखनेवाला व्यक्ति बुद्धिमान नहीं कहला सकता। आश्चर्य है कि लोग प्रमाद में फँस कर उस (देह) पर इतना स्नेह दिखलाते हैं। हे तात्! जिस प्रकार अग्नि में घृत की आहुति देने से वह प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार भोग-वासना की शान्ति उनमें प्रवृत्ति होने से नहीं होती। उसकी शान्ति उनसे निस्पृह रहने में ही है। भला सोचिए, जिसके मन की तृप्ति स्वर्ग के अनुपम भोगों से नहीं हुई, तो यह कब सम्भव है कि कामनियों के सहवास से उसकी कामना तृप्त हो? यह संसार जल बुदबुदे के सदृश क्षणभंगुर है, अतएव मुझे तपस्या करने की आज्ञा दीजिए। मेरा चित्त संसार के विषय-भोगों से उचट गया है। अब मैं भोग का जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता। इस समय तप द्वारा ही मेरा चित्त (आत्मा) शान्त हो सकता है।'

अभयकुमार के कथन ने महाराज श्रेणिक के ऊपर वज्राघात का-सा प्रभाव किया। वे किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। शोकाकुल हो कर वे मूर्च्छित हो गए एवं कटे वृक्ष सदृश भूमि पर गिर पड़े। महाराज श्रेणिक की ऐसी अवस्था देख कर उपस्थिति समस्त सभासद विचलित हो गए एवं हाहाकार मच गया।

महाराज श्रेणिक का शोक प्रकाश

बहुविधि यत्न करने पर जब महाराज को मूर्च्छा भङ्ग हुई, तब उन्होंने प्रकम्पित हुए स्वर में कहा—'हे प्रिय पुत्र! तुमने यह कैसी दारुण पीड़ाजनक आकांक्षा व्यक्त की है। मेरी ओर देखो, मैं राज्य भोगूँ एवं तुम तपस्या करोगे? यह सुन कर मेरा सर्वाङ्ग शिथिल हो रहा है। तेरे वियोग की कल्पना से मेरी हृदय-गति अवरुद्ध हो रही है। तेरी अनुपस्थिति से तो सम्पूर्ण साम्राज्य में अराजकता उत्पन्न हो जायेगी। हाय! लोग चौथेपन में जिनेन्द्र भगवान की शरण में जाकर तपस्या करते हैं, तब तू पूर्ण यौवनावस्था में भला यह क्या कह रहा है? अभी तेरी आयु ही क्या है? मेरे ऊपर तरस खाओ। हे पुत्र! तुम्हारी महत्वाकाँक्षा कहाँ चली गयी? तुम्हारा अगाध पाण्डित्य, अपूर्व सौन्दर्य, अनिर्वचनीय बुद्धिमत्ता क्या तप करने के लिए ही हे? हे पुत्र! तुम मेरा कहना मानो तथा तप करने का हठ त्याग कर राज्य-शासन का सूत्र अपने कर (हाथ) में सँभालो तथा राज्य करो। पुत्र होने के नाते अपने पिता की आज्ञा का पालन करो।' इतना ही, कह कर महाराज श्रेणिक मौन हो गए।

अभयकुमार ने विनम्र शब्दों में कहा—'हे पिताश्री! महान् पुरुषों का कथन है कि तपस्या के द्वारा ही संसार के उत्तम-से-उत्तम सुख प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त चौथेपन में तपस्या करना सम्भव भी नहीं, क्योंकि उस समय मनुष्य की

समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। मनुष्य वृद्धावस्था का अनुभव करता है, जिससे देह में बल, उत्साह आदि क्षीण हो जाते हैं, तब उससे तपस्या सदृश दु:साध्य कार्य का होना असम्भव है। तपस्या तो युवावस्था में ही की जा सकती है, जब समस्त इन्द्रियाँ सम्यक् रीति से अपना-अपना कार्य कर रही हों। इसलिए काया की स्वस्थ अवस्था में ही तपस्या करना उत्तम है। इस देह के सौन्दर्य के ऊपर अभिमान करना व्यर्थ है। यह कंचन सदृश काया आज है, तो कल की कुसुमकली के सदृश मुरझा भी जानेवाली है। अतः काया के रूप में ऊपर मोहित होना, कर्त्तव्य से च्युत होना सदृश है। हे पिताश्री! गृहस्थों का जीवन 'गृह कारज-नाना जंजाला' के समतुल्य है। यदि मैं राजमहल, सुख-वैभव, ऐश्वर्य, राजकोष आदि के ऊपर मोहित होकर उन्हीं में निमग्न रहूँ, तो मेरे समतुल्य मिथ्या-दृष्टिवाला भला अन्य कौन होगा? आप मुझे साम्राज्य का प्रलोभन दे रहे हैं? यह साम्राज्य अथवा सम्पदा तो वर्तमान काल में प्रकट हैं, पर भविष्य में इनका अस्तित्व तक नहीं मिलेगा। ऐसे क्षणभंगुर राज्य-सुख के ऊपर मेरी किंचित् भी प्रवृत्ति नहीं। इसे स्वीकार कर मैं पाप के दलदल में नहीं फँसना चाहता। हे जनक! इस समय मेरे मस्तिष्क में एक ही विचार है, उसी की उधेड़गुन है तथा वह है—तपस्या। मैं तपस्या करना चाहता हूँ। मुझे राज्य-सुख नहीं चाहिए। मैं ने भव-भवान्तर में न जाने कितनी बार राज्य-शासन किया है। इसमें न कुछ सार है और न ही कुछ नवीनता। मेरी दृष्टि उस शाश्वत सुख की ओर लगी हुई है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य का जीवन सही अर्थों में सार्थक हो जाता है। वह अक्षय सुख तपस्या से ही प्राप्त होगा। पूज्य पिताश्री! अब तब मैं ने आपकी आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन किया है, किन्तु तपस्या करने का संकल्प त्यागने में आपकी आज्ञा पालन कर सकने में अब स्वयं को असमर्थ अनुभव करता हूँ। क्या करूँ मैं विवश हूँ। मैं आपसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि कृपा कर मुझे तप करने जाने की सहर्ष आज्ञा दीजिए। हे पिताश्री! मैं आपके पैरों पड़ता हूँ एवं अब मुझे आपसे अन्य कुछ भी नहीं चाहिए। राज्य-धन-वैभव-कीर्ति एवं मान मुझे नहीं चाहिए, मुझे उनमें प्रतीति नहीं है। मुझे चाहिए तपस्या करने जाने के लिए केवल आपकी आज्ञा। क्या मैं आशा करूँ कि आप अनुकम्पा कर अपने प्रिय पुत्र को इस प्रकार की आज्ञा प्रदान कर उसकी मनोकामना को पूर्ण करेंगे? हे तात्! अब मेरा अंतिम प्रणाम है। आपका पुत्र विदा ले रहा है। आप सहर्ष आज्ञा दीजिए। अथवा पिताजी! अब मैं जाता हूँ।'

अभयकुमार के जाते ही महाराज श्रेणिक के पितृ-हृदय के धैर्य का बाँध टूट गया—वे फूट-फूट कर रुदन करने लगे। उनके नेत्रों से अश्रुओं की अविरल धारा प्रवाहित हो चली। पिता को अश्रुपात करते हुए छोड़ कर अभयकुमार माता के निकट आए, जिसने पालन-पोषण कर इतना योग्य बनाया था। अभयकुमार ने अपने मन में विचार किया कि यदि मैं अपनी माता से विदा ले कर नहीं जाऊँगा, तो उसका (माँ) हृदय क्षोभ से विदीर्ण हो जाएगा। अतः वे माता के निकट आ कर तपस्या करने

जाने की आज्ञा माँगने लगे। माँ का विशाल हृदय भी पुत्र के वियोगजनित दु:ख से, सन्तान की ममता से करुण क्रन्दन करने लगा। अभयकुमार किसी प्रकार माता को धीरज बँधा कर उसके निकट आए, जिसे संसार से अर्द्धाङ्गिनी का पद दे रखा है, किंतु वह पत्नी शब्द से अधिक सम्बोधित होती है। जिस समय अभयकुमार की प्राणप्रिया ने अपने पति के मुख से तपस्या करने की भावना सुनी, उस समय उसको अधीरता की कल्पना करना भी संभव नहीं है। उसके दु:ख की थाह लेना मानो समुद्र के अतल-तल में डुबकी लगाने के सदृश था। अभयकुमार बड़े प्रयत्न से ही अपनी विह्वल पत्नी को धीरत बँधा सके।

अब वे स्वतन्त्र हो गए, पारिवारिक बन्धनों से मुक्त हो गए। इस प्रकार अपनी पूर्ण यौवनावस्था में संसार के समस्त वैभव-सुखों के ऊपर ठोकर मार कर अपूर्व आत्म-सन्तोष से अभयकुमार ने गृह त्याग किया। क्या संसार में इस प्रकार का कोई अन्य उदाहरण मिल सकता है, जिसने जीवन के प्रभात काल में ही नहीं प्रचण्ड मध्याह्न में त्यागी का वेष धारण कर अपना आदर्श उदाहरण उपस्थित कर दिया हो? इस आर्य-भूमि को ही ऐसे-ऐसे उज्जवल रत्न प्राप्त हुए हैं, जिन्होंने अपने आदर्शों से समस्त विश्व को अभिभूत कर दिया है। ऐसे आदर्श महान् पुरुषों के बल पर ही आर्यावर्त्त का स्थान सृष्टि में सर्वोपरि है।

तत्पश्चात् गजराज पर आरूढ़ होकर अभयकुमार विपुलाचल की ओर बढ़ चले। उनके साथ गजकुमार भी थे। विपुलाचल पर ही भगवान महावीर का समवसरण विराजमान था। जिस समय अभयकुमार उसके समीप पहुँचे, तब वे गजराज पर से नीचे उतरे एवं समस्त राज-चिह्नों को त्याग कर समवसरण में प्रविष्ट हुए। तीर्थङ्कर भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा कर उन्होंने नमस्कार किया तथा उनकी स्तुति की। तब कुमार ने श्री गौतम गणधर को नमस्कार कर उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। वे उसी समय से अपने देह के वस्त्राभूषण त्याग कर अपने अनेक कुटुम्बियों के साथ उग्र तप करने में प्रवृत्त हुए। अभयकुमार त्रयोदश प्रकार के चारित्र का पालन करते हए ध्यानैकतान से मुक्ति की इच्छा कर परम पद की आराधना करने लगे। हे पाठकों! एक ही चित्र के दो पार्श्वों पर गौर कीजिए। कुछ काल पूर्व जो अभयकुमार संसार के सर्वोत्कृष्ट सुखों को भोगते हुए अपना सुखमय जीवन बिता रहे थे, जो पुष्पों के समान सुकोमल शैय्या पर शयन करते थे, वहीं योगी बन कर भोग के ऊपर लात मार कर पथरीली कर्कश भूमि की शैय्या पर आनन्द से शयन कर रहे हैं, जो शीत ऋतु में राजमहल के अन्दर कामनियों के साथ भोग-विलास कर वासनामय जीवन व्यतीत करते थे, वे ही शीत काल में सनसनाते हुए ठिठुरा देने वाले तीव्र वायु प्रवाह में नदी के तट पर ध्यानस्थ अचल हैं। जो ग्रीष्म ऋतु से सुगन्धित द्रव्यों से युक्त खस की टट्टियों तथा शीतल-जल की फुहारों की बहार लेते हुए राजमहल में सुख से रहते थे, वे ही ज्येष्ठ मास की

कड़ी धूप में पर्वत श्रृङ्ग पर रहते हैं। वर्षा-काल में राजमहल में निवास करनेवाले राजकुमार आज वृक्ष के नीचे रह कर राजमहल से अधिक सुख प्राप्त कर रहे हैं। बहुमूल्य वस्त्र धारण करने वाले कुमार दिगम्बर हो कर आनन्द के साथ तपस्या में लीन हैं। जो सुवर्ण के पात्रों में षटरस व्यंजन का भोजन करते थे, वहीं पाणिपात्र में प्राप्त भिक्षा का साधारण भोजन ग्रहण कर योग की सम्यक् साधना कर रहे हैं। जो एक डग भी बिना वाहन के पैदल नहीं चलते थे, वहीं कुश-कण्टकाकीर्ण भूमि पर ईर्या समितिपूर्वक पैदल चलने में उससे अधिक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। जो सतखण्डे महल के भीतर शयन करते थे, वहीं पर्वतों की कन्दरा में शयन कर महल से बढ़ कर सुख पा रहे हैं। जिनकी विद्वता की प्रशंसा करने में बड़े-बड़े प्रतापी राजा-महाराजा नहीं अघाते थे, वे ही अभयकुमार निरभिमानी मुनिराजों की प्रशंसा के पात्र हो रहे हैं। विषय-भोग का जीवन बितानेवाले राजकुमार ध्यान-तप में शुद्ध भावना का रसास्वादन कर रहे थे। राजमहल में सुन्दरियों की सुरीली तान का आनन्द लेनेवाले अभयकुमार श्मशान में श्रृगालों के विकृत नाद का आनन्द लेते थे। जो अपने परिवार में प्रिय पुत्रों के साथ कल्लोल किया करते थे, वहीं निर्भय वन में एकाकी विचरण में विशेष सुख पा रहे हैं। हे पाठकगण! देखा आप ने उस अभयकुमार को जिसने संसार के सर्वोत्तम राजसी सुख को त्याग कर लोक-अभ्यर्थना से मुख मोड़ कर त्यागी का बाना ग्रहण कर लिया।

मुनिवर अभयकुमार ने बहुत दिनों तक उग्र तपश्चरण एवं परिषह सहन द्वारा घातिया कर्मों के ऊपर विजय प्राप्ति की। उन्होंने शुद्ध ध्यान के प्रभाव से केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया। मुनिवर अभयकुमार ने दीर्घकाल तक विहार कर अन्त में अव्याबाध मोक्ष सुख की प्राप्ति की। उनके समकालीन अन्य तपस्वी अपने-अपने कर्म-विपाक के अनुसार स्वर्गादिक उत्तम गति में गए।

कुमार वारिषेण का वैराग्य

इधर महाराज श्रेणिक का यश तीनों लोक में फैल रहा था। वे जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान रखते हुए न्याय-नीतिपूर्वक प्रजा के ऊपर शासन कर रहे थे। उनका पुत्र वारिषेण भी जैन धर्म पर अटूट श्रद्धा रखता था। उसने त्रिकाल-व्रतादि के पालन द्वारा अपना जीवन धार्मिक बना लिया था। एक दिन उसने चतुर्दशी व्रत का अनुष्ठान किया। वह उस दिन निराहार (उपवास) रहा तथा रात्रि के समय वन में जाकर कायोत्सर्ग में ध्यानस्थ हो गया। उसी रात्रिकाल में एक ऐसी घटना घटी, जिसका उल्लेख कर देना परम आवश्यक है। सेठ श्रीकीर्ति की पत्नी के सुन्दर तथा बहुमूल्य कण्ठहार को देख कर एक गणिका उस

पर रीझ गई तथा उसे येन-केन-प्रकारेण प्राप्त करने के लिए ललचा गई। उस दैदीप्यमान अलङ्कार पर विमुग्ध हो कर वह अपने मन में विचार करने लगी कि यदि यह मनोज्ञ हार उसे नही मिल सका, तो उसका जीवन निष्फल है, अतः कोई युक्ति ऐसी लगाई जाए कि हार निश्चित रूप से हस्तगत हो जाए। इस प्रकार अपने मन में दृढ़ निश्चय कर वह शैय्या पर निद्रा-मग्न हो गयी। उस गणिका के ऊपर विद्युत नामक एक चोर का प्रगाढ़ प्रेम था। उसने गणिका के ऊपर अपना जीवन न्यौछावर कर दिया था। यह प्रत्येक रात्रि में उस गणिका के यहाँ आता था। जब विद्युत चोर उस रात्रि को समागम हेतु उस गणिका के यहाँ आया, तो उसे असमय में ही इस प्रकार निद्रा-मग्न देख कर ताड़ गया कि दाल में कुछ काला अवश्य है। विद्युत चोर ने गणिका को उदास देख कर प्रेमालाप द्वारा प्रसन्न करने का बहुविधि प्रयत्न किया, किन्तु गणिका ने मौन भङ्ग तक नहीं किया। तब वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा—'हे प्राणवल्लभे! आज तुम खिन्न क्यों हो? किसने तुम्हारे साथ धृष्टता का व्यवहार किया है? मुझ से अपने हृदय का विषाद शीघ्र कहो। हे प्रिये! मैं अधीर हो रहा हूँ।' उसके इस प्रकार अनुनय-विनय करने पर गणिका ने कहा—'हे प्रिय! यदि मैं तुझ से नहीं कहूँगी, तो किससे कहूँगी? भला तुम्हारे सिवाय मेरी चिन्ता कौन हरेगा, मेरी मनोकामना कौन पूर्ण करेगा? जब तुम जिज्ञासु हो, ते मैं कह रही हूँ। मैं सेठ श्रीकीर्ति की पत्नी का कण्ठहार चाहती हूँ। यदि वह आभूषण मुझे नहीं मिला, तो मेरी प्राणरक्षा होना कठिन है। इसी दिन के लिए ही मैं ने तुम्हारे साथ अनुराग रखा है। अब अगर तुम वह हार मुझे नहीं ला कर दोगे, तो मेरे विश्वास का क्या मूल्य रह जाएगा? सच जानो कि तुम्हें वह हार अवश्य लाना पड़ेगा? मेरा यह अटल निश्चय है।'

गणिका की कामना सुन कर विद्युत चोर उसी समय सेठ के यहाँ हार चुराने के लिए गया। अपने विलक्षण कौशल से सेठानी की ग्रीवा से हार चुरा कर वह निरापद निकल आया। विद्युत चोर हार को हाथ में ले कर पथ पर चलने लगा। तभी नगर कोटपाल की दृष्टि उसके कर (हाथ) में दैदीप्यमान कण्ठहार पर पड़ी। अनुभवी कोटपाल को उसकी गतिविधि सन्देहास्पद लगी। इस प्रकार उसने तत्क्षण ही भाँप लिया कि यह एक चोर है, जो किसी का बहुमूल्य आभूषण चुरा कर लाया है। उसने उच्च स्वर में विद्युत चोर को ललकारा। अपराधी में भला साहस कहाँ? विद्युत चोर भाग निकला। कोटपाल ने उसका पीछा किया। अब विद्युत चोर समझ गया कि कण्ठहार ले जाना सम्भव नहीं है। वह बेतहाशा दौड़ता हुआ निकट की श्मशान भूमि में चला आया। किन्तु वहाँ पहुँच कर उसकी सारी हिम्मत समाप्त हो गयी। उसे पलायन का मार्ग कहीं न मिला। पर चोर अपनी तात्कालिक बुद्धि के लिए प्रसिद्ध होते ही हैं। ध्यानस्थ वारिषेण की ग्रीवा में कण्ठहार डाल कर वह एक ओर छिप गया। इतने में नगर का कोटपाल हाँफता हुआ वहाँ आ गया। कोटपाल ने वहाँ किसी को भागते हुए न देख कर समझा

कि यह ध्यानस्थ पुरुष ही चोर है एंव यहाँ आकर अपनी रक्षा के लिए स्वाँग रच रहा है। कुमार की ग्रीवा में पड़े हुए कण्ठहार देख कर कोटपाल उनके समीप गया तथा फिर तो उसने उन्हें पहचान भी लिया। कोटपाल ने महाराज श्रेणिक के निकट जाकर निवेदन किया—'हे अन्नदाता! जब स्वयं आपके राजकुमार ने चोरी की हो, तब अपराधों के उन्मूलन का प्रयास करना भी व्यर्थ है।' महाराज श्रेणिक कोटपाल की असम्भव उक्ति सुन कर आश्चर्यचकित रह गए। वे अपने मन में सोचने लगे कि कोटपाल का कथन सत्य नहीं है, किन्तु बिना परीक्षा किये कैसे निर्णय हो कि सत्य क्या है? महाराज श्रेणिक कोटपाल के साथ श्मशाम भूमि में जा पहुँचे। किन्तु वहाँ का दृश्य ही परिवर्तित हो चुका था। सुवर्ण का बहुमूल्य कण्ठहार पुष्पों की मनोरस माला बन कर कुमार की ग्रीवा को सुशोभित कर रहा था। अब कोटपाल का कथन असत्य सिद्ध हो गया। इस अपूर्व देवकृत चमत्कार से अनभिज्ञ महाराज श्रेणिक कोटपाल की निन्दा करने लगे। कोटपाल को तो मानो काठ मार गया हो। वह हक्का-बक्का रह गया। उसकी वाणी ही लुप्त हो गयी। महाराज श्रेणिक ने कोटपाल से कहा—'तुमने राजकुमार वारिषेण के ऊपर जो मिथ्या कलङ्क लगाया है, उसके लिए क्षमा-याचना करो।' विद्युत चोर सम्पूर्ण घटनाचक्र देख रहा था। उसने प्रकट हो कर सारा चमत्कारिक वृत्तान्त महाराज श्रेणिक से कह सुनाया तथा क्षमादान की प्रार्थना की। महाराज श्रेणिक ने कुमार वारिषेण से राजमहल चलने के लिए कहा, किन्तु राजकुमार ने करबद्ध निवेदन किया—'हे पिताश्री! अब मेरा गृह लौटना असम्भव है। मैं ने दिगम्बरी दीक्षा धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली है। अतः मैं उसका अवश्य पालन करूँगा। मुझे राजमहल के भोग-विलास नहीं चाहिए। मैं पाणि (भिक्षा)-पात्र में भोजन कर मुनि-व्रत का पालन करूँगा।' राजकुमार के दृढ़ वचन सुन कर महाराज श्रेणिक ने उन्हें लौट चलने के लिए बहुत-कुछ समझाया, किन्तु वे टस-से-मस नहीं हुए। उन्होंने मुनि सूर्यदेव के निकट जाकर मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली। तेरह प्रकार के चारित्रों का पालन कर उन्होंने सम्यग्दर्शन धारण कर लिया। मुनि वारिषेण ने अपने अनेक शिष्यों को हितकारी उपदेश देते हुए दीर्घकाल तक पृथ्वी पर विहार किया। जब उनकी आयु स्वल्प रह गयी, तब उन्होंने रत्नत्रय-युक्त हो कर सन्यास ग्रहण कर लिया। उन्होंने समाधि में ध्यानस्थ होकर अपने प्राण त्यागे। मरणोपरान्त मुनि वारिषेण स्वर्ग में ऋद्धि-सिद्धि धारी देव हुए।

महाराज श्रेणिक कारागृह में

एक दिन महाराज श्रेणिक ने अपने मन में विचार किया कि अब धर्म का मार्ग ग्रहण करना चाहिए। उन्होंने समस्त अधीनस्थ राजाओं को बुलवा कर अपने हृदय की अभिलाषा प्रकट की। महाराज श्रेणिक के प्रस्ताव पर समस्त सभासदों ने

अपनी सहमति प्रकट कर दी। महाराज श्रेणिक ने अपने वचनानुसार अब पटरानी चेलना से उत्पन्न ज्येष्ठ कुमार कुणिक को राज्य-भार सौंप दिया। राज्याभिषेक होने के पश्चात् महाराज कुणिक ने अपनी प्रतिभा एवं पराक्रम से इस धराधाम पर से चोरी आदि दुष्कृत्यों का मानों उन्मूलन ही कर दिया था। अपने सुशासन से सम्पूर्ण प्रजाजन को हर्षित करते हुए महाराज कुणिक आनन्दपूर्वक राज्य-वैभव का उपभोग करने लगा। लेकिन पूर्व कृत कर्मों के प्रभाव से किसी को क्या त्राण मिल पाया है? फलतः एक दिन महाराज कुणिक को उसके पूर्व-भव का स्मरण हो आया, जिसके परिणामस्वरूप वह अपने पिता (पूर्व-भव के प्रबल शत्रु) के प्रति प्रचण्ड बैर-प्रतिशोध की दुर्भावना से ग्रसित हो गया। किसी ने सत्य ही कहा है—'प्रभुता पाई काहि मद नाहीं।' उस अधम कुणिक ने अपने जनक (पिता) को काष्ठ के पिंजरे में बन्दी बना लिया। जब राजमाता चेलना को इस लज्जाजनक घटना का ज्ञान हुआ, तब अपने ही तनय द्वारा पति की दुर्दशा पर उसे दारुण सन्ताप हुआ। उसने कुणिक को समझाने का यथासम्भव प्रयास किया, किन्तु उस नीच के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। माता का परामर्श शिरोधार्य करना तो दूर रहा, अपनी उद्दण्डता में उसकी भी अवमानना की! इधर घोर लज्जा एवं पश्चाताप की दावाग्नि में चेलना निमग्न थी, उधर नरश्रेष्ठ श्रेण्कि काष्ठ के पिंजरे में बन्दी होकर असहायावस्था में दारुण कष्ट भोग रहे थे। इस दुरवस्था में उन्हें अपने पूर्व-कृत्यों का स्मरण कर उनके औचित्य-अनोचित्य पर चिन्तन-मनन करने का सुवर्ण अवसर अनायास ही सुलभ हो गया।

महाराज श्रेणिक का देह त्याग

एक दिन अनाचारी कुणिक जब भोजन कर रहा था, तभी उसके शिशु ने उसमें मूत्र-त्याग कर दिया। शिशु अभी अबोध था, साथ ही कुणिक के नयनों का तारा भी। फलतः इस कृत्य से कुणिक को कोई ग्लानि का अनुभव नहीं हुआ तथा वह निरन्तराय हर्षपूर्वक अपना भोजन करता रहा। इसे अपने प्रिय पुत्र की बाल-लीला समझ कर वह फूला नहीं समा रहा था। इसी अन्तराल में उसकी माता चेलना भी वहाँ आ गयी। कुणिक ने सगर्व अपनी माता से जिज्ञासा की—'क्या उसके सदृश सन्हेशील कोई अन्य पिता है सृष्टि में जो अपने पुत्र से इतना उत्कट प्रेम करता हो?' माता चेलना ने उसे धिक्कारते हुए कहा—'हे पुत्र! यह तेरा सर्वथा भ्रम है। सभी अपने पुत्र को प्राणों से बढ़ कर प्रेम करते हैं। तुम्हारा वात्सल्य किसी भी दृष्टि से अप्रतिम नहीं है। स्वयं तुम्हारे जगत्प्रसिद्ध प्रतापी पिता के कितने पुत्र थे, जिनमें अभयकुमार तो असाधारण योग्यता के धारी थे। फिर भी वे तुम से विशेषतः जितना प्रेम करते थे, वह अकथनीय है, अवर्णनीय है, अतुलनीय है। इसको प्रमाणित

करने के लिए मैं एक छोटी-सी घटना का स्मरण करा रही हूँ। बाल्यावस्था में एक समय व्रण (घाव) विषाक्त होने से तुम्हारी अँगुली में पीव भर गयी थी तथा उसकी असह्य पीड़ा से तुम्हें मर्मान्तक कष्ट का अनुभव हो रहा था। उसकी दुर्गन्ध के कारण कोई भी तुम्हारे समीप नहीं आना चाहता था। कुशल वैद्यों ने यथासम्भव चिकित्सा की, किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। तुम्हारी असह्य पीड़ा का ज्ञान होने पर तुम्हारे पिता ने स्वयं तुम्हारी अँगुली चूस-चूस कर पीव निकाल दी, जिससे तुम्हें धैर्य बँधा एवं शनैः-शनैः आरोग्य लाभ हुआ।'

अपनी माता से यह सब सुन कर भी दुराग्रही कुणिक ने प्रश्न किया—'यदि मेरे पिता का मुझ पर ऐसा अनन्य वात्सल्य-भाव था, तो जन्म के संग ही सब नीति-धर्म विस्मृत कर उन्होंने मुझे निरीह शैशवावस्था में भयङ्कर वन-प्रान्तर में क्यों छुड़वा दिया था? हे माता! क्या यही पितृ-स्नेह का आदर्श उदाहरण है?' तब माता चेलना ने अवरुद्ध कण्ठ से उत्तर दिया—'हे पुत्र! अनजाने में तुम ने कहीं-से यह भ्रान्त-धारणा बना ली है। अवश्य किसी छदमवेषी शत्रु ने तुम्हें बहकाया होगा कि महाराज श्रेणिक ने तुम्हें फिंकवाया। यह सर्वथा मिथ्या है—इस से बढ़ कर असत्य भला अन्य क्या हो सकता है? तुम्हारे जन्म के समय उत्पन्न दोहद तथा जन्मोपरान्त भयोत्पादक चेष्टाओं को देख कर मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि तुम भविष्य में अपने पिता के कराल शत्रु सिद्ध होंगे। अतः अपने सुहाग की मङ्गल कामना हेतु मैंने तुम्हें गुप्त रूप से घोर वन-प्रान्तर में छुड़वा दिया था। पर जब तेरे पिता को उस घटना का ज्ञान हुआ, तब मोहवश उन्होंने अनुचर भेज कर तुझे वन से वापिस मँगवा लिया। उन्होंने ही तेरे लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर तुम्हें वीर एवं मेघावी बनाया। यदि उन्हें तुम से लेश-मात्र भी द्वेष होता, तो अपने विशाल राज्य का एकछत्र अधिपति तुम्हें की क्यो बनाते? मुझे आशा है कि तुम्हारा सन्देह अब निर्मूल हो गया होगा। वे न केवल अपने समस्त पुत्रों में से तुम पर सर्वोपरि अनुराग रखते थे, वरन् तुम्हीं उनकी आशा-आकांक्षा के एकमात्र अवलम्ब थे। किन्तु तुमने उनसे कैसी अनुपम कृतज्ञता प्रकट की है—पशुवत् पिजरे में बन्दी बना कर। मेरे इस कथन का सर्वदा स्मरण रखना कि कुकृत्यों का परिणाम सदैव कष्टपूर्ण होता है। आज तुम अपने पिता को सता रहे हो, तो क्या आगे चल कर तुम्हारा पुत्र तुम्हें दुःख न देगा? तुम अपने मन में यह निश्चय कर लो—

करे बुराई सुख चहे, कैसे पावे कोय। रोपे पेड़ बबूल को, आम कहाँ से होय।।

क्या तुम समझते हो कि निरपराधों को सता कर तुम सुख-शान्ति से रह सकोगे, यह असम्भव है। जैसी करनी, वैसी भरनी—यह निश्चित है। हे पुत्र! क्या तुमने कभी भी अपने हृदय में विचार किया है कि जिस उदार एवं महान् पिता ने तुम्हारा

पालन-पोषण कर इस योग्य बनाया तथा अपना सारा वैभव तुम्हें प्रदान किया, अपने अन्य पुत्रों के होते हुए भी तुम्हें राजा बनाया, उसी प्रातः-स्मरणीय पिता को कष्ट दे-देकर उपकार का प्रतिशोध अपकार से दे रहे हो? क्या पिता के प्रति तुम्हारा यही कर्त्तव्य है? तुम यह निश्चय जानो—जो व्यक्ति अपने अन्तस्तल की गहराई से अपने पूज्य तिपा के प्रति श्रद्धा-भाव रखते हैं, वे ही राज्य के प्रदाता को उससे अधिक पूजते हैं तथा विद्या दान देने वाले को वे सर्वश्रेष्ठ श्रद्धा का पात्र समझते हैं। किन्तु तुम क्षणमात्र अपने पाषाण-हृदय पर हाथ रख कर शान्तिपूर्वक विचार करो कि यह तुम क्या कर रहे हो—न्याय या अन्याय? तुम्हारे इस अन्याय के लिए सभी तुम्हें पापी कहेंगे, अत्याचारी की पदवी देंगे तथा अपशब्द कहेंगे अर्थात् सभी तुम्हें धिक्कारेंगे। हे पुत्र! अभी भी समय है, सम्भल जाओ। परोपकार करना मनुष्य का कर्तव्य है। यों तो स्वभाव से ही उत्तम पुरुष सदा अपने हृदय में उपकार का भाव रखते हैं, पर यदि कोई उपकार करे, तो उसके प्रति प्रत्युपकार का भाव रखना उनका प्रधान कर्त्तव्य हो जाता है। जो प्राणी अपने साथ उपकार करने वालों के प्रति कृतघ्नता दर्शाते हैं, वे अधम कहलाते हैं। ऐसे ही लोग नरक के भागी होते हैं। कृतघ्नता प्रदर्शित करनेवालों की सभी निन्दा करते हैं। जो अपने उपकारी के प्रति कृतघ्नता का भाव रखता है, वह निन्दा का पात्र बनता है। पुत्र होकर अपने पिता को बन्धन में रखे, इससे बढ़ कर दुःख का विषय क्या हो सकता है? तुम ने अपने पिता को बन्दी बना कर महापाप तथा अत्याचार का कार्य किया है। अतः तुम शीघ्र ही जाकर अपने पिता को बन्धन-मुक्त करो।'

अपनी माता के मर्म-भेदी वचन सुन कर राजा कुणिक के ज्ञान-चक्षु जाग्रत हुए। अपने स्नेही पिता के ऊपर स्वयं-कृत क्रूर अत्याचार की मन-ही-मन मीमांसा करने पर राजा कुणिक ने अपने मन में विचार किया—'हाय! मैं ने अपने पूज्य पिताश्री के ऊपर अत्याचार कर निकृष्टतम श्रेणी की नीचता की है तथा घोर पाप का भागी बना हूँ। हा! अब इस पाप से मुक्ति असम्भव है।' इस प्रकार विचारते हुए उसने अपने पिता को मुक्त करने हेतु बन्दीगृह की ओर प्रस्थान किया।

महाराज श्रेणिक ने आत्महत्या की

जब महाराज श्रेणिक ने अपने क्रूर पुत्र कुणिक को अपनी ओर आते देखा, तब से अज्ञात भय से सिहर उठे। वे विचारने लगे—'यह दुष्ट फिर क्यों आ गया? सम्भव है कि यह मेरे ऊपर कोई नवीन अत्याचार ढाहेगा। हाय! इसकी क्रूरता की पराकाष्ठा हो गई है। पर क्या करूँ, विवश हूँ। अब इसका नवीन अत्याचार मुझे से सहा नहीं जायेगा। वैसे भी इसकी क्रूरता से त्राण के लिए एक ही उपाय है—प्राणत्याग। मै इस देह को त्याग कर इसके कारागार से सदा के लिए परित्राण पा सकता

हूँ, अन्यथा यह दुष्ट मुझे बारम्बार सताया करेगा।' इस प्रकार अपने मन में अत्यन्त दु:खी होकर महाराज श्रेणिक ने खड्ग की धार पर अपनी ग्रीवा पटक कर आत्म-हत्या कर ली। उनके प्राण-पखेरू उड़ कर प्रथम नरक में जा पहुँचे।

जिस समय राजा कुणिक अपने पिता के पास पहुँचे तथा उन्हें इस प्रकार भू-लुण्ठित एवं मृतक पाया, तब वह उच्च स्वर में विलाप करते हुए भूमि पर गिर पड़ा। उसके सन्ताप का पारावार नहीं था। वह विलाप करता हुआ कहने लगा—'हा पिता! हा नाथ! हा कृपासिंधु! हा देव! हा प्रजापालक! हा शुभमते! हा जगत बन्धु! हा ज्ञाननिधि! हा अशरण शरण! हा महाराज! आपने यह क्या किया? आप के सदृश ज्ञानी पुरुष तो इस प्रकार अपने प्राण नहीं त्यागते।' राजा कुणिक तो विलाप कर ही रहे थे; इतने में चेलना, नन्दश्री, प्रभृति महाराज श्रेणिक की रानियाँ भी आकर हाहाकार करने लगी। उनके नेत्रों से अविरल अश्रु-धारायें प्रवाहित हो चलीं। उन्होंने अपने केश उन्मुक्त कर कंकण तथा हार उतार कर फेंक दिये, माँग का सिन्दुर पोंछ दिया। इस प्रकार उन्होंने वैधव्य के चिह्न धारण कर लिये। रानी नन्दश्री तथा अन्य रानियाँ इस प्रकार विलाप करने लगीं—'हाय प्राणनाथ! हमें छोड़ कर आप कहाँ चले गये? हा! आपके बिना अब हमारा जीवन निरर्थक है। अब हम किसकी शरण में रहेंगी? आज हम आपके बिना निराधार हो रही हैं। हा नाथ! हा जीवनाधार! आपके वियोग में हमारी कौन-सी गति होगी?' इस प्रकार करुण क्रन्दन कर वे समस्त रानियाँ गगन को प्रकम्पित कर रही थीं, जिसे सुन-सुन कर सब का हृदय दु:ख से फटा जा रहा था। राजा कुणिक ने अपने पिता महाराज श्रेणिक का राजकीय सम्मान से विधिवत दाह-संस्कार किया। उन्होंने महाराज श्रेणिक की उत्तम गति की अभिलाषा से अपने व्रतरहित ब्राह्मणों को गौ, गज, अश्व, सम्पत्ति, भूमि तथा अन्य वस्तुयें दान देकर अपनी मूढ़ता (मिथ्याज्ञान) का परिचय दिया।

रानी चेलना ने वैराग्य धारण किया

कालान्तर में एक दिन रानी चेलना के हृदय में संसार के प्रति वैराग्य भाव का उदित हो गया—'संसार में कौन किसका होता है? सब स्वार्थ के संगी होते हैं। सब अपने हित की साधना में लीन हैं। पिता-पुत्र-भ्राता स्त्री-पति का नाता स्वार्थ की भित्ति पर स्थापित हुआ है। जब तक स्वार्थ है, तभी तक सबका अनुराग है। जिस क्षण स्वार्थ नहीं, उस समय प्रीति की समाप्ति समझो। इस असार संसार में धन-यौवन इत्यादि जितने इन्द्रियजन्य सुख हैं, वे सब जल के बुलबुले सदृश क्षणभंगुर हैं। विषय-भोग अग्नि-ज्वाला के सदृश सदैव अतृप्त बना सकता। जिस प्रकार अग्नि में ईंधन डालने से वह प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार भोग में लिप्त रहने से उसकी लालसा घटने के स्थान पर उग्रतर हो जाती है। भोग-सेवन से इन्द्रियाँ

को भी तृप्ति नहीं होती। इसीलिए पूर्वकाल में श्रेष्ठ एवं महान पुरुषगण विषयभोग-पुत्र-धन-परिवार का मोह बन्धन तोड़ कर मुक्त हो गए हैं तथा इस समय भी मुक्त हो रहे हैं एवं भविष्य में भी मुक्ति जायेंगे। एक मैं हूँ जो पुत्रादिकों के मोह में फँस कर घर में बन्दी रहूँ, यह अब आगे नहीं चल सकता। प्रकाण्ड विद्वानों का कथन है कि सर्वदा भोग-वासना में लिप्त रहने से पाप की उत्पत्ति होती है। अन्त में मनुष्य पाप-कर्म करते-करते नरकगामी होती है। नरक में उसे असह्य दु:ख होता है। जो स्त्रियाँ पर-पुरुषों के साथ व्यभिचार करने की कामना रखती हैं, उन्हें नरक में तपाये हुए लाल लोहे की पुतलियों से सङ्गम करना पड़ता है। इसी प्रकार जो पुरुष पर-नारी के साथ दुराचार करते हैं, उन्हें भी जलती हुई लोहे की नारी प्रतिमा के साथ आलिङ्गन करना पड़ता है। नरक में पापियों की जैसी दुर्दशा होती है, उसका वर्णन यहाँ असम्भव है। यहाँ पर जो व्यक्ति मद्यपान करते हैं, जब उनका जीव नरक में जाता है, तब उन्हें पिपासा शान्ति हेतु लोहा गला कर दिया जाता है। वे चीत्कार करते हैं, विलाप करते हैं; मगर उनकी पुकार निष्फल होती है। बिना छाने हुए जल से स्नान करनेवाले जीवों को नरक में जाकर खौलती हुई तेल की कढ़ाई में उबलना पड़ता है। यहाँ पर जो पापी परनारियों के उरोज का स्पर्श अपने अपवित्र कर (हाथ) द्वारा करते हैं, वहाँ (नरक में) उनके ऊपर भयङ्कर शस्त्रों का प्रहार होता है। नरक में जाकर जीव परस्पर सदैव कलह करते रहते हैं। इस प्रकार वहाँ पर जीवों की भयङ्कर दुर्दशा होती है। नरक में सुख कहाँ, वहाँ तो दु:ख-ही-दु:ख है। वहाँ तिर्यन्चों को भूख-प्यास की पीड़ा को सहन करना होता है। उनके ऊपर असह्य बोझ का भार लादा जाता है, जिससे वे त्राहि-त्राहि कर चीत्कार करते हैं। नरक में जितने तिर्यन्च भी होते हैं, वे एक-दूसरे को सताया करते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक तिर्यन्च दूसरे को पकड़ कर उसका भक्षण कर लेता है, तब भी निर्बल तिर्यन्च को दु:ख भोगने से मुक्ति नहीं मिलती—उसे दु:ख भोगना ही पड़ता है। मनुष्य-योनि में जब किसी का सम्बन्धी मर जाता है, तब उसे भी दारुण शोक का सामना करना पड़ता है। दारिद्र अवस्था में कितनी असह्य पीड़ा होती है, उसी प्रकार से देवगति में मानसिक क्लेश सहन करना पड़ता है। संसार में दुष्ट भी दु:ख दिया करते हैं। मनुष्य ही क्या देव तक अपनी देवांगना के वियोग में कष्ट उठाते हैं। कितने ऐसे दुष्ट (व्यन्तर) देव होते हैं, जो कष्टकारक होते हैं। अतः यह संसार दु:खों की जड़ है, जिसमें चतुर्गतियों में भ्रमण करना पड़ता है। यहाँ शाश्वत सुख की काया तो क्या छाया तक का आभास नहीं होता।'

रानी चेलना के हृदय में इस प्रकार संसार के विषय-भोगों से पूर्णरूपेण विराग-भाव उत्पन्न हो गया। वह तत्काल ही भगवान महावीर के समवसरण में गयीं। उन्होंने भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् भगवान की पूजा कर श्रद्धा से उनकी स्तुति की। तीर्थङ्कर भगवान के मुख से यति-धर्म का उपदेश सुन कर रानी चेलना चन्दना नामक आर्यिका-प्रमुख

के निट गयी। उसने भक्ति-भाव से आर्यिका को नमस्कार कर उनसे संयम व्रत की दीक्षा ले ली। रानी चेलना ने अन्य कई रानियों के संग दीर्घ अवधि तक घोर तपस्या की। अपनी आयु के अन्तिम काल में उसने संल्लेखना ग्रहण कर ली। सम्यग्दर्शन के प्रताप से उसने ध्यानस्थ अवस्था में प्राण-त्याग कर महान् ऋद्धि-धारी देव का पद प्राप्त किया। उसका जीव स्वर्ग का सुख भोग कर अन्त में मोक्षधाम जायेगा। अन्य तपस्विनी रानियाँ अपनी-अपनी तपस्या के योग्य विविध स्थान (योनि) में गयी। महाराज श्रेणिक का जीव सप्तम नरक के पाप का बन्ध करने पर भी 'रत्नप्रभा' नामक प्रथम नरक में गया। वहाँ उनका जीव अपने पूर्व-भव के पाप का स्मरण कर शान्तिपूर्वक समय व्यतीत करने लगा। जिस समय वे चौरासी हजार वर्ष पर्यंत नरक का दु:ख भोग लेंगे, उसके पश्चात् तीर्थङ्कर होंगे। अंतः में अपने समस्त कर्मों का नाश कर वे परम सिद्ध पद प्राप्त कर लेंगे।

पंचदश अध्याय

रवि समान ही सकल तत्व की ज्योति जगानेवाले। पदमनाभ भगवान कभी तीर्थङ्कर होनेवाले।।
नमस्कार कर उन चरणों में, श्रद्धा-सुमन चढ़ाता। शुभ कल्याण पंच-वर्णन में, मैं तो नहीं अघाता।।

उत्सर्पिणी काल के एक हजार वर्ष व्यतीत हो जााने पर चौदहवें कुलकर 'मनु' जन्म धारण करेंगे। वे प्रकाण्ड विद्वान तथा परम विवेकी होंगे। उनके बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों से समस्त प्रजाजनों में शुभ कार्यों के सम्पादन की प्रवृति का प्रसार होगा। उनके उपरान्त प्रजा का पालन करेंगे अन्ति कुलकर महापदम, जो उस काल खण्ड में होनेवाले आदि (प्रथम) तीर्थङ्कर पदमनाभ के पिता होंगे। उन (महापदम) की पूजा समस्त देवगण करेंगे। वे शुभकर्ता, विविध गुणों के भण्डार एवं अपने ज्योति-प्रताप से अज्ञान-अन्धकार का नाश करनेवाले होंगे। कुलकर महापदम के मुख की ज्योति के सम्मुख चन्द्रमा श्रीहीन प्रतीत होगा, नक्षत्रगण आभा में उनके नेत्रों से परास्त हो जायेंगे, उनका विस्तृत वक्षस्थल पाषण से भी सुदृढ़ होगा। उनकी दन्तावली कुन्द पुष्प को तथा उनकी दोनों भुजायें शेषनाग को लज्जित कर देंगी। अनेकों नृपति उनकी वन्दना करेंगे। वे रूप-यौवन'गुण-स्वभाव-यश आदि में अप्रतिम होंगे। उनके रूप के समक्ष स्वयं कामदेव भी म्लान हो जाएगा। उनकी ऐश्वर्य-विभूति देवोपम होगी। उनकी देह की कान्ति सूर्य के सदृश होगा। इन्द्र उनके निवास हेतु कुबेर से मनोरम एवं ऐश्वर्य युक्त अयोध्या नामक नगरी का निर्माण करायेंगे। उस नगरी की शोभा अनुपम होगी, जिसकी समता केवल स्वर्ग की अमरावती से ही की जा सकेगी। वहाँ के भव्य प्रसाद एवं प्रशस्त राजपथ देवों के महलों तथा विमानों से स्पर्द्धा करेंगे।

परन्तु वहाँ के नागरिक अपने गुणों एवं तेज में देवगणों को भी पराभूत करेंगे, जब कि नारियाँ अपने शील एवं सौन्दर्य

से देवांगनाओं को पराजित करेंगी। वहाँ के नृपति एवं वृक्ष स्वर्गलोक के देवेन्द्र एवं कल्पवृक्षों को अपने सम्मुख श्रीहीन कर देंगे, जब कि वहाँ की रूपसियों के मुख-कमल के समक्ष स्वयं चन्द्रमा कान्तिहीन प्रतीत होगा। उन सुन्दरियों के नख एवं नेत्रों की तुलना में नक्षत्र तथा पदमपुष्प म्लान प्रतीत होंगे, जब कि उनकी मन्थर गति गजगामिनी की उपमा को भी निष्प्रयोजन सिद्ध करेगी। वहाँ गगनचुम्बी प्रसादों के उत्तुङ्ग शिखरों पर फहराती पताकायें मानो चन्द्रमा का ही स्पर्श करने को उत्सुक हैं। सारांश यह कि उस आयोध्या नगरी की छटा का वर्णन हमारी लेखनी की क्षमता से परे है।

तत्पश्चात् इन्द्र की आज्ञा से कुबेर उसमें एक मनोहर राजप्रसाद निर्मित करेंगे; जिसमें परम चतुर, सुन्दर एवं अनेक राजाओं द्वारा पूजित कुलकर महापदम रहेंगे। वे सप्त-हस्त प्रमाण उच्च देहधारी होंगे। उनकी पत्नी का नाम सुन्दरी होगा, जो यथा नाम तथा रूप होगी। वह पदमपुष्प के सदृश सौन्दर्य में स्वयं रति से होड़ ले रही होगी। उसका केश-विन्यास अपूर्व होगा। उसके पदममुख की सुगन्ध पर रसपान करने के लिए लोलुप भ्रमर चतुर्दिक मँडराया करेंगे। उसके शीश पर रत्नजड़ित दैदीप्यमान चूड़ामणि इस प्रकार शोभेगी, मानो स्वयं प्रकृति ही नारी जाति का विजयघोष कर रही हो। उसके विशाल नेत्र मृगी के सदृश होंगे, भौहों के मध्य 'ॐ' शब्द अत्यन्त मनोज्ञ प्रतीत होगा। उसकी शुभ्र दन्तावलि मोतियों की समता करेगी, जब कि नासिका शुक की एवं ओष्ठ पत्र-पल्लवों की। रत्नहारों से उसके वक्षस्थल की शोभा द्विगुणित होजाएगी, मानो प्रकृति ने उसके सुवर्ण कमल सदृश उरोज युगलों की रक्षा हेतु स्वयं नागराजों का आयोजन किया हो। उसके करकमलों में शोभ रहे कंकणों की छटा अपूर्व होगी। संक्षेप में प्रकृति ने उसकी देह-यष्टि की रचना मानो अखिल सृष्टि में सौन्दर्य की दिग्विजय हेतु ही की हो।

उसकी सम्पूर्ण काया ही मानो एक गजराज हो। उसके शीश का उन्मुक्त केशजाल कामीजनों के चित्त को लुब्ध करने हेतु क्रीड़ाभूमि सदृश होगा एवं नाभि सरोवर की समता करेगी। उसके पृथुल उरोजों के प्रसार से उसका कटि-प्रदेश क्षीण होकर ऐसा प्रतीत होगा, जैसे दो विरोधियों के मध्य पंच की दुर्दशा हो रही हो। उसकी सुचिक्कण जघायें केले के धड़ की समता करेगी एवं कामीजनों के चित्त हरण हेतु कामदेव के युगलशरों का प्रयोजन सिद्ध करेंगी। उसके चरण तथा नख अनेक रत्नालङ्कारों से विभूषित एवं अनेक गुणों से परिपूर्ण होंगे। वास्तव में प्रकृति उसकी रचना में अपने अपूर्व कला-कौशल का प्रदर्शन करेगी। उस सुन्दरी के मुख, नेत्र, दन्तावलि, ओष्ठ, भुजा तथा उर-प्रदेश क्रमशः चन्द्र, पदम, मूँगे, बिम्बाफल, शाखा एवं सुवर्ण तटों की समता करेंगे। उसके उरोज सुवर्ण घटों को परास्त करेंगे, जब कि उसके चरण पदम-पत्रों को।

वह सुन्दरी स्वयं सरस्वती के सदृश अलंकृत होगी, उसी के सदृश प्रतिभा-सम्पन्न एवं गुणवती होगी तथा होगी वैसी ही निर्दोष एवं निष्कलङ्क। वह सरस्वती के समान सुडौल, लावण्यमयी एवं अपूर्व रूपवती होगी। वह गज की गति, कोकिल की मधुर वाणी एवं मृगी के समान मनोज्ञ नेत्रवाली होगी। उसके मुख की शोभा चन्द्रमा से बढ़ कर होगी।

जिस समय उसकी कुक्षी से तीर्थङ्कर भगवान का जन्म होगा, उससे छह मास पूर्व ही कुबेर रत्नों की वर्षा करेंगे। माता की सेवा हेतु इन्द्र छप्पन दिक्कुमारियों को भेजेंगे। वे कुमारियाँ महाराज महापदम को नमस्कार कर राजमहल में प्रविष्टि होंगी। इसके पश्चात् एक रात्रि में माता 'सुन्दरी' निम्नलिखित स्वप्न देखेंगी, जिनकी तालिका दी जाती है–(१) श्वेत गजराज–जिसके मस्तक से मद झर रहा हो, (२) सुदृढ़ स्कन्ध-वाला वृषभ जो उच्च-स्वर में हुँकारता हो, (३) गजराज के मस्तक को विदीर्ण करता हुआ सिंह, (४) दुग्ध में स्नान करती हुई लक्ष्मी, (५) भ्रमरों से युक्त युगल मालायें, (६) पूर्णिमा का चन्द्र, (७) तिमितर-नाशक सूर्य, (८) जल में स्नान करते हुए दो मत्स्य, (९) दो उत्तुङ्ग कलश, (१०) पदमों से युक्त सरोवर, (११) मत्स्य-राशि एवं रत्नों से युक्त अगाध समुद्र, (१२) मणियों से जड़ित सिंहासन, (१३) देव विमान–जिसमें अनेक देव-देवांगनायें हों, (१४) नागेन्द्र का भवन, (१५) रत्नों की राशि एवं (१६) निर्धूम अग्नि।

इसके पश्चात् माता सुन्दरी स्वप्न में देखेंगी कि उनके मुख से एक विशाल गजराज प्रविष्ट हो रहा है। जिस प्रकार प्रभात की प्रथम वेला में प्राची दिशा की ओर सूर्य का उदय होता है; उसी प्रकार वीणा, शङ्ख, मृदङ्ग आदि वाद्यों के निनाद का श्रवण करते हुए माता अपनी सुख-शैय्या त्याग कर उठेंगी। तत्पश्चात् वे (रानी सुन्दरी) स्नान तथा सोलहों श्रृङ्गार कर तथा बत्तीस प्रकार के आभूषणों से युक्त होकर अपने प्रिय पति राजा महापदम के पास जायेंगी। वह राजसिंहासन पर वाम पार्श्व में विराजमान हो कर निवेदन करेंगी–'हे प्राणनाथ! मैं ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में जो स्वप्न देखें हैं, कृपया उनका फल कहिए।'

रानी के मधुर वचन सुन कर राजा इस प्रकार कहेंगे–'हे प्राणप्रिये! तुम्हारे शुभ स्वप्नों का फल इस प्रकार है, ध्यानपूर्वक सुनो। (१) गजराज के देखने से तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी, (२) वृषभ के दर्शन से तुम्हारा प्रतापी पुत्र धर्म का प्रचारक होगा, (३) सिंह देखने का फल है कि वह अनन्त वीर्यवान होगा, (४) युगल मालायें देखने से वह धर्मतीर्थ का प्रवर्त्तक होगा, (५) देवगण उसे सुमेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीर समुद्र के जल से अभिषेक करायेंगे, (६) चन्द्रमा के दृष्टिगोचर होने का यह फल है कि तेरा पुत्र समस्त जगत को आनन्द का प्रदाता होगा, (७) सूर्य देखने का फल यह है कि तुम्हारा पुत्र कान्तिवर्धक

होगा, (८) वह वैभवशाली होगा, (९) सुख का आगार होगा,(१०) ज्ञान का सागर होगा, (११) त्रिभुवन का स्वामी होगा, (१२) पराक्रमी एवं पुण्यवान होगा,१३) जन्म लेते ही अवधिज्ञान का धारक होगा, (१४) सर्वगुण-सम्पन्न होगा, (१५) समस्त कर्मों का नाश कर सिद्ध पद प्राप्त करेगा एवं (१६) पुत्र-जन्म का मुहूर्त्त भविष्य में सन्निकट ही है।

जिस समय रानी सुन्दरी अपने पति के मुख से उपरोक्त सोलह स्वप्नों के फल का वर्णन सुनेगी, उसी समय महाराज श्रेणिक का जीव अपनी नरकायु की अवधि पूर्ण कर उसके पवित्र उदर (गर्भ) में प्रवेश करेगा। उस समय देवगण अपने अवधिज्ञान से तीर्थङ्कर पदमनाभ के गर्भावतरण का निश्चय करेंगे। वे अयोध्या नगरी में आकर तीर्थङ्कर के माता-पिता को नमस्कार करेंगे तथा उन्हें सुन्दर वस्त्रों से आभूषित करेंगे। समस्त देव स्वर्गलोक में जाकर उन (भगवान) के पवित्र कर्मनाश की कथा सुन कर आनन्दित होंगे। स्वर्ग से आयी हुई छप्पन दिक्कुमारियाँ भगवान की माता की सेवा करेंगी। कोई भोजन प्रस्तुत करेगी, तो कोई माता सुन्दरी के चरण पखारेगी। कोई स्नान-विलेपन का कार्य करेगी, तो कोई दिक्कुमारी माता के समक्ष सुगन्धित पुष्प रखेगी। कोई उनकी काया में तैल का मर्दन करेगी, तो कोई क्षीर सागर के जल से माता को स्नान करायेगी। कोई षट् रस व्यंजन बना कर माता को भोजन करायेगी, तो कोई भोजन बनाने के लिए उत्तमोत्तम पात्र जुटायेगी। कोई नृत्य-गान से माता को प्रसन्न रखेगी, तो कोई सदैव माता की आज्ञा के अनुसार कार्य करती रहेगी। कोई ताम्बुल-सुपारी आदि मुख-रोचक देगी, तो कोई सुगन्धित पुष्पों की माला देगी। कुमारियों में कुछ सुखदायी शैय्या प्रस्तुत करेंगी, तो कुछ माता के शीश पर मुकुट, कर्णों में कुण्डल, हस्त में कङ्गन, ग्रीवा में कण्ठहार, नेत्रों में कज्जल, ओष्ठ में ताम्बूल, ललाट पर बिन्दी, कटि में करधनी, नासिका में मोती, भुजाओं में भुजबन्द, पग में घुघरूँ पहिनायेंगी। गर्भाधान पूर्णता के नव मास पर्यंत के चतुर दिक्कुमारियाँ क्रिया गुप्त, कर्त गुप्त, कर्म गुप्त एवं पहेली बुझा कर माता का चित्त प्रसन्न रखेंगी। उनमें कोई-कोई माता से निम्नलिखित प्रश्न पूछेंगी—'काया आच्छादित करनेवाला कौन है? चन्द्र-मण्डल में क्या है? पाप के द्वारा जीव की क्या दशा होती है?' माता सुन्दरी उत्तर में कहेंगी—'सभा विभा अभाः'। जिस समय कोई कुमारी पूछेगी—'जीवों का अन्त में क्या होता है? कामी लोग क्या करते हैं? योगी ध्यान के द्वारा कैसी अवस्था प्राप्त करता है?' उस समय माता सुन्दरी यह उत्तर देंगी—'(१) विनाश, (२) विलास, (३) विपास।'

इस प्रकार वे दिक्कुमारियाँ अनेक प्रकार से कौतूहल करती हुई प्रश्न करती रहती हैं। उसी समय कोई दिक्कुमारी माता सुन्दरी से विनीत शब्दों में उनके कथन की पुष्टि करेगी—'हे मृगलोचनी! इसमें लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है। कारण

ऐसा कहा गया है कि जो व्यक्ति पक्षपात की भावना का अवलम्बन ले कर पूज्य पुरुषों के विषय में धूर्त्तता करते हैं, वे संसार में अनेक दुःख भोगते हैं।' वे समस्त दिक्कुमारियाँ परम श्रद्धा-भक्ति से माता की सेवा करेंगी। वे तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण तथा वासुदेव की कोटि के महान शलाका पुरुषों का जीवन-चरित्र सुना कर माता सुन्दरी का मन प्रसन्न रखेगी। समस्त नारियों को गर्भकालीन अवस्था में विविध प्रकार व्याधियाँ हो जाती हैं—उनका आनन (चेहरा) म्लान हो जाता है, अङ्ग में शिथिलता का अनुभव होने लगता है। किन्तु माता सुन्दरी समस्त व्याधियों से रहित होंगी। नव मास पूर्ण हो जाने पर उत्तम नक्षत्र तथा शुभ योग में माता सुन्दरी के असाधारण पुत्र का प्रसव होगा। माता सुन्दरी का नवजात शिशु इतना दिव्य होगा कि उसकी देह के तेज से समस्त दिशायें निर्मल हो जायेंगी। उस समय त्रैलोक्य में घर-घर शङ्ख की ध्वनि होगी। व्यन्तर देवों के यहाँ भेरी बजने लगेगी, ज्योतिषी देवों के यहाँ मेघ-गर्जन के सदृश वादित्रों की ध्वनि होगी, वैमानिक देवों के यहाँ घण्टा का निनाद होगा अर्थात् समस्त देवगणों को उनके अवधिज्ञान से ज्ञात हो जाएगा कि तीर्थङ्कर भगवान का जन्म हो गया है। वे सदलबल धूमधाम से नृत्य-गान करते हुए अयोध्या में आयेंगे। समस्त देवेन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित वहाँ पहुँच जायेंगे। इन्द्राणी प्रसूति गृह में प्रवेश कर उनकी स्तुति करेगी। माता सुन्दरी उस समय निद्रामग्न होंगी। इन्द्राणी तब एक मायाकृत शिशु माता सुन्दरी के पार्श्व में रख कर शिशु भगवान को लेकर इन्द्र के हस्त में सौंप देगी। तीर्थङ्कर भगवान को निरख कर देवेन्द्र अत्यन्त प्रसन्न होगा। वह भगवान को गजराज ऐरावत पर आरूढ़ करा कर उनके ऊपर छत्र लगायेगा।

तब शिशु भगवान के ऊपर सनत्कुमार इन्द्र एवं माहेन्द्र इन्द्र चँवर ढुरायेंगे। इस प्रकार देवेन्द्र उन्हें बड़े ठाठ-बाट से आकाश मार्ग द्वारा मेरु पर्वत पर ले जायेंगे। उन्हें पाण्डुक शिला पर विराजमान कर एक हजार आठ कलशों द्वारा क्षीर सागर के पवित्र जल से उन (भगवान) का अभिषेक करेंगे। उसी समय देवेन्द्र 'पदमनाभ' नाम से शिशु भगवान का नामकरण करेंगे। शिशु भगवान की स्तुति कर उन्हें निहारते हुए अतृप्त होकर इन्द्र सहस्र नेत्रोंवाला हो जाएगा। शिशु भगवान को अपने अङ्क में लेकर इन्द्राणी उन्हें नाना प्रकार के दिव्य आभूषणों से अलंकृत करेगी। उस समय शिशु भगवान सूर्य के समान तेजस्वी लगेंगे। समस्त देवगण विविध प्रकार के वाद्य बजाते हुए नृत्य-गान द्वारा भगवान के जय-जयकार से गगन को निनादित करते हुए जन्मोत्सव का समारोह मनायेंगे। तब इन्द्र शिशु भगवान को अपने अङ्क में ले कर उन्हें गजराज ऐरावत पर आरूढ़ करा कर अयोध्यापुरी में ले आएगा। भगवान पदमनाभ को उनके पिता राजा महापदम के अङ्क में सौंप कर देवेन्द्र मेरु पर्वत पर सम्पन्न अभिषेक महोत्सव के समस्त वृत्तान्त का वर्णन करेगा। तत्पश्चात् देवेन्द्र आनन्द से विभोर हो अद्भुत नृत्य कर शिशु भगवान को विविध दिव्य आभूषण समर्पित करेगा। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा समस्त कलाओं से युक्त

हो कर वृद्धिमान होता है, उसी प्रकार भगवान पदमनाभ शुभ गुणों से परिपूर्ण हो कर दिन-प्रति-दिन उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करते हुए माता-पिता के हृदय में हर्ष उत्पन्न करेंगे।

भगवान पद्मनाभ सप्त हस्त प्रमाण उच्चता प्राप्त करेंगे। उनकी आयु एक सौ सोलह वर्षों की होगी। तीर्थङ्कर भगवान की पत्नियाँ सुवर्ण के सदृश कान्तिमय एवं अत्यन्त रूपवती होंगी। जिस प्रकार भगवान ऋषभदेवजी का प्रताप था, उसी प्रकार वे भी राज्य-शासन करेंगे। जिस प्रकार भगवान ऋषभदेवजी के चक्रवती सम्राट् भरत के समान प्रतापी पुत्र हुए, उसी प्रकार तीर्थङ्कर पद्मनाभ के प्रताप चक्रवर्ती सम्राट पुत्र होगा। वे न्याय-नीति से प्रजा के ऊपर शासन करंगे। उनमें षट्-कर्म का प्रचार करेंगे। वे अनेक देश, ग्राम, पुर तथा द्रोण की स्थापना कर अमर कीर्ति के भाजन बनेंगे। उनके द्वारा वर्ण-भेद तथा राजवंश-भेद की आयोजना होगी। नृपतियों को राजनीति, वणिकों को वाणिज्य-व्यवसाय का प्रशिक्षण तथा सर्व-साधारण में भोजनादि-वस्तु की शिक्षा वे प्रचलित करेंगे। तत्पश्चात् भगवान पद्मनाभ स्वल्प अवधि तक राज्य पर शासन कर संसार के विषय-भोग से विरक्त होकर वैराग्य-भाव ग्रहण कर लेंगे। उसी समय लौकान्तिक देव उन्हें विषय-भोग से विरक्त पा कर स्वर्ग से आकर पालकी में आरूढ़ कर वन की ओर ले जायेंगे। भगवान पदमनाभ वहाँ उग्र तपस्या कर मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त करेंगे एवं अन्त में केवलज्ञान का अर्जन करेंगे। उसी समय समस्त देवगण तीर्थङ्कर भगवान पदमनाभ के निकट आकर उन्हें परम ज्ञानी जानकर समवसरण की रचना करेंगे। तीर्थङ्कर भगवान उस समवसरण में उच्च सिंहासन पर अधर विराजमान हो कर धर्मोपदेश देंगे। वे उन्मुक्त विहार कर अपने धर्मोपदेश से भव्य जीवों को सुमति के पथ पर उन्मुख करेंगे। इसके पश्चात् भगवान पद्मनाभ अपने समस्त कर्मों को विनष्ट कर मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। उसी समय स्वर्ग के देवगण अपनी देवाङ्गनाओं के सङ्ग आकर भगवान पद्मनाभ का निर्वाण-कल्याणक मना कर आनन्द प्राप्त करेंगे। यही भगवान पदमनाभ के पञ्चकल्याणक का वर्णन है। आशा है भक्तगण श्रद्धा-भक्ति से भगवान के पवित्र चरित्र का पठन-पाठन कर सुख-शान्ति पायेंगे। ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

परिशिष्ट—मेंढक की जिनभक्ति

अधम जीव मेंढक-सा, कैसे देव की पदवी पाई? गजराज के पैरों से दब कर, धर्म-भावना दिखलाई।।
निर्विकार-भाव से जिसने, भक्ति प्रेम को दर्शाया। जिन ईश्वर की कृपा-कोर से, उसने सब कुछ पाया।

एक बार राजा श्रेणिक को वनमाली ने भगवान महावीर के विपुलाचल पर्वत पर आगमन की सूचना दी। राजा यह सम्वाद सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा उसी समय जाकर भगवान की पूजा-अर्चना की, फिर वहीं बैठ कर धर्म-चर्चा सुनने लगा। इसी अन्तराल में मेढ़क के चिह्न से युक्त मुकुट तथा ध्वजा के साथ एक देव का पदार्पण हुआ। उसे देख कर श्रेणिक ने विस्मयपूर्वक गौतम गणधर से पूछा—'हे नाथ! किस जन्म के पुण्य-प्रताप से यह जीव देव हुआ?' तब गौतम गणधर ने कहा—'हे राजन्! इसी राजगृह में नागदत्त सेठ तथा भवदत्ता सेठानी रहती थी। पूर्ण आयु भोगने के पश्चात् सेठ की मृत्यु हो गई एवं वह अपने प्रासाद के पीछे की बावड़ी में मेढ़क हो कर टर्र-टर्र करने लगे। एक दिन उस मेंढक को अपनी स्त्री (सेठानी) को देख कर पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया तथा मोहवश वह छलाँग लगा कर समीप आने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु सेठानी भयभीत हो कर पलायन कर गयी। विवश मेंढक क्या करता? निराश होकर अपनी बावड़ी में लौट जाता। प्रतिदिन यही पुनरावृत्ति होती। एक दिन सेठानी ने मुनिराज सुव्रत से मेंढक की घटना कह सुनाई तथा पूछा—'हे भगवन्! यह मेंढक कौन है?' तब कृपालु मुनिराज ने बताया कि यह मेंढक पूर्व-जन्म में तुम्हारा नागदत्त नामक पति था। तब सेठानी ने मेंढक को आदर के साथ घर में लाकर रखा। हे राजन्! एक दिन ऐसी घटना हुई कि तुमने भगवान (महावीर) के समवसरण के आगमन के आनन्द में भेरी बजवाई थी, जिसे सुन कर मेंढक के हृदय में पूर्व-सन्चित भक्ति का स्त्रोत उमड़ पड़ा तथा वह अपने मुख में पदम (कमल) का पुष्प लेकर भगवान की पूजा के लिए यहाँ आ रहा था, तब तक मार्ग में तुम्हारे गजराज के चरण तले पिस कर मर गया। उसी जिन-भक्ति के पुण्य-प्रताप से वह देव हुआ है।' ऐसा सुन कर महाराज श्रेणिक गद्गद् हो गए तथा सोचने लगे—'अहा! जब मेंढक-सा अधम जीव भी पूजा के अनुमोदन से देव हो गया, तब मनुष्य क्या-से-क्या नहीं हो सकता?'

स्वाध्याय करते समय इसे पढ़ना आवश्यक है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमों नमः।।१।।

अविरलशब्दघनौघः प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।२।।

अज्ञानतिमिरांधनां ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मोलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।
श्रीपरमगुरवे नमः परम्पराचार्य्य श्रीगुरवे नमः।
सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म्मसंबन्धकं भव्यजीवमनः
प्रतिबोध्कारकमिदं शास्त्रं ''श्री श्रेणिक चरित्र'' नामधेयं, एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः
श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां
वचनानुसार-मासाद्य श्री शुभचन्द्राचार्येण विरचितम्।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यौ जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्।।
सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याणा कारकं प्रधानं सर्वधर्माणं जैनं जयतु शासनम्।।
सर्वे श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

सूची पत्र

प्रथम अध्याय 1

प्रस्तावना—जम्बू दीप, मेरु पर्वत, भरत क्षेत्र, राजगृह का वर्णन।

द्वितीय अध्याय 8

श्रेणिक के जन्म का वर्णन, युद्ध में विजय—कष्ट के वन में, महाराज उप-श्रेणिक का कष्ट-वर्णन, यमदण्ड का आतिथ्य ग्रहण, महाराज स्नेह के बन्धन में।

तृतीय अध्याय 14

राजकुमारों की परीक्षा, मंत्री का षडयंत्र—राजकुमार का निष्कासन,कुमार श्रेणिक की माता का विलाप, सेट इन्द्रदत्त से मित्रता, कुमार का बौद्व धर्म ग्रहण करना, राजकुमार की भेद-भरी बातें।

चतुर्थ अध्याय 27

इन्द्रदत्त का घर जाना और अपनी पुत्री से मिलाप, पुत्री नन्दश्री का चमत्कारिक उत्तर, कुमार परीक्षा में कैसे सफल हुए, नन्दश्री की परीक्षा, नन्दश्री से विवाह।

पंचम अध्याय 38

नन्दश्री का गर्भ धारण, नन्दश्री की अभिलाषा पूर्ति, उप-श्रेणिक का निधन और श्रेणिक का आगमन, स्वागत का वर्णन, श्रेणिक का राज्यारोहण।

षष्ठ अध्याय 46

श्रेणिक का विलासवती से विवाह, नन्दिग्राम पर महाराज का प्रकोप, क्रोध की शांति पर दोषारोपण, अभयकुमार की बुद्विमत्ता का वर्णन, अभयकुमार द्वारा ब्राह्मणों की रक्षा, बावड़ी लाने की आज्ञा, खैर की लकड़ी की परीक्षा, अभयकुमार को आगमन की आज्ञा, अभयकुमार का स्वागत।

सप्तम अध्याय 65

पुत्र के लिये विवाद—कुमार का न्याय, वास्तविक बलभद्र का निर्णय,मुनिराज का उपदेश, अंगूठी कैसे निकली?

अष्टम अध्याय 78

भरत की वर प्राप्ति, राजसभा में सम्मान, भरत के ऊपर महराज चेटक का प्रकोप, महाराज श्रेणिक की चिन्ता कैसे दूर हुई, अभयकुमार का उद्योग, चेलना कैसे आयी?

नवम् अध्याय 88

महरानी चेलना का विषाद, बौद्व साघुओं का पराभव, साधुओं की परीक्षा, पादुकाओं का रहस्य—बौद्व गुरुओं के उदर में, नाग देहधारी वसुमित्र की कथा, श्रेणिक का मुनि से दुर्व्यवहार, चेलना की स्तुति, महामुनि का उपदेशामृत।

दशम् अध्याय 109

महाराज की आत्मग्लानि, श्रेणिक के पूर्व जन्म की कथा, महामुनि की प्रशंसा, बौद्व गुरुओं की शिक्षा, तीन मुनियों का आगमन, मुनिराज धर्मघोष की आत्म-कथा, मुनिराज जिनपाल की आत्म-कथा।

एकादश अध्याय 126

मणिमाली मुनिराज ने आत्म-कथा कही, मणिवत नगर का वर्णन।

द्वादश अध्याय 157

रानी चेला की चिन्ता, अभयकुमार द्वारा चिन्ता का निवारण, भगवान महावीर के चरणों में, भगवान महावीर की स्तुति।

त्रयोदश अध्याय 170

अभयकुमार का पूर्वभव, दन्तिकुमार का पूर्वभव, देवों ने परीक्षा ली।

चतुदर्श अध्याय 178

अभयकुमार का वैराग्य, महाराज श्रेणिक का शोक प्रकाश, कुमार वारिषेण का वैराग्य, महाराज श्रेणिक का देहत्याग—आत्महत्या की, रानी चेलना ने वैराग्य धारण किया।

पंचदश अध्याय 190

भगवान पदमनाभ का वर्णन, परिशिष्ट—मेंढक की जिनभक्ति।